गोपाल कृष्ण गोखले

त्र्यबक रघुनाथ देवगिरीकर

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मत्रालय
भारत सरकार

In the yea

प्रस्तुत पुस्तकमाला

(७०)

इस पुस्तकमाला का ध्येय भारत की उन विभूतिया का चरित्र-चित्रण करना है जिनका राष्ट्रीय जागरण तथा स्वाधीनता सग्राम म प्रमुख योगदान था। आन वाली पीढिया का उनक विषय म जानकारी दना वाछनीय समझकर इस पुस्तकमाला म उनकी जीवन गाथा प्रकाशित की जा रही है। आशा की जाती है कि अब तक प्रकाशित ग्रथा स यह अभाव बहुत कुछ दूर हुआ है। इन छोटी पुस्तका क रूप म लब्धप्रतिष्ठ नेताओ की सरल सक्षिप्त जीवनिया का प्रकाशित किया जा रहा है। इन लेखक अपन विषय की जानकारी रखने वाल योग्य व्यक्ति ह। इन ग्रथ को विस्तृत अध्ययन की सामग्री उपलब्ध कराने की दृष्टि स नही लिखा गया है न ही उनका उद्देश्य अन्य सागोपाग जीवनिया का स्थान ग्रहण करना है।

यह वाछनीय था कि इन जीवनिया का प्रकाशन कालक्रम क अनुसार किया जाए—परन्तु ऐसा सम्भव प्रतीत नही हुआ। इसम प्रमुख बाधा यह थी कि लेखन काय केवल ऐसे व्यक्तिया को सापना था जा अपने चरितनायक क विषय म साधिकार लिखने में सक्षम थ। अत ऐतिहासिक क्रम की इन जीवनिया के प्रकाशन मे उपेक्षा अपरिहाय जान पडी। परन्तु आशा यही की जाती है कि प्राय सभी लब्धप्रतिष्ठ राष्ट्रीय जीवनिया पाठका के सामने प्रस्तुत करन में हम सफल हाग।

इस पुस्तकमाला क प्रधान सम्पादक श्री आर० आर० दिवाकर

।

विषय सूची

सार्वजनिक जीवन का आध्यात्मीकरण अनिवार्य है। हृदय स्वदेशानुराग से इतना ओतप्रोत हो जाना चाहिए कि उसकी तुलना में और सभी कुछ तुच्छ जान पड़ने लगे।

—गोपाल कृष्ण गोखले

1 पृष्ठभूमि

गोपाल कृष्ण गोखले का जन्म भारतीय इतिहास के एक ऐसे युग में हुआ जिसने उनका निर्माण किया और जिसका अपने जीवन काल में स्वयं उन्होंने भी बहुत सीमा तक निर्माण किया। गोखले का जन्म 1857 की उस महान भारतीय क्रान्ति के नौ वर्ष पश्चात् हुआ जिसे भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम भी कहा जाता है। संवैधानिक आन्दोलन द्वारा—यहां 'संवैधानिक' शब्द पर विशेष रूप से जोर देना अभिप्रेत है—भारत को स्वाधीन करने के उद्देश्य से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की जाने के समय 1885 में वह तरुण थे। महात्मा गांधी द्वारा जो उन्हें अपना 'राजनैतिक गुरु' मानते थे, भारत की धरती पर अपने अहिंसात्मक प्रतिरोध के प्रथम प्रयास का श्रीगणेश किए जाने के पांच वर्ष पूर्व उनका देहान्त हुआ।

1858 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और महारानी विक्टोरिया द्वारा उस वर्ष की गई घोषणा के साथ एक नवीन युग का समारम्भ हुआ। नई वस्तुस्थिति में नवीन विचारधाराओं, नूतन पद्धतियों और राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक क्षेत्र में अभिनव दिशाओं की ओर उन्मुख होने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी।

देश में सर्वत्र एक नवीन उत्साह व्याप्त हुआ। चिन्तनशील भारतीयों के लिए एक चुनौती का समय था। वे अनुभव कर रहे थे कि भारत की परम्पराओं, उसकी संस्कृति, उसके इतिहास, उसकी समाज व्यवस्था, उसके धर्म—और संक्षेप में, भारतीय कही जाने वाली प्रत्येक वस्तु का उन्मूलन हो रहा है। अंग्रेजी राज्य ने उन्हें निर्धन बना दिया है, अंग्रेजी शासन ने उन्हें क्लीव बना दिया है, अंग्रेजी हुकूमत ने उन्हें गुलाम बना लिया है। प्रश्न था—भारत के विलुप्त गौरव तथा भारत की विलुप्त आत्मा को भारतीय किस प्रकार पुनः प्राप्त कर सकते हैं?

भारतीयों की दासता की व्याख्या अंग्रेजों ने अपने ही ढंग से की। उन्होंने भारतीयों के मन में यह बात जमाने का अविलम्ब प्रयत्न

किया कि उनका पतन सामाजिक प्रथाओं में उनके पिछड़ेपन, जातिगत भेदभाव, स्त्रियों के प्रति उनके व्यवहार और अन्य अनेक—वास्तविक अथवा काल्पनिक—कारणों का परिणाम है।

यह बात केवल अंशतः ठीक थी। इसीलिए भारतीयों की स्वाधीनता समाप्ति के कारणों के सम्बन्ध में, अंग्रेजों द्वारा प्रस्तुत किया गया विश्लेषण, सबने स्वीकार नहीं किया। तथापि इस सम्बन्ध में लोग जिज्ञासाशील हो उठे। बुद्धिजीवी व्यक्तियों के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन हो गया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व और उसके बाद के कुछ वर्षों में ही सबका पूरा-पूरा ध्यान सामाजिक संरचना के सुधार पर ही केन्द्रित हो गया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म से पहले राजनैतिक क्षेत्र में, बम्बई प्रेसीडेंसी एसोसिएशन, कलकत्ता एसोसिएशन, पुणे की सार्वजनिक सभा और मद्रास की महाजन सभा जैसी संस्थाएं काम कर रही थीं, परन्तु अब समाज सुधार ने समय की मांग का रूप ग्रहण कर लिया था। समाज सुधार के समर्थकों का निश्चित मत था कि राजनैतिक मुक्ति से पहले, समाज सुधार आवश्यक है। इतना ही सबल एक ऐसा अन्य वर्ग भी था जो राजनीति को सामाजिक परिवर्तन से पृथक रखने के पक्ष में था। इन दोनों विचारधाराओं के लोगों में आपसी मतभेद काफी गहरे थे और कभी कभी तो उनमें तीखापन भी आ जाता था।

देश में एक ऐसा महत्वपूर्ण वर्ग भी था जो भारतीयों के नैतिक तथा आध्यात्मिक ढांचे के क्षय को, भारत के राजनैतिक ह्रास का कारण ठहराता था। स्वामी विवेकानन्द और अन्य महानुभाव दूर-दूर तक हिन्दू धर्म का प्रचार कर रहे थे। राष्ट्रीय जीवन में आध्यात्मिकता को, फिर उसका समुचित स्थान दिलाने के उद्देश्य से, भारत में और भारत से बाहर धर्म प्रतिष्ठान स्थापित किए जा रहे थे। धर्म के इस संदेश ने दो उद्देश्यों की पूर्ति की : इसने दूसरे लोगों के हृदय में भारत के प्रति श्रद्धाभाव जगा दिया और स्वयं भारतीयों के हृदय में आशा और शक्ति का संचार कर दिया। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जीवन के आदर्शों के विषय में हमारा दृष्टिकोण बदलने और राष्ट्रीयता तथा भाईचारे के भाव पैदा करने की दिशा में यह प्रयास बहुत सीमा तक सफल रहा। इन सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही कि लोगों ने समझ लिया कि त्याग और कष्ट सहन के बिना कोई भी लक्ष्य पूर्ति यहां तक कि सामाजिक

प्रगति भी सम्भव नहीं है। इसलिए आध्यात्मिकता, त्याग और कष्ट सहन को स्वाधीनता तक पहुंचने के साधन समझा जाने लगा।

उस समय की राष्ट्रीय पृष्ठभूमि यह थी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्थान पर प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी शासन हो जाना उल्लेखनीय ही नहीं, तात्विक भी था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी में अधिकतर ऐसे लोग थे जिन्हें भारत के भविष्य की विशेष चिन्ता न थी। सीधे अंग्रेजी शासन में तथा विधि और व्यवस्था पर आधारित संवैधानिक शासन को लक्ष्य बनाया गया था। उस समय के भारतीय स्पष्टत देख सकते थे कि उनके अग्रज प्रतिद्वी घटिया, मगर वे आदमी नहीं थे।

अंग्रेजी शासन के विरुद्ध होने वाला संघर्ष संवैधानिक तरीका में किया जाना आवश्यक था। संवैधानिक आन्दोलन की सीमाओं और उपलब्धियों के विषय में किसी को कोई सन्देह न था। आतंकवाद का वह दूसरा तरीका जो रूस, आयरलैण्ड, इटली और अन्य देशों में चल रहा था सफलता की ओर ले जाने वाला नहीं समझा गया। यही माना जा रहा था कि विदेशी शासकों से युद्ध करने का एकमात्र मार्ग यह है कि इसके लिए उन्हीं के शस्त्रों से काम लिया जाए। गांधीजी के आविर्भाव तक, ब्रिटिश उदारतावाद पर पले भारतीय राजनैतिक नेता, अपनी समझ के अनुसार अधिकांशत संवैधानिक उपायों का ही सहारा लेते रहे। ऐसी दशा में नेतृत्व स्वभावत उन लोगों के हाथ में चला गया जो विधि विषयक ज्ञान में पारंगत थे। परन्तु ऐसा कोई भी आन्दोलन प्राय सफल नहीं हो पाता है जिसमें जनसाधारण का बड़े पैमाने पर योगदान न हो। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ उस आन्दोलन को राष्ट्रव्यापी समर्थन प्राप्त हुआ। कांग्रेस की स्थापना से यह निश्चित हो गया कि नेतृत्व व्यक्तिगत अथवा स्थानीय स्तर तक सीमित न रह कर समूचे राष्ट्र का नेतृत्व बन चुका है। इस प्रकार समस्त संवैधानिक आन्दोलन के उपक्रम का श्रेय उसी मूल संस्था कांग्रेस को प्राप्त है।

1885 से 1915 तक लगभग तीस वर्ष की अवधि में कांग्रेस और भारत को अनेक परीक्षाओं और उथल पुथल का सामना करना पड़ा। संवैधानिक उपायों का पर्याप्त प्रयोग किया गया, निर्दिष्ट दिशा में कुछ सफलता भी मिली परन्तु लक्ष्य अभी दूर ही था।

राष्ट्रीय संघर्ष काल में निराशा कुण्ठा और मर्मान्तक वेदना के

अवसर समय-समय पर सामन आए। इधर शासक अपन शस्त्रागार के सभी शस्त्रा की सहायता लेकर अपना शासन सुदृढ करने में प्रयत्नशील थे और उधर जागत जनता उस बन्धन से मुक्त हो जाने के लिए जूझ रही थी। एक समय ऐसा भी आ गया जब जनता अपन नेताओ द्वारा अपनाए जा रह सयत और प्रत्यक्षत निरथक उपायो मे ऊब कर वास्त विक मुकाबले की बाट जोहन लगी।

इसका परिणाम यह हुआ कि स्वाधीनता का राष्टीय लक्ष्य मान लिए जाने की घोषणा और किसी न किसी रूप मे सीधी कारवाई की बात बहुत थाडे अन्तर से सामन आई। सवधानिक उपाया की सफलता के लिए भी यह आवश्यक समझा जाने लगा कि उन्हें सीधी कारवाई द्वारा बल प्रदान किया जाए। अत काग्रेस द्वारा सयत आन्दोलन का ही उपाय निर्धारित किए जाने पर भी दूसर प्रकार क आन्दोलना पर ही अधिक जार दिया जान लगा। अत काग्रेस में मतभेद पैदा हा गया। एक वग विधान सम्मत काय पद्धति की पावनता और अलध्यता पर ही प्रधानतया जमा हुआ था और दूसरा वग, स्वय अपनी सहज शक्ति अपने ही कार्यो तथा लाकमत के प्रभाव म विश्वास रखता था, यद्यपि उस वग ने भी सवधानिक उपाया से अपन को अलग नही किया था।

कुछ वर्षों तक काग्रेस मे एकस्वरता बनी रही परन्तु बदलती परिस्थितिया तथा समय की आवश्यकताआ ने स्वर परिवतन आवश्यक कर दिया। अन्ततोगत्वा मतभेद न पाथक्य का रूप ले लिया और सरकार ने अतिवादी अथवा गरम दल के नताआ का गिरफ्तार कर लिया। इस प्रकार अतिवादिया के हट जान पर काग्रेस और पूरे देश में एक खाई पैदा हो गई। अब काग्रेस पर नरम दल वाला का प्रभुत्व था, परन्तु उसमें न ओज था, न प्रेरक बल। प्रथम विश्वयुद्ध छिडन और उसके कुछक महीने बाद तक काग्रेस की वस्तुत भटकाव की सी स्थिति बनी रही। उसके कुछ समय पश्चात् इस स्थिति म एक सुखद परिवतन हुआ।

यह था उस युग का सामाजिक तथा राजनतिक परिवेश जिसमे गाखल न जीवन बिताया और काय किया। उहोंने अपन काय का आरम्भ शिक्षा क क्षत्र में किया और उसकी परिणति सवधानिक आन्दोलन के गानडजी लाकसभा में हुई। उनके उत्साह उनकी ईमानदारी और नम्य क प्रति उनकी निष्ठा आस्था न दशवासिया का प्रेरणा प्रदान की।

गोखले न अपनी भमिका आस्था तथा दृढतापूवक निभायी अपनाए गए पथ पर उनके पैर कभी डगमगाए नही और राजनतिक व्यवस्था के उतार चढाव उन्हे कभी अपन आदर्शों से विरत नही कर पाए। उनका जीवन अपन लक्ष्य के प्रति समर्पित था और, स्वय उन्ही के कथनानुसार भारत का प्रेम उनके हृदय म इतना अधिक था कि वह भारत के सच्चे सेवक बन गए थे। विफलता उन्हे हताश नही कर पाती थी सफलता उन्हे मतवाला नहीं बना पाती थी। अपन जीवन के अत तक वह सही अर्थो में 'कमयोगी' बन रहे।

पराधीन होते हुए भी पिछली शताब्दी में भारत म ऐसे अनेक महापुरुषो का जन्म हुआ जिन्होने इस प्राचीन देश का भाग्य निधारण किया है। इतनी अल्प अवधि मे, बहुत ही कम देशा न, इतने अधिक महापुरुषो तथा महान महिलाओ को जन्म दिया है। इस अवधि मे भारत ने कला, विज्ञान इतिहास शिक्षा अथशास्त्र उद्योग और राज नीति के क्षेत्र में विश्व को महान प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति प्रदान किए ह। उन्होंने ही इस देश के उज्ज्वल भविष्य के लिए सुदृढ नीव रखी।

गोपाल कृष्ण गोखले का जन्म इन्ही महान व्यक्तियो के बीच हुआ था, जिन्होने भारत के भविष्य के निर्माण के लिए सघप किया। तेजी से बदलते भारत को उनका विशिष्ट योगदान था—वैधानिक उपायो द्वारा आन्दोलन चलाने का तरीका।

2 विकास की वेला

गोखले का जन्म 9 मई, 1866 को भूतपूर्व बम्बई प्रेसीडेंसी के रत्नागिरि जिले के कातलुक नामक गाव म हुआ था। गाखले परिवार मूलत उसी जिले के वेलणेश्वर नामक गाव में रहता था। उनके पूवज, स्पष्टत आर्थिक कारणा म, उसके समीप के एक अन्य गाव ताम्हनमाला मे जा बस थे।

इस परिवार की कुछ भू सम्पत्ति थी जिसकी व्यवस्था भली प्रकार की जाती थी, परन्तु रत्नागिरि जिले के खेत न ता अनाज पदा करने के लिए बहुत उपजाऊ ह और न काफी बडे ही ह। वह पहाडी जिला है। वैस तो वहा प्रतिवष औसतन 80 इच से भी अधिक वर्षा हा जाती है, परन्तु वर्षा के इस पानी का अधिकाश भाग समुद्र मे पहुच जाता है और इस तरह वष के शेष दिनो म खेती क लिए पर्याप्त पानी सुलभ नही रहता। समुद्रतटीय जिला हाने के कारण रत्नागिरि अत्यन्त मनोहर दृश्यो का प्रदेश है। यहा फल बहुत पैदा होते ह—आम, नारियल काजू और कटहल से माना यह भू भाग लदा रहता है। सचार के साधन जो इस समय भी बहुत नही ह उन दिनो तो नाममात्र का ही थे। पिछले सौ वर्षो मे इस इलाके मे रेलो के दशन नही हो पाए ह। समुद्र तटीय यातायात अब भी नावाओ आदि की सहायता स किया जाता है।

गोखले का जन्म एक अपेक्षाकृत सम्पन्न मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। गोखले उस चितपावन ब्राह्मण जाति क थे जिनका सामान्य सिद्धात था परिमित इच्छा सयत व्यय और जिसके सम्बन्ध मे वलटाइन चिरोल जस लेखको न अनेक भ्रामक बात कही थी। चितपावन ब्राह्मणो की कुछेक निजी विशिष्टताए ह। व व्यवहारनिष्ठ और महत्वाकाक्षी ह सुन्दर और मेहनती हैं। इन्ही विशिष्टताओ के कारण, सख्या में कुछ लाख ही हान पर भी चितपावन ब्राह्मण जीवन के अनेक क्षेत्रो में अग्रगण्य रहे हैं। जिन पेशवाओ न महाराष्ट्र पर सौ वष स अधिक राज्य किया व कोलाबा जिल क श्रीवद्धन नामक स्थान स पूणे चल जाने वाले चितपावन

ब्राह्मण ही थे। विशेष रूप मे रत्नागिरि जिला तो महाराष्ट्र और भारत के उल्लेखनीय नेताओं का जन्मस्थल रहा है।

गोखले के पिता कृष्णराव ने कोल्हापुर रियासत के एक छोटे से सामन्त रजवाडे कागल मे नौकरी कर ली थी। वह वहा एक क्लर्क के रूप मे नियुक्त हुए। बाद मे पुलिस के सब इन्सपेक्टर बन गए। उस समय रजवाडा में नियुक्त कर्मचारियो को बहुत कम वेतन मिलता था। कृष्णराव की पत्नी कोतलुक के रहने वाले ओक' परिवार की थी। उनके छ बच्चे थे, जिनमे से दो लडके थे। बडे पुत्र का नाम गोविन्द था और छोटे का गोपाल। यह स्पष्ट है कि गोपाल कृष्ण गोखले ने ईमानदारी तथा नि स्वार्थ कार्यभावना के सदगुण अपनी वंशपरम्परा मे ही प्राप्त किए थे। उन्होने अपने इस उत्तराधिकार की रक्षा ही नही की अपने जीवन तथा कार्यों से उसे समृद्ध भी किया।

गोखले के जीवन के प्रारम्भिक वर्षो मे उन्हे घर पर अथवा स्कूल में दी गई शिक्षा के सम्बन्ध मे अधिक जानकारी सुलभ नही है। उनकी मा पढी लिखी नही थीं उन दिनो यह सम्भव भी न था। परन्तु अन्य अनेक निरक्षर ज्ञानवान स्त्रियो की भाति उन्हे बुद्धिमत्ता और परम्परागत ज्ञान की भरपूर निधि प्राप्त थी। रामायण और महाभारत की कथाए कठस्थ थी। सन्त महात्माओ के भक्तिपूर्ण भजन भी इसी भाति उनके अपने बन चुके थे। पुण्यशीलता भक्ति और लगन से ओतप्रोत वे गीत गोखले के घर मे पडे सवेरे और काफी रात बीतने तक गाए जाते थे और वे घर मे पवित्रता और प्रेम की वर्षा कर देते थे। इन प्रभावो की छाप आगे चल कर गोखले में स्पष्ट रूप मे देखी जा सकती थी।

जिस मकान में गोखले ने जन्म लिया जिस स्कूल मे उन्होने पहले पहल शिक्षा पाई, जिन अध्यापको ने उन्हे पढाया और जो स्कूल मे उनके साथी और सहपाठी रहे, उन सबके बारे में हमे कुछ पता नही है। खेद की बात है कि गोखले के जीवन के इस भाग का परिचय हमे कोई नही दे पाया। कागल मे रहने वाले उस बालक के विषय मे हमे केवल यह विदित है कि वहा उसने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पूरी की। गोखले के जीवन चरित्रो मे बार-बार दोहराया जाने वाला एक प्रसग ऐसा अवश्य है, जिसका उल्लेख यहा किया जा सकता है। एक बार उनके अध्यापक ने बालको को घर पर हल करने के लिए गणित के

2 विकास की वेला

गोखले का जन्म 9 मई 1866 को भूतपूर्व बम्बई प्रेसीडेंसी के रत्नागिरि जिले के कातलुक नामक गाव मे हुआ था। गोखले परिवार मूलत उसी जिले के वेलणेश्वर नामक गाव मे रहता था। उनके पूवज, स्पष्टत आर्थिक कारणो से उसके समीप के एक अन्य गाव ताम्हनमाला म जा बसे थे।

इस परिवार की कुछ भू सम्पत्ति थी जिसकी व्यवस्था भली प्रकार की जाती थी परन्तु रत्नागिरि जिले के खेत न तो अनाज पैदा करने के लिए बहुत उपजाऊ हैं और न काफी बडे ही ह। वह पहाडी जिला है। वसे तो वहा प्रतिवष औसतन 80 इच से भी अधिक वर्षा हो जाती है, परन्तु वषा के इस पानी का अधिकाश भाग समुद्र मे पहुच जाता है और इस तरह वष के शेष दिनो म खेतों के लिए पयाप्त पानी सुलभ नही रहता। समुद्रतटीय जिला होने के कारण रत्नागिरि अत्यत मनोहर दृश्यो का प्रदेश है। यहा फल बहुत पैदा होते हैं—आम नारियल काजू और कटहल से मानो यह भू भाग लदा रहता है। सचार के साधन जो इस समय भी बहुत नही ह उन दिनो तो नाममात्र को ही थे। पिछले सौ वर्षों मे इस इलाके मे रेलो के दशन नही हो पाए ह । समुद्र तटीय यातायात अब भी नौकाओ आदि की सहायता से किया जाता है।

गोखले का जन्म एक अपक्षाकृत सम्पन्न मध्यवर्गीय परिवार म हुआ था। गोखले उस चितपावन ब्राह्मण जाति के थे जिनको सामान्य सिद्धात था परिमित इच्छा सयत व्यय और जिसके सम्बध मे वैलटाइन चिरोल जसे लेखको ने अनेक भ्रामक बाते कही थी। चितपावन ब्राह्मणो की कुछ निजी विशिष्टताए ह। व व्यवहारनिष्ठ और महत्त्वाकांक्षी ह सुन्दर और महनती है। इन्ही विशिष्टताओ के कारण सख्या मे कुछ लाख ही होने पर भी चितपावन ब्राह्मण जीवन के अनेक क्षेत्रो मे अग्रगण्य रहे ह। जिन पेशवाओ ने महाराष्ट्र पर सौ वष से अधिक राज्य किया व कोलाबा जिले के श्रीवद्धन नामक स्थान से पुणे चले जाने वाले चितपावन

ब्राह्मण ही थे। विशेष रूप से रत्नागिरि जिला तो महाराष्ट्र और भारत के उल्लेखनीय नेताओं का जन्मस्थल रहा है।

गोखले के पिता कृष्णराव ने कोल्हापुर रियासत के एक छोटे से सामन्ती रजवाड़े कागल में नौकरी कर ली थी। वह वहां एक क्लर्क के रूप में नियुक्त हुए। बाद में पुलिस के सब इंस्पेक्टर बन गए। उस समय रजवाड़ों में नियुक्त कर्मचारियों को बहुत कम वेतन मिलता था। कृष्णराव की पत्नी सत्यभामा के रहते वाले और परिवार की थीं। उनके छ बच्चे थे जिनमें से दो लड़के थे। बड़े पुत्र का नाम गोविन्द था और छोटे का गोपाल। यह स्पष्ट है कि गोपाल कृष्ण गोखले ने ईमानदारी तथा निस्स्वार्थ कार्यभावना के सद्गुण अपनी वंशपरम्परा से ही प्राप्त किए थे। उन्होंने अपने इस उत्तराधिकार की रक्षा ही नहीं की अपने जीवन तथा कार्यों से उसे समृद्ध भी किया।

गोपाल के जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में उन्हें घर पर अथवा स्कूल में दी गई शिक्षा के सम्बन्ध में अधिक जानकारी सुलभ नहीं है। उनकी मां पढ़ी लिखी नहीं थीं उन दिनों यह सम्भव भी न था। परन्तु अन्य अनेक निरक्षर ज्ञानवान स्त्रियों की भांति उन्हें बुद्धिमत्ता और परम्परागत ज्ञान की भरपूर निधि प्राप्त थी। रामायण और महाभारत की कथाएं कंठस्थ थीं। सन्त महात्माओं के भक्तिपूर्ण भजन भी इसी भांति उनके अपने बन चुके थे। पुण्यशीलता भक्ति और लगन से ओतप्रोत वे गीत गोखले के घर में पड़ोस मंडल और काफी रात बीतने तक गाए जाते थे और वे घर में पवित्रता और प्रेम की वर्षा कर देते थे। इन प्रभावों की छाप आगे चल कर गोखले में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती थी।

जिस मकान में गोपाल ने जन्म लिया जिस स्कूल में उन्होंने पहले-पहल शिक्षा पाई, जिन अध्यापकों ने उन्हें पढ़ाया और जो स्कूल में उनके साथी और सहपाठी रहे उन सबके बारे में हमें कुछ पता नहीं है। खेद की बात है कि गोखले के जीवन के इस भाग का परिचय हम कोई नहीं दे पाया। कागल में रहने वाले उस बालक के विषय में हमें केवल यह विदित है कि वहां उसने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पूरी की। गोखले के जीवन-चरित्रों में बार-बार दोहराया जाने वाला एक प्रसंग ऐसा अवश्य है जिसका उल्लेख यहां किया जा सकता है। एक बार उनके अध्यापक ने बालकों को घर पर हल करने के लिए गणित के

ब्राह्मण ही थे। विशेष रूप से रत्नागिरि जिला तो महाराष्ट्र और भारत के उल्लेखनीय नेताओं का जन्मस्थल रहा है।

गोखले के पिता कृष्णराव ने कोल्हापुर रियासत के एक छोटे से सामन्ती रजवाड़े कागल में नौकरी कर ली थी। वह वहां एक क्लर्क के रूप में नियुक्त हुए। बाद में पुलिस के सब-इंसपेक्टर बन गए। उस समय रजवाड़ों में नियुक्त कर्मचारियों को बहुत कम वेतन मिलता था। कृष्णराव की पत्नी कातलुर के रहने वाले ओक परिवार की थी। उनके छः बच्चे थे, जिनमें से दो लड़के थे। बड़े पुत्र का नाम गोविन्द था और छोटे का गोपाल। यह स्पष्ट है कि गोपाल कृष्ण गोखले ने ईमानदारी तथा निस्वार्थ कार्यभावना के सद्गुण अपनी वंशपरम्परा से ही प्राप्त किए थे। उन्होंने अपने इस उत्तराधिकार की रक्षा ही नहीं की, अपने जीवन तथा कार्यों से उसे समृद्ध भी किया।

गोपाल के जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में उन्हें घर पर अथवा स्कूल में दी गई शिक्षा के सम्बन्ध में अधिक जानकारी सुलभ नहीं है। उनकी मां पढ़ी-लिखी नहीं थीं। उन दिनों यह सम्भव भी न था। परन्तु अन्य अनेक निरक्षर ज्ञानवान स्त्रियों की भांति उन्हें बुद्धिमता और परम्परागत ज्ञान की भरपूर निधि प्राप्त थी। रामायण और महाभारत की कथाएं कंठस्थ थीं। सन्त महात्माओं के भक्तिपूर्ण भजन भी इसी भांति उनके अपने बन चुके थे। पुण्यशीलता, भक्ति और लगन से ओतप्रोत वे गीत, गोखले के घर में पढ़े सवेरे और काफी रात बीतने तक गाए जाते थे और वे घर में पवित्रता और प्रेम की वर्षा कर देते थे। इन प्रभावों की छाप आगे चल कर गोखले में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती थी।

जिस मकान में गोपाल ने जन्म लिया, जिस स्कूल में उन्होंने पहले-पहल शिक्षा पाई, जिन अध्यापकों ने उन्हें पढ़ाया और जो स्कूल में उनके साथी और सहपाठी रहे, उन सबके बारे में हमें कुछ पता नहीं है। खेद की बात है कि गोखले के जीवन के इस भाग का परिचय हम कोई नहीं दे पाया। कागल में रहने वाले उस बालक के विषय में हम केवल यह विदित है कि वहां उसने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पूरी की। गोखले के जीवन-चरित्रों में बार-बार दोहराया जाने वाला एक प्रसंग ऐसा अवश्य है जिसका उल्लेख यहां किया जा सकता है। एक बार उनके अध्यापक ने बालकों को घर पर हल करने के लिए गणित के

सवाल दिए। अन्य सभी बच्चों के उत्तर गलत थे, केवल गोपाल का उत्तर सही था। अध्यापक ने गोपाल से कक्षा में सब बालकों में आगे आ जाने के लिए कहा। इस पदोन्नति से प्रसन्न होने के बजाय, गोपाल की आंखों से आंसू बहने लगे। इसका कारण किसी की समझ में न आया। स्वयं गोपाल ने अपराध स्वीकार करते हुए कहा कि उसने वह सवाल किसी और से हल करवाया है।

सम्भवत 1874–75 में ही गोपाल को, उसके भाई के साथ उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने के लिए कोल्हापुर भेजा गया। कोल्हापुर इसी नाम की एक रियासत की राजधानी थी और कागल के पास ही थी। उन दिनों कोल्हापुर जैसे बड़े नगरों में ही ऐसे स्कूल थे जहां अंग्रेजी पढ़ाई जाती थी।

जिस समय दोनों भाई कोल्हापुर में थे वहीं अपने पिता के देहान्त का समाचार मिला। उस समय गोपाल केवल 13 वर्ष का था और गोविन्द 18 का। सामान्य साधनों वाले परिवार में धन कमाने वाले सदस्य के देहान्त का फल यही होता है कि बच्चों का अध्ययन रुक जाता है। परन्तु गोपाल के चाचा अनन्ताजी, स्वयं निर्धन तथा जैसे-तैसे अपने परिवार का पालन कर रहे थे, फिर भी वह गोपाल की विधवा मां और चारों बहनों को साथ लेकर ताम्हनमाला चले आए। बदली हुई परिस्थिति में यह निश्चय किया गया कि बड़ा भाई पढ़ना छोड़ कर कुछ काम करे और छोटा कोल्हापुर में ही रह कर अपना अध्ययन पूरा करे। सम्बन्धियों के सत्प्रयास से बड़े भाई को 15 रुपये मासिक की एक नौकरी मिल गई। इतनी कम आमदनी से परिवार का पालन करना और अपने भाई की शिक्षा की व्यवस्था करना वास्तव में उसके लिए बहुत कठिन रहा होगा। 18 वर्षीय गोविन्द ने वेतन के 15 रुपयों में से 8 रुपये गोपाल की शिक्षा और भोजन के लिए कोल्हापुर भेजना स्वीकार कर लिया। निश्चित रूप से इसका परिणाम हुआ होगा—परिवार के लिए आत्म निषेधपूर्ण तथा सभी प्रकार से कष्टपूर्ण जीवन। गोपाल इस स्थिति से सुपरिचित था। इस प्रकार उसके इस संकल्प को विशेष बल प्राप्त हुआ कि जीवन में सफलता पाने के लिए, उसे उस अवसर का अच्छे से अच्छे ढंग से उपयोग करना चाहिए।

गोपाल को प्रतिमास 8 रुपये मिलते थे। उनमें से चार तो एक

भोजनालय में भोजन के लिए दे दिए जाते थे और बाकी रुपये फीस, पुस्तकों और कपड़ा—सादा किन्तु शीलोत्पादक जीवन पर खर्च होते थे। अपने परिवार की कष्ट-साधना का उन्हें पूर्ण ज्ञान था और इसीलिए वह एक पाई भी अविवेक पूर्वक खर्च नहीं कर सकते थे।

एक बार गोपाल के एक सहपाठी ने उनसे, अपने साथ एक नाटक देखने के लिए चलने का अनुरोध किया। गोपाल उसकी बात मान कर वहां गए और नाटक देखा। एक-दो दिन बाद, उस बालक ने गोपाल से टिकट के पैसे मांगे। गोपाल भौचक्के रह गये। यदि उन्हें पहले पता होता कि नाटक देखने के लिए उन्हें कुछ खर्च करना पड़ेगा तो वह नाटक देखने का प्रस्ताव प्यार से अस्वीकार कर देते। परन्तु अब आत्म-सम्मान का प्रश्न सामने था। उन्होंने किसी तरह की बहस अथवा विरोध किये बिना, दो आने अपने मित्र को दे दिए। अब प्रश्न यह था कि यह घाटा कैसे पूरा किया जाए? क्या इसके लिए एक समय का भोजन और छोड़ दिया जाए? अथवा किसी और आवश्यकता को इसके लिए बलि चढ़ा दिया जाए? गोपाल ने निश्चय किया कि उन्हें अपने लैम्प के तेल में बचत करके वह घाटा पूरा करना चाहिए। बस, गोपाल बाहर निकल आये—गली के लैम्प के प्रकाश में पुस्तक पढ़ने के लिए।

गोपाल कृष्ण गोखले ने 15 वर्ष की अवस्था में मैट्रिक की परीक्षा पास की, परन्तु विवाह के बंधन में उन्हें इससे भी पहले बंध जाना पड़ा। किसी निर्धन परिवार में, विवाह-समारोह की बात उस समय तक भली प्रकार समझ में नहीं आती, जब तक यह ध्यान में न रखा जाए कि उन दिनों बाल विवाह करना आम प्रथा था। समाज का इतना विकास उस समय तक नहीं हो पाया था कि कोई भी व्यक्ति इस प्रकार की प्रथा का विरोध कर पाता।

युवा गोखले ने पहले ही प्रयास में एंटेंस परीक्षा पास कर ली। उन्हें कोई छात्रवृत्ति नहीं मिली और न उनकी गणना, परीक्षा में सर्वोच्च स्थान पाने वाले छात्रों में ही हुई, परन्तु उनके सम्बन्ध में एक मात्र उल्लेखनीय बात यह रही कि उन्होंने वह परीक्षा अपेक्षाकृत जल्दी पास कर ली। उनके हृदय में उच्चतर शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा आकांक्षा थी। वह इस योग्य भी थे, परन्तु उन्होंने सोचा कि उच्चतर शिक्षा के लिए बराबर अपने परिवार को तंगी की हालत में रखना स्वार्थपूर्ण बात

है। उन्होंने कुछ कमाना आरम्भ करके परिवार का भार हल्का करने की इच्छा व्यक्त की, परन्तु गोविन्द ने ऐसी कोई बात सुनना अथवा गोविन्द की पत्नी ने गोपाल से इस प्रकार का त्याग कराना स्वीकार नहीं किया। गोपाल की शिक्षा के लिए, वह अपने सभी आभूषणों का परित्याग करने के लिए तत्पर हो गई और निश्चय किया गया कि गोपाल कालेज में अवश्य प्रविष्ट होगा। देश, जिस महत्वपूर्ण कार्य के लिए गोखले की बाट जोह रहा था, उसकी तैयारी का समुचित अवसर उन्हें प्रदान करने के लिए गोविन्द और उनकी पत्नी का चिर ऋणी है।

गोखले जनवरी 1882 में कोल्हापुर के राजाराम कालेज में प्रविष्ट हुए। वह एक संकोचशील छात्र थे। कालेज में उनके कार्यकलापों के विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है। वह प्रबुद्ध तो थे, कुशाग्र न थे।

पर असाधारण स्मरण शक्ति के कारण वह शीघ्र ही अपने कालेज में विख्यात हो गए। श्रीनिवास शास्त्री का कथन है—प्रायः वह अपनी पाठ्यपुस्तक अपने किसी सहपाठी को देकर, कहते थे कि वह उसमें देखता रहे और गोखले स्वयं सारा पाठ जबानी सुनाते रहे। जान पड़ता है वे आपस में यह शर्त लगा लिया करते थे कि पाठ सुनाने में, यदि गोखले से कोई भूल होगी तो वह अपने सहपाठी को प्रति भूल एक आना दे देंगे। मगर गोखले की भूलों से कोई सहपाठी धन न कमा पाया।

उस समय के युवकों की भांति, गोखले के हृदय में अंग्रेजी भाषा में पारंगत होने की अभिलाषा तो न थी पर वह अनुभूतिप्रवणता और योग्यतापूर्वक इस भाषा का प्रयोग सीखना चाहते थे। उसके लिए उन्होंने यह तरीका अपनाया कि वह उत्कृष्ट अवतरण कण्ठस्थ कर लेते थे। वह पूरे का पूरा अध्याय अथवा कविता, एक भी भूल किए बिना, जबानी सुना सकते थे। कहा जाता है कि उन्हें स्काट कृत 'राकेबी' (Rakeby) पूरी कण्ठस्थ थी। उनके कुछ सहपाठी 'रट्टू' और तोता' आदि कह कर उन्हें चिढ़ाया करते थे, पर वह इसकी परवाह नहीं करते थे।

राजाराम कालेज में रह कर उन्होंने 1882 में वह परीक्षा पास की जिसे प्रीवियस परीक्षा' कहा जाता था। दूसरे वर्ष के पाठ्यक्रम के लिए, उन्हें पूणे के दक्कन कालेज में जाना पड़ा। उन्हें अधिक समय तक दक्कन कालेज में नहीं रहना पड़ा, क्योंकि शीघ्र ही राजाराम कालेज में भी दूसरे वर्ष का पाठ्यक्रम आरम्भ हो गया। बी० ए० के पहले वर्ष

का अध्ययन भी उन्होंने कोल्हापुर मे रह कर ही किया और उसके बाद वह अन्तिम वर्ष की परीक्षा देने के लिए बम्बई के एल्फिस्टन कालेज में चले गए। बी० ए० मे गणित उनका वैकल्पिक विषय था। यह परीक्षा उन्होने द्वितीय श्रेणी में पास की।

यह बात 1884 की है। 1880 के आसपास पुणे म कुछ महत्व-पूर्ण घटनाए घटित हुई थी। विष्णु शास्त्री चिपलूणकर न न्यू इगलिश स्कूल की स्थापना की। अगले ही वर्ष चिपलूणकर, तिलक, आगरकर और कुछ अन्य युवको ने मिल कर मराठी मे 'केसरी' और अग्रेजी में 'मराठी' नामक साप्ताहिक पत्रो का प्रकाशन शुरू किया। 'मराठी' के 8 जनवरी, 1882 के अक में कोल्हापुर के दीवान बर्वे के विरुद्ध कुछ पत्र प्रकाशित हुए। 'केसरी' मे भी दीवान क विरुद्ध सामग्री छपी। ये पत्र जाली साबित हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि दीवान को बदनाम करने के कारण, तिलक और आगरकर को चार-चार महीने का कारा-वास दे दिया गया। जनता ने सम्पादको के प्रति सहानुभूति दिखाई और उनके बचाव के लिए धन सग्रह आरम्भ हुआ। धन सग्रह के काम में, छात्रा ने बढ चढ कर भाग लिया। न्यू इगलिश स्कूल और दक्कन कालेज ने उक्त निधि के लिए लगभग 400 रुपये एकत्र किए। कोल्हापुर का राजाराम कालेज इस काम में पीछे कैसे रहता? उस कालेज के छात्रा न इस निधि के लिए शेक्सपियर के नाटक 'कामेडी आफ एरस' का अभिनय किया। उस समय तक अध्ययन से भिन्न सभी कार्यकलापो से अलग रहने वाले, युवा गोखले ने उक्त नाटक मे मठस्वामिनी का अभिनय कर लिया। किसी राजनैतिक लक्ष्य के समर्थक के नाते सार्वजनिक मच पर आने का उनका यह पहला अवसर था।

बम्बई मे जहा गोखले अन्तिम वर्ष की परीक्षाओ के लिए गए थे प्रोफेसर हाथानवेट से बहुत प्रभावित हुए। वह गणित के प्रख्यात अध्यापक और एक उपयोगी पथप्रदर्शक थे। उस समय के शिक्षा जगत के एक अन्य आलोक स्तम्भ, अग्रेजी के प्रोफेसर डा० वर्डसवर्थ थे। इन दोनो अग्रेजो का गोखले पर गहरा प्रभाव पडा और स्वय वे दोनो भी, गोखले की उपलब्धियो से बहुत आश्वस्त हुए। उन्हे 20 रुपये प्रतिमास की छात्रवृत्ति मिल गई।

गोखले को 1884 मे केवल 18 वर्ष की अवस्था में बी० ए० की डिग्री मिल गई—उस समय यह एक असामान्य उपलब्धि थी। अब

उनके सामने अनेक विकल्प थे। एम० ए० डिग्री के लिए नाम रजिस्टर करा दिया जाए? सरकारी नौकरी स्वीकार कर ली जाए? कानून की कक्षाओं में प्रविष्ट होकर अंततः वकील बना जाए? उनके कुछ मित्रों ने सुझाव दिया कि उन्हें भारतीय सिविल सेवा की प्रतियोगिता परीक्षा देने के लिए इंग्लैंड चले जाना चाहिए। इस काम के लिए उन्होंने ऋण के रूप में धन राशि एकत्र कर देने का विश्वास दिलाया। परन्तु गोखले को यह अच्छा न लगा। हो सकता है कि उन्होंने अपने आपको उक्त कार्य के लिए उपयुक्त न समझा हो और यह भी सम्भव है कि उन्हें वह नौकरी पसन्द न हो। अतः अन्त में उन्होंने इंजीनियरी की शिक्षा ग्रहण करने का निश्चय किया और इंजीनियरिंग कालेज में नाम भी लिखवा दिया। वहां उन्होंने देखा कि उनकी कक्षा के अन्य विद्यार्थी बहुत अधिक मेधावी हैं। यह देख कर वह फिर आत्म संशय से पराभूत हो गए और उन्होंने उक्त कक्षा में जाना बंद कर दिया। केवल एम० ए० की डिग्री पा लेना, कोई आवश्यक बात न जान पड़ने के कारण वह अन्ततोगत्वा कानून के अध्ययन की ओर मुड़ गए। उन दिनों वकील बन जाना सामाजिक दृष्टि से प्रतिष्ठाजनक और आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद था। उक्त व्यवसाय स्वीकार कर लेने वाला व्यक्ति न्यायांग में प्रवेश करके उच्च न्यायालय का न्यायाधीश तक होने की आशा कर सकता था जो उस समय किसी भारतीय को मिल सकने वाला उत्कृष्टतम पद था। अन्य कामों के लिए भी कानून की जानकारी वाञ्छनीय समझी जाती थी। सम्भवतः गोखले ने समझा होगा कि अपने देश की सेवा करने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति के लिए कानून का अध्ययन उपयुक्त प्रशिक्षण साधन है।

गोखले ने उसी वर्ष पुणे के दक्खन कालेज में आरम्भ होने वाली कानून की कक्षा में प्रवेश तो ले लिया, पर वह अपने उस परिवार को नहीं भूले जिसने उनके लिए इतना कष्ट सहा था। कब तक उन्हें वह सुख न मिलने की बाट देखने के लिए छोड़ देते? अतः कुछ कमाना आवश्यक भी हो गया और धर्म भी। गोखले ने 35 रुपये मासिक वेतन पर पुणे के न्यू इंगलिश स्कूल में अध्यापक पद स्वीकार करने का निश्चय कर लिया।

3 भावी संघर्ष की ओर

गोखले का जीवन उस समय पुणे में हो रही घटनाओं में पूरी तरह से उलझ गया था। अध्यापन व्यवसाय चुनते समय उन्होंने जानबूझ कर अपने आपको घटना चक्र में डालने की बात प्राय नहीं सोची थी, पर धीरे धीरे वह पुणे में घटित होने वाली सभी घटनाओं का एक अंग बनते चले गए। यह सच है कि उन्होंने ओजपूर्ण भाषा में अपने हृदय के प्रचण्ड भावावेग का बखान नहीं किया, फिर भी देश को जिस वस्तु की आवश्यकता थी उसके सम्बन्ध में गोखले अपने सौम्य-संयत रूप में भी, न्यू इंगलिश स्कूल के अपने किसी सहयोगी से कम संकल्पनिष्ट नहीं थे।

बात यह है कि जिस स्कूल मे गोखले ने अध्यापन कार्य किया वह कोई मामूली स्कूल नहीं था। उस स्कूल का उद्देश्य ऐसे लोग तैयार करना न था जो विदेशी शासकों की सेवार्थ गौरव अनुभव करने वाले क्लर्क बन सकें। इसके विपरीत, इस स्कूल के संस्थापक तो वे लोग थे, जिन्होंने ऐसा व्यक्ति-समूह तैयार करने का बीड़ा उठाया था जो आत्म-सम्मान ज्ञान और समर्पण भावना से ओतप्रोत हो। ऐसी थी वह संस्था, जिसके लिए गोखले ने 15 वर्ष की लम्बी अवधि तक परिश्रम किया।

उस स्कूल के संस्थापक थे विष्णु शास्त्री चिपलूणकर। वह पुणे के रहने वाले एक ग्रेजुएट थे। सरकारी सेवा में काम करते हुए, उन्हें अध्यापक के रूप मे पुणे से रत्नागिरि भेज दिया गया था। उनका वेतन 100 रुपये मासिक था जो उन दिनों के हिसाब से बहुत अच्छा था। वह 'निबन्धमाला' नामक उस पत्रिका के सम्पादक थे जिसमें विचारोत्तेजक लेख प्रकाशित हुआ करते थे। उस पत्रिका मे शिक्षित वर्ग को अपनी ओर आकृष्ट किया। 'आमच्या देशाची स्थिति' (हमारे देश की स्थिति) शीर्षक से प्रकाशित एक लेख में, चिपलूणकर ने स्पष्ट शब्दों में यह विचार व्यक्त किया कि शिक्षा ही देश के कायाकल्प का एकमात्र उपाय है। बाद में सरकार ने यह लेख जब्त कर लिया, क्योंकि इसके

कुछ अंश बहुत आपत्तिजनक समझे गए। चिपलूणकर ने नौकरी छोड़ कर पूने में एक स्कूल खोलने का फैसला किया। जनवरी 1880 में यह स्कूल खुला।

दक्कन कालेज में अपने विद्यार्थी जीवन में ही, तिलक और आगरकर भी इन्हीं दिशाओं में सोच रहे थे, भारत तभी स्वाधीन हो सकता है जब भारतीयों को आधुनिक तरीकों से शिक्षित किया जाए, केवल आधुनिक विज्ञान आधुनिक ज्ञान और आधुनिक चिन्तन पद्धतियां अपनाकर ही वे विदेशी शासन का भार उतार फेंकने में समर्थ हो सकते हैं स्वयं अपना और आगरकर का उल्लेख करते हुए तिलक ने कहा था, 'देश की दयनीय अवस्था देख कर हमारा सिर चकरा रहा है। बहुत देर सोच विचार करने के बाद हमने यही निष्कर्ष निकाला है कि देश का उद्धार केवल शिक्षा से ही हो सकता है।' तिलक और आगरकर ने चिपलूणकर के उस नए प्रयास में सहयोगी बनने की इच्छा प्रकट की। कुछ लोगों ने उनकी हँसी उड़ाई, उन्हें सपनों में लीन रहने वाले व्यक्ति कह कर पुकारा। किन्तु विद्यार्थी जगत तो एक स्वर्णविहान की बाट देख रहा था। चिपलूणकर ने घोषणा की कि 'अत्याचार के सामने घुटने टेकने के बदले में इन जंजीरों को तोड़ने के लिए टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा।' उनके इस अग्रगामी प्रयास में लोगों का शानदार सहयोग मिला। उस स्कूल में प्रवेश पाने के लिए विद्यार्थियों में होड़ लग गई। स्कूल के स्थापना समारोह के अवसर पर दिए गए भाषण में, उक्त स्कूल के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए, शब्दाडम्बर से काम न लेकर, चिपलूणकर ने समझदारी का परिचय दिया। उन्होंने इतना ही कहा कि इस स्कूल का उद्देश्य साधारण साधनों वाले व्यक्तियों के लिए भी, शिक्षा सुलभ करके शिक्षा का प्रचार करना है। चिपलूणकर, तिलक और नामजोशी ने यह कार्यभार अपने कंधों पर उठा लिया। आगरकर पहले अपना एम० ए० का अध्ययन पूरा करना चाहते थे। अतः उन्होंने आरम्भ में स्कूल का कार्य नहीं संभाला और इसके लिए कुछ समय की छूट ले ली।

नए उद्यम की सफलता के लिए त्याग और आत्मोत्सर्ग अपरिहार्य थे। इन तीनों उत्साही युवकों का वेतन केवल 30 से 35 रुपये प्रति मास था। उन्होंने सोचा था कि अधिक रुपया सुलभ हो जाने पर भी, वे महाराष्ट्र में ऐसे ही और स्कूल खोल देंगे, अपना वेतन नहीं बढ़ाएंगे। इस प्रकार उन्होंने त्याग के आदर्श का प्रचार ही नहीं, पालन भी किया।

इस परीक्षण का पुणे में गहरा प्रभाव पडा। फर्गुसन कालेज माच 1885 में अर्थात् उसी वष खुला, जिस वष भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस का जम हुआ।

गोखले न्यू इगलिश स्कूल म 35 रुपये प्रतिमास वेतन पर सहायक अध्यापक नियुक्त कर लिए गए थे, परन्तु वह आय इतनी कम थी कि उससे उनके इतने बडे परिवार का पालन नही हो सकता था। अत उन्होंने एक अन्य अध्यापक बधु के साथ मिल कर, सरकारी सेवा की परीक्षाए देने वाले विद्यार्थियो को पढाने के लिए निजी कक्षाए लेना आरम्भ कर दिया। गोखले को इस प्रकार, अपने नियमित वतन के बराबर रुपया और मिल जाता था। अठारह वष के एक ग्रेजुएट के लिए 70–75 रुपये की आय उस समय काफी अच्छी मानी जाती थी। इन कामो से बचने वाला समय गोखले ने कानून के अध्ययन में लगाया। उन्होंने कानून की परीक्षा पास कर ली। कानून के उच्चतर अध्ययन की व्यवस्था पुणे में न होने के कारण, उन्हे प्रति सप्ताह ला कालेज में पढने के लिए बम्बई जाना पडता था। परन्तु, वकील बनने की तीव्र अभिलाषा होने पर भी परिस्थितिया ने गोखले का साथ नही दिया और वह कानून का इसमे अधिक अध्ययन न कर सके।

उनका जीवन परिवेश अब उन पर जबर्दस्त प्रभाव डालने लगा। उन्हें तिलक और आगरकर जैसे महापुरुषो का सम्पक प्राप्त हुआ, जिनमें देश प्रेम कूट-कूट कर भरा था। आगे होने वाली घटनाओ ने सिद्ध कर दिया कि तिलक की अपेक्षा आगरकर ने गोखले पर अधिक गहरा प्रभाव डाला। आगरकर ने, तिलक ने नही, उन्हें एक अध्यापक के रूप में स्कूल का आजीवन सदस्य बन कर उन लोगो में शामिल हो जाने के लिए तैयार किया। जान पडता है कि आरम्भ में गोखले वह प्रस्ताव स्वीकार करने में कुछ हिचके, इसलिए नही कि वह उन लोगो का साथ नही देना चाहते थे, बल्कि इस भय से कि कही इसमें उनके भाई को आपत्ति न हो। शीघ्र ही भाई की अनुमति मिल गई और गोखले 1886 में उन लक्ष्यनिष्ठ पुरुषो के साथ आ मिले। इस प्रकार मानो उनके भविष्य की आधारशिला रख दी गई।

अध्यापक के नाते गोखले के काय का विवेचन करने से पहले यह बता देना आवश्यक जान पडता है कि गोखले ने 1885 में कोल्हापुर की उस सभा में अपना पहला सावजनिक भाषण दिया जिसकी अध्यक्षता

कोल्हापुर के रेजीडेन्ट विलियम ली वार्नर ने की। उनके भाषण का विषय था—अंग्रेजी शासन के अधीन भारत। तथ्यों की क्रम योजना और अंग्रेजी भाषा की अपनी पटुता से उन्होंने श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर दिया। वार्नर ने उस भाषण की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की।

अध्यापक के नाते गोखले बहुत प्रभावशाली नहीं रहे। वह चौथी और पाचवीं कक्षाओं के छात्रों को अंग्रेजी पढ़ाते थे। यह अनिवार्य नहीं है कि ऊंचे दर्जे का विद्वान बहुत अच्छा अध्यापक भी हो। हां, गोखले अदम्य आशावादी थे। पढ़ाते समय वह पाठ्यपुस्तक नहीं देखते थे। किसी प्रकार की टिप्पणियों की सहायता लिए बिना वह प्रत्येक वाक्य और प्रत्येक शब्द को दोहरा देते थे। परन्तु उनके द्वारा की गई कविताओं की व्याख्या विद्यार्थियों की समझ में नहीं आ पाती थी। वे समझ ही नहीं पाते थे कि जो शब्द उन्हें कठिन जान पड़ते हैं उन्हीं से गोखले इतने आत्म विभोर कैसे हो जाते हैं। छात्र अपने अंग्रेजी पाठों के सरल अर्थ मात्र जानना चाहते थे, परन्तु अध्यापक गोखले का प्रयत्न यह होता था कि वह लेखकों के हृदय तक पहुंच सकें।

फर्गुसन कालेज में अध्यापन कार्य करते हुए उन्हें साउदे (Southey) कृत 'लाइफ आफ नेल्सन' पढ़ानी पड़ी। समुद्र, जहाजों, बन्दरगाहों और समुद्री जीवन से सर्वथा अनभिज्ञ, भारतीय छात्रों को यह पुस्तक पढ़ाना आसान नहीं था। गोखले अपना काम कितनी निष्ठापूर्वक करना चाहते थे, इसका पता इस बात से चल जाता है कि उन्होंने उक्त पुस्तक पढ़ाने के लिए, बम्बई जाकर वहां के जहाजघाटों में नौपरिवहन विषयक शब्दों तथा वाक्यांशों की जानकारी प्राप्त की।

शिक्षण व्यवसाय में अपने प्रथम वर्ष में ही, गोखले ने अंग्रेजी भाषा की दुरूहताओं पर यथासम्भव अधिक से अधिक अधिकार प्राप्त कर लेने का निश्चय किया। श्रेष्ठतम लेखकों की कृतियां कण्ठस्थ करने के अपने स्वभाव का इस समय उन्होंने और भी विकास किया। उन्होंने जो साहित्यिक गौरव ग्रन्थ कण्ठस्थ किए उनमें मिल्टन कृत "पैराडाइज लॉस्ट' और बर्क, ग्लैडस्टन, जान ब्राइट तथा अन्य अनेक अच्छे वक्ताओं और ससदज्ञों के भाषण शामिल थे। किसी एकान्त में जाकर वह उन भाषणों को एक बार भी भूल किए बिना दोहराया करते थे। अंग्रेज सम्पादकों द्वारा लिखे गए सम्पादकीय लेख भी वह अवश्य पढ़ते थे।

अब हम फगुसन कालेज की ओर ध्यान देते हैं। वह कालेज अच्छी परम्पराए कायम कर रहा था, विद्यार्थियों को आकृष्ट कर रहा था। ऊचे-से-ऊचे स्तर के प्रोफेसर वहा पढाते थे। गोखले की आकाक्षा थी कि वह उनसे उत्कृष्ट सिद्ध हो और अपने को विशिष्ट बनाने के लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया। इतने उज्ज्वल नक्षत्रो से आलोकित उस आकाश में उज्ज्वलतर न होने का अर्थ था पिछडे रह जाना।

गोखले ने आत्म शिक्षण का जो तरीका अपनाया वह और बातो मे भी उपयोगी रहा। वैसे तो उन्होने साहित्य तथा उदारतावाद का अध्ययन मुख्यत अपने पाडित्य तथा विश्लेषण शक्ति का विकास करने के लिए किया था, परतु आगे चल कर विधायक और राजनीतिज्ञ के रूप मे काम करते समय भी वह ज्ञान सम्पदा बहुत मूल्यवान सिद्ध हुई।

न्यू इगलिश स्कूल मे, गोखले केवल अंग्रेजी ही नही, आवश्यकतानुसार गणित तथा दूसरे विषय भी पढाया करते थे। 1886–87 मे उस स्कूल मे अकगणित पढाते पढाते उनके मन मे यह विचार आया कि उन्हें उस विषय की एक पाठ्यपुस्तक तैयार करनी चाहिए। उन दिनो, और उसके बाद तक भी, फगुसन कालेज के प्रोफेसरो से न्यू इगलिश स्कूल मे भी पढाने के लिए कहा जाता था। उसी समय गोखले की जान-पहचान एन० जे० बापट से हुई, जो अकगणित के बहुत अच्छे अध्यापक थे। उन दोनो ने मिल कर एक पुस्तक तैयार की। गोखले ने वह पुस्तक तिलक को दिखाई जो उस समय गणित के प्रोफेसर थे। तिलक को वह पसन्द आई और उन्होने उसके प्रकाशन के लिए गोखले को प्रोत्साहन दिया। प्रकाशित होने से पहले ही उसे न्यू इगलिश स्कूल में पाठ्यपुस्तक बना दिया गया। वह पुस्तक उपयोगी और लोकप्रिय सिद्ध हुई और भारत मे अनेक स्कूलो मे उसे पाठ्यपुस्तक बनाया गया। उसके अनेक सस्करण निकले और बिक्री भी बहुत हुई। उसका प्रकाशन गोखले के लिए वरदान सिद्ध हुआ। कहा जाता है कि उस पुस्तक की रायल्टी के रूप में उन्हे प्रकाशको से प्रति वर्ष लगभग डेढ हजार रुपया मिल जाता था। वह पुस्तक पहले-पहल अंग्रेजी में प्रकाशित हुई, परन्तु बाद में अन्य भाषाओ मे भी उसका अनुवाद हो गया।

अब गोखले का जीवन बहुत हद तक व्यवस्थित हो चुका था परतु उस सोसाइटी की जिसके गोखले आजीवन सदस्य बन गए थे स्थिति

मतभेद का एक अन्य कारण यह था कि दोनो महानुभाव, जैसुइट सम्प्रदाय वालो द्वारा निर्धारित, त्याग और कष्ट-सहन के सिद्धातो के पालन का आग्रह करते थे, परन्तु उन सिद्धान्तो के पालन के विषय म दोनो मे मदभेद पदा हो गया था। आदश और व्यवहार के बीच समुचित सन्तुलन स्थापित करना आवश्यक था। तिलक ने 1890 म त्यागपत्र के रूप म प्रस्तुत अपने अविस्मरणीय पत्र मे इस विषय का पूरी तरह विवेचन किया। उन्होने कहा कि समस्या के लिए उनके द्वारा अनेक सुझाव दिये जाने पर भी मतभेद दूर होने का कोई माग नही निकल पाया। विवाद आय और वेतना के बारे मे था। क्या किसी आजीवन सदस्य को 'सोसाइटी' से बाहर रुपया कमाने और इस तरह अपनी शक्तियो का ह्रास करने दिया जा सकता है? क्या बाहर इस तरह का काम करने से उसके अध्यापन स्तर पर बुरा प्रभाव नही पडेगा? इन तथा ऐसे ही प्रश्नो न 'सोसाइटी' का काय सचालन कठिन बना दिया था।

तिलक का कथन था कि वह अध्यापको से सन्यासी होने की अपेक्षा नही करते थे। अध्यापको को प्रतिमास 75 रुपये और बोनस के रूप म प्रति वष 400 रुपये दिए जाते और उन्हे 3,000 रुपये की 'जीवन बीमा पालिसी सुविधा' प्राप्त थी। आजीवन सदस्य को जीवन पयन्त वेतन मिलने की व्यवस्था थी। यह सब व्यवस्था समुचित जान पडती है, परन्तु ऐसा लगता है कि सबके लिए समान वेतन की बात कुछ सदस्यो को उचित नही लगी। तिलक की धारणा थी कि वे सब एक ही लक्ष्य सिद्धि के साधक थे। अत उन लोगो मे न तो किसी तरह का अलगाव ही होना चाहिए और न असमान वेतन पर ही किसी तरह का मनमुटाव होना चाहिए।

गलतफहमियो ने जल्दी ही जबदस्त मतभेदो का रूप ले लिया। तिलक ने अपने त्यागपत्र मे लिखा था—इन कठिनाइयो पर विजय पाने का एकमात्र उपाय यह है कि या तो बाहरी काम पर बिल्कुल रोक लगा दी जाए या नियम बना दिया जाए कि इस तरह प्राप्त होने वाला लाभ, मिशनरी सोसाइटियो की तरह, एक साझी निधि के रूप म एकत्रित कर लिया जाए। उसी पत्र में तिलक ने नए सदस्यो को लक्ष्य करके कहा कि ऐसा जान पडता है कि वे पुणे मे अपना काय आरम्भ करने वालो के लिए आजीवन सदस्यता को एक अच्छा आरम्भिक कदम समझते

पूरी तरह सन्तोषजनक नही थी। गोखले के इस सोसाइटी में शामिल होने के समय से ही उलझन सामने आने लगी थी। उन धाराओं, प्रति-धाराओं और अन्तर्धाराओं से परिचित हो जाना आवश्यक है, जिन्होंने इस अग्रणी संस्था को झकझोर दिया था और जिनके प्रभाव महाराष्ट्र के जन-जीवन पर और अप्रत्यक्ष रूप से पूरे भारत पर पड़े थे। 17 मार्च, 1883 को 'स्कूल' के संस्थापक विष्णु शास्त्री चिपलूणकर की 32 वर्ष की अवस्था में अकाल मृत्यु हो गई। जुलाई 1882 में आगरकर और तिलक को मानहानि के उस मुकदमे में, चार-चार महीने कारावास का दंड दे दिया गया जो कोल्हापुर के दीवान ने उनके विरुद्ध चलाया था। 24 अक्तूबर, 1884 को दक्कन एजूकेशन सोसाइटी बनी। 22 जनवरी, 1885 को फर्गुसन कालेज का उद्घाटन हुआ। 14 अक्तूबर, 1890 को तिलक ने 'सोसाइटी' की आजीवन सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। दक्कन एजूकेशन सोसाइटी के इतिहास की ये अत्यंत महत्वपूर्ण तिथियां हैं। हमें यहां इस संघर्ष की तफसील में तो नहीं जाना है, पर इन घटनाओं का एक स्थूल चित्र हमारे सामने रहना आवश्यक है। तिलक और गोखले के जीवन की शुरूआत 'सोसाइटी' से ही हुई थी, वे दोनों अखिल भारतीय ख्यातिप्राप्त नेता बने, उन दोनों ने देश का भाग्य निर्धारण किया। परन्तु उन के कुछ ऐसे आधारभूत मतभेद भी थे, जो उनके सम्बन्धों में कुछ ही समय पश्चात एक दुखद रीति से प्रकट होने लगे थे।

तिलक और आगरकर को उनके छात्र जीवन में और उनके द्वारा स्थापित 'सोसाइटी' में अभिन्न समझा जाता था। देश के स्वाधीनता संग्राम में वे अग्रगण्य थे। यह अवश्य है कि आगरकर सामाजिक सुधार पर भी राजनैतिक परिवर्तन के समान ही जोर देते थे। उधर, सामाजिक मामलों में परिवर्तन के विरोधी न होने पर भी, तिलक समझते थे कि राजनैतिक स्वाधीनता सामाजिक सुधार से पहले मिलनी चाहिए। इन दोनों महानुभावों ने, एक और मित्र के सहयोग से, 'केसरी' और 'मराठा' का प्रकाशन आरम्भ किया। केसरी का कार्यभार तिलक पर था और 'मराठा' का आगरकर पर। अनेक अवसरों पर इन दोनों साप्ताहिकों में परस्पर विरोधी विचार व्यक्त हुए। मतभेद बढ़ते गए और सम्पादकों पर भी इसका प्रभाव पड़ा।

मतभेद का एक अन्य कारण यह था कि दोनों महानुभाव, जैसुइट सम्प्रदाय वालों द्वारा निर्धारित, त्याग और कष्ट-सहन के सिद्धान्तों के पालन का आग्रह करते थे, परन्तु उन सिद्धान्तों के पालन के विषय में दोनों में मतभेद पैदा हो गया था। आदर्श और व्यवहार के बीच समुचित सन्तुलन स्थापित करना आवश्यक था। तिलक ने 1890 में त्यागपत्र के रूप में प्रस्तुत अपने अविस्मरणीय पत्र में इस विषय का पूरी तरह विवेचन किया। उन्होंने कहा कि समझौते के लिए उनके द्वारा अनेक सुझाव दिये जाने पर भी मतभेद दूर होने का कोई मार्ग नहीं निकल पाया। विवाद आय और वेतन के बारे में था। क्या किसी आजीवन सदस्य को 'सोसाइटी' से बाहर रुपया कमाने और इस तरह अपनी शक्तियों का ह्रास करने दिया जा सकता है? क्या बाहर इस तरह का काम करने से उसके अध्यापन स्तर पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा? इन तथा ऐसे ही प्रश्नों ने 'सोसाइटी' का कार्य संचालन कठिन बना दिया था।

तिलक का कथन था कि वह अध्यापकों से संन्यासी होने की अपेक्षा नहीं करते थे। अध्यापकों को प्रतिमास 75 रुपये और बोनस के रूप में प्रति वर्ष 400 रुपये दिए जाते और उन्हें 3,000 रुपये की 'जीवन बीमा पालिसी सुविधा' प्राप्त थी। आजीवन सदस्य को जीवन पर्यन्त वेतन मिलने की व्यवस्था थी। यह सब व्यवस्था समुचित जान पड़ती है, परन्तु ऐसा लगता है कि सबके लिए समान वेतन की बात कुछ सदस्यों को उचित नहीं लगी। तिलक की धारणा थी कि वे सब एक ही लक्ष्य सिद्धि के साधक थे। अतः उन लोगों में न तो किसी तरह का अलगाव ही होना चाहिए और न असमान वेतन पर ही किसी तरह का मनमुटाव होना चाहिए।

गलतफहमियों ने जल्दी ही जबर्दस्त मतभेदों का रूप ले लिया। तिलक ने अपने त्यागपत्र में लिखा था—इन कठिनाइयों पर विजय पाने का एकमात्र उपाय यह है कि या तो बाहरी काम पर बिल्कुल रोक लगा दी जाए या नियम बना दिया जाए कि इस तरह प्राप्त होने वाला लाभ, मिशनरी सोसाइटियों की तरह, एक साझी निधि के रूप में एकत्रित कर लिया जाए। उसी पत्र में तिलक ने नए सदस्यों को लक्ष्य करके कहा कि ऐसा जान पड़ता है कि वे पुणे में अपना कार्य आरम्भ करने वालों के लिए आजीवन सदस्यता को एक अच्छा आरम्भिक कदम समझते

है और यदि किसी व्यक्ति में उत्साह और आकांक्षा हो तो वह उसे व्यक्तिगत ख्याति और लाभ का आधार-मात्र बना लेता है। तिलक को 'वैरागी' कहा जाने लगा और उनकी उदासीनता को स्वाग्रह और आत्म प्रशंसा का आवरण समझा जाने लगा। तिलक के सामने एक ही विकल्प था—त्यागपत्र दे देना। उन्होंने यही किया।

तिलक के त्यागपत्र का सम्भावित कारण एक अन्य घटना से निर्धारित किया जा सकता है बात उस समय शुरू हुई जब गोखले ने सार्वजनिक सभा का मन्त्रिपद स्वीकार करने की इच्छा प्रकट की। 25 जुलाई को तिलक ने डेक्कन एजुकेशन सोसाइटी की प्रबन्ध समिति के मन्त्री के नाम पत्र लिख कर एक बैठक बुलाने का सुझाव दिया। उन्होंने कहा—मैं जानता हूँ कि गोखले को एक सीमा तक अपनी आय बढ़ाने के लिए निजी तौर पर काम करने की छूट दे दी गई है। लेकिन मेरा विचार है कि हमें यदा-कदा निजी काम करने और किसी दूसरी जगह स्थायी रूप से नौकरी और जिम्मेदारी स्वीकार करने के बीच अन्तर मानना चाहिए। मैं समझता हूँ कि यह स्थिति हमारे लक्ष्य के विरुद्ध और हमारे उस पूर्व निश्चय के प्रतिकूल है जिसके आधार पर हम यहाँ एकत्र हुए हैं।

बैठक हुई और तिलक ने एक प्रस्ताव रखा जिसमें गोखले द्वारा सार्वजनिक सभा के मन्त्रिपद की सम्भावित स्वीकृति का विरोध किया गया था। उस प्रस्ताव के पक्ष में पांच व्यक्तियों ने मत दिया और विपक्ष में चार ने। आगरकर और गोखले अल्पसंख्या में रह गए। उसी बैठक में एक दूसरा प्रस्ताव चार के मुकाबले में पांच मतों से पास हो गया, जिसमें गोखले की स्वीकृति का अनुमोदन किया गया था। पाटणकर जिन्होंने पहले तिलक का साथ दिया था अब दूसरे पक्ष के साथ हो गए। इस प्रकार एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हो गई गोखले मन्त्रिपद स्वीकार करने के लिए भी स्वतन्त्र थे, अस्वीकार कर देने के लिए भी। तिलक ने यही सवाल फिर उठाया और 14 अक्तूबर को एक और बैठक की गई। इस बैठक में प्रोफेसर केलकर ने एक प्रस्ताव रखा, जिसमें वस्तुतः गोखले द्वारा मन्त्रिपद स्वीकार किये जाने का विरोध था। केलकर का प्रस्ताव तीन के मुकाबले छः मतों से पास हो गया। यह प्रस्ताव पास हो जाने पर, आगरकर ने यह प्रस्ताव रखा कि उपर्युक्त प्रस्ताव, स्वयं आगरकर सहित, सभी व्यक्तियों पर लागू होता है। अतः इस सम्बन्ध में मत लिए

गए कि यह प्रस्ताव किन किन सदस्यो पर लागू होता है। मतदान अस्पष्ट रहा। तिलक आगरकर, नामजोशी और आप्टे को ऐसे व्यक्ति ठहराया गया जिन पर यह प्रस्ताव लागू होता था। इस प्रकार मूल प्रस्ताव का प्रभाव तिलक पर पडा। उन्होने शीघ्र ही इस सम्बन्ध मे विस्तृत विवरण देने का वचन देते हुए तत्काल त्यागपत्र दे दिया। 'सोसाइटी' मे मतभेद उपस्थित हो गया। गोखले पहले ही मन्त्रिपद स्वीकार कर चुके थे और सोसाइटी का सदस्य बने रहने या न बने रहने की बात अब उन्हा की इच्छा पर निर्भर थी।

तिलक के त्यागपत्र के बाद, उसी दिन और उसी बैठक मे, गोखले का एक और पत्र सामने आया। गोखले ने लिखा था कि यदि सोसाइटी से उनके अलग हो जाने पर तिलक उसमे बने रहने को तैयार हो तो मै आजीवन सदस्य के नाते अपना त्यागपत्र प्रस्तुत करता हू। गोखले को बता दिया गया कि तिलक के त्यागपत्र का सम्बन्ध, दक्कन एजुकेशन सोसाइटी के साथ गोखले का सम्बन्ध बने रहने अथवा टूट जाने के साथ नही है। अत गोखले ने अपना त्यागपत्र वापस ले लिया। तिलक के साथ-साथ प्रोफेसर पाटणकर ने भी त्यागपत्र दे दिया और वह स्वीकार भी कर लिया गया। यह था उस सोसाइटी के इतिहास के सर्वाधिक दुखद अध्याय का अन्त जिसकी स्थापना जन सामान्य को त्याग तथा कष्ट सहन का पाठ पढाने के लिए की गई थी।

दक्कन एजुकेशन सोसाइटी फूलती-फलती और शिक्षा का सम्वर्द्धन करती रही। ऐसे अनेक शिक्षा सस्थानो के उदय का श्रेय इसी सगठन को प्राप्त है, जिनके सदस्य त्याग-भावना से अभिभूत थे। इस सोसाइटी के कर्णधारो ने भी, सयम, सौम्यता और सामजस्य मूलक नीति पर चल कर अपने को सरकार के साथ हो सकने वाले टकरावो से बचाए रखा।

गोखले और तिलक दोनो ही ऐसे महापुरुष थे, जिन्हे सोसाइटी से कही अधिक विस्तृत क्षेत्र मे काम करना था। अनेक वर्ष बाद गोखले ने 'सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसाइटी' नामक वह सस्था चलाई, जिसके सदस्य उस सस्था से बाहर का कोई कार्यभार स्वीकार नही कर सकते थे। अपनी निर्धारित आय से अधिक वे जो कुछ कमाते थे वह सोसाइटी मे जमा कर दिया जाता था। जिस सस्था की स्थापना गोखले ने की, उसमे उन्होने जैसुइट सम्प्रदायो के 'सबके लाभ के लिए त्याग' के सिद्धान्त का

दृढ़तापूर्वक पालन किया, यद्यपि वह दक्खन एजुकेशन सोसाइटी में रह कर ऐसा नहीं कर पाए थे।

तिलक ने ऐसी अन्य शिक्षा संस्थाओं की स्थापना नहीं की, जहां इस तरह के सिद्धान्तों का कठोरता से पालन होता हो। परन्तु 'केसरी' और 'मराठा' की ओर एसे त्यागशील व्यक्ति बराबर आकृष्ट होते रहे जो अपने क्षेत्र में महान रहे। तिलक इन प्रतिष्ठानों के मालिक थे, जो प्रायः सदा ही आर्थिक कठिनाइयों में ग्रस्त रहे। वह इन प्रतिष्ठानों के कर्मचारियों को समुचित वेतन नहीं दे पाते थे और वहां, बाहर से कमाया गया धन जमा कर दिए जाने के सिद्धान्त पालन का दावा भी कभी नहीं किया गया। इसके विपरीत इन प्रतिष्ठानों के सदस्यों के बाहरी कार्यकलापों ने इन साप्ताहिकों की प्रतिष्ठा और शक्तिमत्ता में वृद्धि ही की।

दक्खन एजुकेशन सोसाइटी के सदस्यों की दृष्टि में, भारत एक ऐसा देश था, जिसे यहां के लोगों को शिक्षा द्वारा आत्मविश्वासी और विवेकशील बना कर, विदेशी शासन से मुक्त किया जाना था। तिलक, आगरकर और उनके सहयोगी व्यवहारनिष्ठ व्यक्ति थे। वे जानते थे कि देश के पुनरुत्थान के लिए त्याग के नामोच्चारमात्र की नहीं, वास्तविक त्याग की आवश्यकता है। आखिर महत्वपूर्ण वस्तु क्या है? क्या लोगों को शिक्षित करने के लिए त्याग भावना का महात्म्य है, या त्याग स्वयं साध्य ही है? इन प्रश्नों पर गोखले ने गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया था और उन्हें एक मार्गदर्शक की खोज थी। गोखले को तिलक की अपेक्षा आगरकर ने अधिक प्रभावित किया परन्तु उन्हें इस बात का खेद अवश्य था कि मतभेद तीव्रतर करने और बात बढ़ाने के वह स्वयं ही कारण बने। वह सोसाइटी से अलग हो जाने को तैयार थे, परन्तु उनके निकल जाने पर भी उस संस्था में एकलयता न आ पाती। हां, इस समस्त कार्य-व्यापार में उन्होंने यह प्रकट कर दिया कि वह एक सरल, स्पष्टवादी और निरभिमान व्यक्ति थे।

4 फर्गुसन कालेज के

तिलक ग्रौर उनके दो ग्रन्य सहयोगिया के ग्रलग हा
भी 'सोसाइटी', 'कालेज' ग्रौर 'स्कूल' की गतिविधिया
हा, इन सस्थाग्रा स सम्बद्ध लोगा में पूरी तरह ताल-मेल
लोग गुटबन्दी में पड गए ग्रौर एक-दूसरे पर उग्र रूप से
रहे । इन सब वाता मे छात्रा ने भी भाग लिया ।
प्रकार के ग्रव्यवस्थित वातावरण मे रह कर काम करना
तक तिलक का सम्बन्ध है, उन्होंने ग्रपनी कोई ग्रलग सोसाइटी
इसके विपरीत उन्हान ता यहा तक इच्छा प्रकट की कि यदि
कार्यकलापा में वाधा पडे विना यह सम्भव हुग्रा, तो वह
में पढाते रहेंगे । परन्तु ऐसा हो नही पाया । उन्हान सोस
ग्रौर फिर कभी ग्रतिथि-व्याख्याता के रूप में भी वहा न ग्राए

यह ग्रवश्य मानना पडता है कि सोसाइटी का वह
फिर कभी नही रह पाया । हा, उसे श्री ग्रार० पी० पराजपे ग्र
डी० रानडे—जस, शिक्षा जगत के उत्कृष्ट, मेधावी विद्वान
मिल गया, सोसाइटी के साथ जिनका सम्बन्ध ग्रत्यन्त महत्

इन्ही वाता के कारण दक्कन एजुकेशन सोसाइटी फूल
ग्रौर उसने देश सेवा के लिए हजारा युवक तैयार कर दिए
कोई ग्रतिशयोक्ति नही है कि महाराष्ट्र के सभी क्षेत्रो
नेता इसी सोसाइटी की देन थे । इसी सस्था द्वारा प्रस्तुत
वम्बई प्रात मे ग्रनेक स्कूल ग्रौर कालेज खोले गए । एक सी
जा सकता है कि यह सस्था ग्रपने सस्थापका का लक्ष्य पूरा
रही ।

तिलक के चले जाने के वाद गोखले गणित की कक्षाए
वाद में वह ग्रथशास्त्र ग्रौर इतिहास भी पढाने लगे । कहा
वह इन दो विषया के ग्रतिरिक्त ग्रौर किसी में प्रवीण नही थे

उद्धरण यहा प्रस्तुत करना रोचक होगा । पराजपे का कथन है गोखले बहुत विधिनिष्ठ थे सरलतम अवतरण की भी उन्होंने कभी उपेक्षा नही की । सभी सन्दर्भों, विशेषत ऐतिहासिक सन्दर्भों की व्याख्या करने में वह कोई कसर नही उठा रखते थे । परतु उनके शिक्षण का लक्ष्य, ऐसे किसी छात्र मे साहित्य का प्रेम पैदा करना नही था, जिसके मन म पहले स वह मौजूद न हो । सम्भवत यह कहा जा सकता है कि प्रोफेसर केलकर की तुलना मे उनका शिक्षण औसत परीक्षार्थी क लिए अधिक उपयोगी था ।

उनके एक अन्य शिष्य प्रोफेसर टी० के० शाहानी का कथन है—म कह सकता हू कि 1901 में बर्क कृत 'दि फ्रेंच रिवाल्यूशन' स सबधित उनके भाषण एक ऐसी दिमागी गिज़ा थी जो वहा उपस्थित बालको की अपेक्षा किसी देवसमाज क लिए कही अधिक उपयुक्त थी । उस राजनीति दर्शनवेत्ता का प्रत्येक विचार ऐसे दृष्टान्त का प्रवाह साथ लेकर, उनकी मधुर वाणी द्वारा प्रकट होता था जो नागरिको क दैनन्दिन जीवन म लिए गए होते थे ताकि अल्प स अल्प बुद्धि वाले बालक के मन पर भी पुस्तक क मूल आशय का स्पष्ट चित्र उतर आए । भिन्न होने पर भी ये प्रशस्तिया सत्य अवश्य होगी । पराजपे की सम्मति का सम्बध साहित्य शिक्षण के साथ है और शाहानी की सम्मत्ति का, इतिहास और साहित्य क साथ । इनमें स पहले महानुभाव गोखले के अध्यापन काल के आरम्भ मे उनके शिष्य थे और द्वितीय, उक्त अवधि के अन्त मे । इस बात में दोनो एकमत ह कि उनके भाषण सामान्य परीक्षार्थी' और अल्प से अल्प बुद्धि वाले बालक के लिए उपयोगी होते थे । इस प्रकार स्पष्ट ह कि अध्यापन व्यवसाय में गोखले असफल नही रहे । सभवत वह जन्मजात अध्यापक तो नहा थे परन्तु अपने को योग्य अध्यापक बनाने के लिए उन्होंने परिश्रम बहुत किया ।

गोखले पद्रह वर्ष तक सोसाइटी म रहे । उनका यशदान निर्धारित करने के लिए उस अवधि स सम्बधित कुछ तथ्यो पर विचार कर लेना आवश्यक है । गोखले न मराठा मे कुछ लेख लिखे । 'केसरी' के लिए समाचारो के सग्रह और सार सक्षेपन का काय भी उन्होंने किया । जब आगरकर न 'सुधारक' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया, उस समय गोखले पर उसके अग्रेजी भाग का कार्यभार था । गोखले के कुछ

लेखो की प्रशसा भी हुई, परन्तु अपने कुछ अन्य समसामयिको की भाति
उनका जन्म पत्रकार बनने के लिए नही हुआ था।

1886–87 मे उन्होने 'जनरल वार इन यूरोप' शीर्षक से एक
लेखमाला लिखी। जिसकी बहुत प्रशसा हुई। बम्बई के गवनर लार्ड रेई
के पक्षपोषण के लिए उन्होने एक लेख लिखा 'शेम, शेम माई लार्ड
शेम'। कहा जाता है कि गवनर को वह लेख इतना पसन्द आया कि वह
पत्रिका के ग्राहक बन गए। समय-समय पर लिखे गए इन लेखो के अति-
रिक्त उन्होने पत्रकारिता के क्षेत्र मे गहरा प्रवेश नही किया।

वास्तव मे उस समय राजनीति और पत्रिकारिता मे चोली और दामन
का सम्बन्ध था। प्रत्येक राजनैतिक नेता अपने समथन के लिए किसी-
न किसी पत्रिका को अपना बना लेता था या अपने विचारो के प्रचार के लिए
किसी पत्रिका का मालिक बन जाता था। जब गोखले, एम० जी० रानडे
के सम्पर्क मे आए उस समय रानडे पर सावजनिक सभा की त्रैमासिक
पत्रिका का कार्यभार था।

गोखले का निजी जीवन धीरे-धीरे उनके सावजनिक जीवन का ही
अंग बन गया। तब भी उन्होने अपने भाई के बच्चो का पालन करने,
उन्हे शिक्षा दिलाने और प्रोत्साहन करने के दायित्व निवाह मे कमी
नहीं आने दी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, गोखले का पहला विवाह
चौदह वर्ष की अवस्था मे ही हो गया था। उनकी पत्नी एक ऐसी अभागी
बालिका थी जो श्वेत कुष्ठ से पीडित थी। गोखले के भाई और भावज
ने उन्हे अनुरोध किया कि वह दूसरा विवाह कर ले। गोखले ने आरम्भ
मे तो आपत्ति की परन्तु अन्त मे यह बात मान ली। कहा जाता है कि
दूसरे विवाह के लिए पहली पत्नी की सहमति पहले ही ले ली गई थी।
दूसरा विवाह सुखप्रद तो रहा, पर यह सुख थोडे ही समय का रहा।
1900 मे दूसरी पत्नी का देहान्त हो गया, जिस समय गोखले 34 वर्ष
के थे। उनका एक पुत्र भी था जिसकी मृत्यु छोटी आयु मे हो गई थी।
काशीबाई तथा गोदूबाई नामक दो पुत्रिया थी। दोनो ने अपने पिता के
मार्गदर्शन मे स्वभावत अच्छी शिक्षा प्राप्त की।

सामाजिक सुधार के प्रबल समथक होने पर भी गोखले समाज सुधार
आन्दोलन में आगे नहीं रहे। कहा जाता है कि पहली पत्नी के जीवित
होते हुए दूसरा विवाह कर लेने का बोध, उनके हृदय पर इतना अधिक

रहा कि वह प्रान्त का समाज सुधार आन्दोलन के अगुआ व अयोग्य समझन लगें। उनकी मन स्थिति यह जान पड़ती है कि जिस बात पर स्वय आचरण न किया जा सकता हो उसका प्रचार भी नही करना चाहिए। अत समाज सुधार के काय के प्रति पूरी सहानुभूति होन पर भी उन्होंने अपने को उसस अलग ही रखा। यह माना एक आत्मनिषेधक आदेश था। उनके गुरु रानडे भी एक ऐस ही धम सकट में पड़े थे। अपनी पत्नी का देहान्त हो जाने पर, उन्होंन किसी विधवा के साथ विवाह न करके एक नववयस्का के साथ विवाह कर लिया था। इस पर उन्हें आलोचना का सामना करना पड़ा। स्वय विधवा विवाह क मामल में अपने परिवार वालो की इच्छा शिरोधार्य करनी पड़ी थी।

गोखल बहुत अच्छे खिलाड़ी थे। 1987 स 1889 तक वह बराबर क्रिकेट खेला करते थे हालाकि इस खेल में वह चमक नही पाए। वह कभी-कभी टनिस और बिलियर्ड भी खेला करत थे। पाश्चात्य देश वालो के इन खेलो मे वह उनस भी आगे निकलना चाहत थे। एक बार उन्होंन इग्लड से भारत लौटते हुए एक अग्रेज को बिलियर्ड में हराया जिसस उन्हे बहुत खुशी हुई। ताश और शतरज स भी उन्हें प्रेम था और इनस वह जीवन के अन्त तक अपना मनोरजन करत रहे।

यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि गोखल को नाटक प्रिय थे। उन दिनो नाटक राजनैतिक और सामाजिक मामलो में प्रचार के जबदस्त साधन बनते जा रहे थे। जो बात सरकार के प्रति बेवफा कहलाने के डर स खुले आम नही कही जा सकती थी उसी का अप्रत्यक्ष रूप स सकेत नाटको द्वारा कर दिया जाता था। इसी प्रकार नाटको द्वारा सामाजिक बुराइयो पर भी कस कर प्रहार किया जाता था।

सावजनिक मच पर से दिए गए भाषणो द्वारा गोखले जनता को अपनी ओर न खीच सके। वह आशावादी नही थे। न तो वह जनता को अपना अनुयायी बनाने में समथ हुए और न उस मन्त्रमुग्ध करने मे। सावजनिक प्रवक्ता होन का दावा उन्होंने कभी नही किया, परन्तु तथ्य तथा आकडो की क्रम योजना से युक्त उनके भाषण मूल्यवान और प्रभावपूण होते थे

1895 के आसपास गोखले दक्कन एजुकेशन सोसाइटी के वरिष्ठतम सदस्य बन गए। उनसे पहली पीढी क सदस्य या तो सोसाइटी छोड गए

ये या अपनी जीवन लीला समाप्त कर चुके थे । गोखले के सहयोगियो ने, उनसे फर्गुसन कालेज के प्रिंसिपल का चिर-अभिलाषित पद स्वीकार कर लेने का आग्रह किया । उन्होने विशुद्ध विनम्रतावश वह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। कालेज के बाहर उनके कार्यकलाप भी बराबर बढते जा रहे थे। अत और अधिक दायित्व वह नही सभालना चाहते थे । उन्हे भय था कि सम्भवत वह उतना समय और श्रम इस काम मे नही लगा सकेंगे जितना प्रिंसिपल पद का उत्तरदायित्व निभाने के लिए आवश्यक है । प्रिंसिपल न बनकर भी गोखले प्रिंसिपल से कुछ अधिक बन गए—वह वास्तव मे उस दुनिया के अनुभवी परामर्शदाता बन गए थे जिसका विकास उनके आस-पास हो चुका था।

गोखले ने कुछ वर्ष तक दक्कन एजुकेशन सोसाइटी के मन्त्रिपद पर काम किया । यह एक कठिन कार्य था, परन्तु वह इस परीक्षा मे खरे उतरे । धन सग्रह के लिए धनवानो के द्वार खटखटाना और उन्हे धन देने के लिए तयार करना पडता था । भारत में सम्भवत ऐसा कोई नेता नही हुआ, जिसे इस अग्नि परीक्षा मे न उतरना पडा हो। उन दिनो धन सग्रह सबसे कठिन काम था । कारण स्पष्ट है । धनवानो की सत्ता सरकार पर निर्भर रहती थी । कोई सस्था चाहे जितना अच्छा काम कर रही हो और उसका उद्देश्य कितना भी अच्छा क्यो न हो यदि सरकार पर उसकी कोप दृष्टि होती थी तो उसके लिए कोई धन न देता था । अत मन्त्री को अपनी एक आख सरकार पर लगाए रखनी होती थी और दूसरी आख उन लोगो पर जो सरकार पर निर्भर थे । नरेश, उद्योगपति, धनी, जागीरदार और ऐसे ही अन्य लोग शासको के कोप से भयभीत रहते थे । दक्कन एजुकेशन सोसाइटी को अपने कार्यकलापो तथा अपने विद्यार्थियो के बारे मे सरकार की आशकाओ का भी निवारण करना होता था।

'सोसाइटी' में होने वाले परिवर्तनो का उल्लेख करना यहा रोचक रहेगा । न्यू इगलिश स्कूल के सस्थापक विष्णू चिपलूणकर कहा करते थे कि वह उक्त स्कूल के रूप मे जिस पवित्र मन्दिर का निर्माण कर रहे है, उसकी पवित्रता का नाश वह कभी किसी अग्रेज द्वारा नही होने देंगे । चिपलूणकर का देहावसान हुए एक-दो वर्ष भी नही हो पाए थे कि यह स्थिति बदल गई । स्वय कालेज का नाम भी एक अग्रेज गवर्नर के नाम पर रखा गया था और एक अवसर पर तो एक अग्रेज का अध्यापक वर्ग में

शामिल कर लेने की बात भी सामने आई। स्वयं उक्त अंग्रेज द्वारा यह प्रस्ताव अस्वीकार कर देने के कारण वह उलझन टली। एक अंग्रेज, प्रिंसिपल सेल्वी, को दक्कन एजूकेशन सोसाइटी का प्रधान चुन लिया गया। हम यह तो नहीं समझते कि सोसाइटी के सदस्यों ने यह जो कुछ किया उससे वे प्रसन्न अथवा गौरवान्वित हुए परन्तु सोसाइटी को बनाये रखना आवश्यक था। सरकारी मान्यता प्राप्त न कर पाने वाली किसी शिक्षण संस्था का अस्तित्व ही सम्भव न था और इस मान्यता के लिए सरकार के प्रति निष्ठाभिव्यक्ति का मूल्य चुकाना पड़ता था। आवर्ती खर्च पूरा करने के लिए दक्कन एजूकेशन सोसाइटी ने सरकार से अनुदान भी लिया।

गोखले का काम कठिन था। परन्तु उनके चरित्र और स्वभाव ने उनका साथ दिया। किसी व्यक्ति के प्रति उन के मन में दुर्भाव न था। दूसरों को संतुष्ट कर देने वाली उनकी वाणी, चित्ताकर्षक आचार-व्यवहार और संस्था संचालन की अदम्य अभिलाषा ने उन्हें बहुत सहायता पहुंचाई। इन्हीं विशेषताओं के कारण वह कालेज और विद्यार्थियों के लिए छात्रावास की इमारत बनाने के लिए आवश्यक धन एकत्र करने में समर्थ हुए। यह कोई साधारण उपलब्धि न थी।

गोखले के शैक्षिक कार्यकलापों पर प्रकाश डालने वाला यह अध्याय समाप्त करने से पूर्व, बम्बई विश्वविद्यालय के व्यापकतर क्षेत्र में उनके योगदान का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है।

बम्बई विश्वविद्यालय की सिनेट के वह कई वर्ष तक सदस्य रहे और उन्होंने उक्त सेनेट के कामों में बहुत दिलचस्पी दिखाई। उनका कहना था कि सेनेट में होने वाले विचार विमर्श राजनैतिक प्रभावों से मुक्त रहने चाहिए। सरकार ने सिद्धांत रूप से तो यह बात मानी पर वह शिक्षा को राजनीति के अधीन करने से नहीं चूकी। गोखले को सिनेट में, सरकार के मनोनीत सदस्यों से अनेक अवसरों पर कहना पड़ा कि उन्हें राजनीतिक और शिक्षा को एक-दूसरे में नहीं मिलाना चाहिए।

ऐसा ही एक अवसर उस समय सामने आया जब बम्बई सरकार, 'बंग भंग' के पश्चात इतिहास को अनिवार्य विषय के रूप में नहीं रखना चाहती थी। सरकार का कहना था कि डिग्री पाठ्यक्रम के लिए इंग्लैंड में वहां के इतिहास को एक अनिवार्य विषय का स्थान नहीं दिया गया था,

अत भारत में भी ऐसा करना आवश्यक नही है। इस प्रकार भ्रमोत्पादक तक भी प्रस्तुत किए गए कि अधिकतर विद्यार्थियों के लिए इंग्लैंड के इतिहास की अधिक उपयोगिता नही है और यह विषय भली प्रकार पढा सकने वाले प्राफेसर के न होने के कारण विद्यार्थियों का विशेषत रटने का ही सहारा लेना पड़ता है।

गोखले न बहुत योग्यता स इन तर्कों का खण्डन किया। उन्होने कहा कि इतिहास कलकत्ता विश्वविद्यालय मे अनिवाय विषय नही है परन्तु फिर भी वहा के विद्यार्थी इस पढ रह हैं। इतिहास के शिक्षण का किसी राजनैतिक स्थिति अथवा उसके कारण उत्पन्न हो जाने वाली हलचल के साथ कोई सम्बन्ध नही। जन शिक्षा निदेशक शाप ने इस सम्बन्ध मे विभिन्न कालेजो क प्राफेसरो के विचार जानन क लिए, उनके नाम पत्र लिखे थे कि इतिहास की शिक्षा अनिवाय विषय के रूप मे दी जाए या नही। यह कोई अच्छा कदम नहीं था और गोखले शिक्षा-क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप पसन्द नही करते थे। उन्होने पूरी शक्ति से इस दिशा में काय किया।

5 राजनीति की दीक्षा

गोखले जब दक्कन एजुकेशन सोसाइटी में अध्यापक बने उस समय वह केवल उन्नीस वर्ष के थे। जब उनके सार्वजनिक सभा का मन्त्रिपद स्वीकार करने का प्रश्न उठा वह केवल बाइस वर्ष के थे। यही वह मामला था जिससे तिलक असहमत थे और अतत इसी प्रश्न ने सोसाइटी के सामने एक सकट उपस्थित कर दिया था। दोनों अवसरों के बीच के वर्षों की संख्या तो अधिक नहीं थी, परन्तु इस अवधि में गोखले में कहीं अधिक परिपक्वता आ गई थी। इसमें सन्देह नहीं कि विद्वान और दृढ निश्चयी सहयोगियों के साथ उनके बौद्धिक कार्य व्यापारों और सम्बन्धों ने इस प्रक्रिया में योग दिया, परन्तु उन सबसे अधिक इसका श्रेय महामानव न्यायमूर्ति रानडे को दिया जाना चाहिए, जिन्होंने उन्हें वही बना दिया जो उन्हें बनना था। यह तथ्य स्वीकार करने में गोखले ने कभी सकोच नहीं किया।

न्यायमूर्ति रानडे शौर्य और ओज में ढले हुए व्यक्ति थे जिन्हें इतिहास निर्माता बनना था। वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संस्थापकों में से थे। महाराष्ट्र की अनेक संस्थाओं के वह जन्मदाता थे। उन्होंने अपनी जीवन यात्रा अर्थशास्त्र के अध्यापक के रूप में आरम्भ की, परन्तु शीघ्र ही वह कानून की ओर बढ निकले और आगे चल कर वह उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर जा पहुंचे। लोगों पर उनका जादू जैसा असर था इसका कारण न्यायालय में उनकी इतनी ऊंची स्थिति से कहीं अधिक उनका बुद्धि वैभव उनकी विद्वता और उनका देश प्रेम ही था। वर्षों के बाद 1942 में बम्बई में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पर अखिल भारतीय कांग्रेस विषय समिति की बैठक में भाषण में हुए गांधी जी ने कहा था कि रानडे सरकार के आदर्श सेवक थे। रानडे ने सरकार की सेवा की पर भी उसकी दासता नहीं की और महात्मा गांधी चाहते थे कि उस समय के सभी सरकारी कर्मचारी रानडे के भव्य आदर्श का अनुकरण करें। रानडे निर्भीक व्यक्ति थे तथा अन्य किसी भी बात से अधिक पक्ष के हिताकांक्षी थे। ऐसे अवसर आए जब सरकार ने उनकी वफादारी

पर सन्देह करके उनके कायकलापो पर नजर रखने के लिए जासूस नियुक्त किए। रानडे क्रान्तिकारी नहीं थे वह तो विकासमूलक प्रगति के दृढ विश्वासी थे। सक्षेप मे वह सन्त राजनीतिज्ञ थे, राजनैतिक सन्त थे।

धार्मिक मामलो में रानडे परम्परागत अर्थों मे रूढिवादी नही थे। वह प्रार्थना-समाजी थे और उस समाज के एक शक्ति स्तम्भ भी थे। यह सब होने पर भी, वह उन लोगो की भावना को ठेस नही पहुचाना चाहते थे जो प्राचीन प्रथा-परम्पराओ मे आस्था रखते थे। इतना ही नहीं वह स्वय अपने परिवार मे अनेक चिर प्रचलित प्रथाओ का पालन करते थे।

सामाजिक क्षेत्र मे रानडे एक सयत क्रान्तिकारी थे। उस समय की एक प्रथा—अल्पवयस्क बालिकाओ के विवाह—से उन्हे घृणा थी और उन्होने इसे बराबर निरुत्साहित किया। विधवा विवाह के वह समर्थक थे और उन्होने स्वय एस विवाह समारोहो मे बढ चढ कर भाग लिया था। इस 'धर्मोल्लघन' के कारण उन्हे जाति बहिष्कृत कर दिया गया। उनके परिवार को भी कई कष्ट झेलने पडे। आगरकर की भाति रानडे भी महाराष्ट्र में प्रचलित अनेक हृदय विदारक प्रथाओ—उदाहरण के लिए, पति का देहान्त हो जाने पर पत्नी का सिर मुड देना, कन्या के प्रति जान बूझकर लापरवाही बरतना और सती जसी कुप्रथा के अतिम अवशेषो के प्रबल विरोधी थे।

राजनीति मे रानडे कट्टर सवधानिकतावादी थे। परतु उनके दृष्टिकोण म निष्क्रियता न थी। जब जब उन्होने सरकार के फसले या काय को गलत या अनुचित समझा, तब-तब उन्होने यह बात स्पष्ट कह देने मे किंचित सकोच नही किया। जिन आदर्शो का उन्होने पक्ष समर्थन किया उनके सम्बध मे तथ्य और आकडे एकत्र करने तक की कसौटी पर उन तथ्यो की परख करने, स्मरणपत्र तयार करने का काम उन्होने अडिग भाव स किया।

आर्थिक मामलो मे भी रानडे की दिलचस्पी राजनैतिक सुधार के समान थी। द्रुत औद्योगीकरण के वह कट्टर समर्थक थे। इग्लड पर लागू अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त, भारत पर लागू क्यो न हो? भारत जब अपने ही यहा वस्तुए बना सकता है तो वह विदेशी माल पर निभर क्यो रहे? वह औद्योगीकरण को भारत की प्रगति का मूल आधार मानते थे। आर्थिक

विषयों से सम्बन्धित रानडे की रचनाएं आज भी रुचिपूर्वक पढ़ी जा सकती हैं। ऐसा था वह व्यक्ति जिसे गोखले ने अपना गुरु बनाने का निश्चय किया था।

उनकी प्रथम भेंट घनिष्ठ और आत्मीयतापूर्ण सम्बन्ध की विचित्र भूमिका सिद्ध हुई। गोखले के अध्यापक बनने के एक वर्ष बाद 1885 में हीराबाग में उनके स्कूल के एक समारोह का आयोजन हुआ। अतिथियों का स्वागत करके उन्हें निर्धारित स्थान पर पहुंचाने का कार्य गोखले को सौंपा गया था। उस समय रानडे से अपरिचित होने के कारण गोखले ने उन्हें निमंत्रण पत्र दिखाने के लिए कहा। विशिष्ट अतिथि अपने साथ निमंत्रण पत्र लाना भूल गए थे और उस आयु में भी आग्रहशील गोखले ने उन्हें अंदर नहीं जाने दिया। सार्वजनिक सभा के तत्कालीन मंत्री अण्णासाहेब साठे ने घटनास्थल पर पहुंच कर रानडे को उनके लिए सुरक्षित स्थान तक पहुंचाया। यह घटना रानडे ने शीघ्र ही भुला दी और गोखले को उक्त व्यवहार के कारण रानडे से क्षमा नहीं मांगनी पड़ी।

शीघ्र ही फर्गुसन कालेज में प्राध्यापक बन जाने वाले उस युवा अध्यापक की ओर सबका ध्यान आकृष्ट होना स्वाभाविक था। यह इसलिए और भी अधिक स्वाभाविक हो सका क्योंकि आगरकर सभी के सामने उनकी प्रशंसा किया करते थे। आगरकर ने ही रानडे से यह कहा कि उन्हें उस होनहार युवक को बुलाकर उससे बातचीत करके स्वयं उसके विषय में सही राय बना लेनी चाहिए। अण्णासाहेब साठे गोखले को रानडे के पास ले गए। गोखले के व्यवहार, उनकी शालीनता और उनकी लगन ने रानडे को बहुत प्रभावित किया, जैसा कि एक लेखक ने लिखा है उक्त अवसर पर दो समतुल्य आत्माएं मिलीं और पावन संगम हो गया—

अब गोखले प्रायः रानडे के पास जाने लगे। वह उनके पास उसी प्रकार जाते थे जैसे कोई शिष्य राजनीति और लोक सेवा के मूल तत्वों की शिक्षा ग्रहण करने के लिए गुरु के निकट जाता है। 1887 से 1892 तक गोखले उन रानडे से शिक्षा ग्रहण करते रहे जो वास्तव में बहुत ही कठोर कार्यसाधक थे। देश के राजनैतिक स्तर के लिए अभीष्ट प्रयत्नों के सम्बन्ध में रानडे के विचार पहले ही पल्लवित हो चुके थे। उनकी कार्य पद्धति का एक अंश यह भी था कि वह सरकार द्वारा प्रकाशित

प्रत्येक महत्वपूर्ण दस्तावेज पढ़ा करते थे। कोई भी महत्वपूर्ण कागज उनकी निगाह से नही बचा। इसके उपरान्त, वह अपने विशिष्ट तथा सशक्त ढग स सरकारी नीतिया के बारे मे अपनी प्रतिक्रियाए लिपिबद्ध करके, उन्हे सरकार के पास भेज दिया करते थे। उस समय तक राजनीति का असैनिक कमचारियो के लिए वर्जित क्षेत्र घोषित नही किया गया था। परन्तु इसका अर्थ यह नही कि सरकारी अधिकारी रानडे की निर्भीकता-पूर्ण और सूक्ष्म प्रश्नावलियो तथा टिप्पणियो का स्वागत करते अथवा उन्हे पसन्द करते थे। रानडे जानते थे कि वह जो काय कर रहे है उसका कोई आभार मानने वाला नही है परन्तु अपने काय के पक्ष के समथन म वह दो बाते कहा करते थे। एक तो यह कि शासन काय मे भारतीयो को शिक्षित करना आवश्यक है और दूसरी यह कि सरकार क साथ उसी के अमूलो मे युद्ध करना चाहिए। प्राय वह कहा करते थे कि सावजनिक वाद विवाद का युग होने के कारण, उनका परिश्रम व्यथ नही जा सकता उन्होने जिन बातो पर प्रकाश डाला है, उनसे बाहरी दुनिया को इग्लड मे उदार दल वालो को तथा इस देश की जनता को स्थिति की कुछ बेहतर ढग से जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

रानडे के प्रयत्नो से उस समय की सरकार प्रभावित हुई हो अथवा न हुई हो गोखले को अवश्य लाभ हुआ क्योकि वही उनके सम्पूर्ण सावजनिक जीवन के आधार स्तम्भ बन गए। जनसेवा के लिए आस्था और अध्यवसाय के साथ अध्ययन का सगम किस प्रकार किया जा सकता है जटिल समस्याओ का समाधान करते समय तथ्य की यथाथता कितनी अधिक महत्वपूर्ण है, शब्दो की ओजस्विता से विचारो की ओजस्विता का महत्व कितना अधिक है, यह सब और इससे भी कुछ अधिक गोखले ने अपने गुरु से ग्रहण किया।

जान पडता है कि गोखले अपने गुरु के धार्मिक तथा सामाजिक विचारो की ओर बहुत ध्यान देते थे। रानडे ने जो कुछ किया अथवा कहा, उन सबका अनुकरण गोखले ने नही किया। इसका अथ यह नही है कि कुछ अन्य महानुभावो की भाति गोखले रानडे के उत्तम विचारो के विरोधी थे। वास्तविक बात यह थी कि उनकी अधिक दिलचस्पी उस विषय में थी, जिसे उस समय 'राजनैतिक अथव्यवस्था' कह कर पुकारा जाता था। एक दो बार गोखले ने तत्कालीन सामाजिक वाद विवादो मे

अवश्य भाग लिया । एक बार ऐसा हुआ कि पुणे के कुछ विशिष्ट नागरिको का एक ईसाई-संस्था की किसी सभा म आमन्त्रित किया गया, जहा एक अग्रेज धम प्रचारक का भाषण दना था । सभा समाप्त होने पर चाय-पान हुआ । उन दिनो ईसाई धम प्रचारका से चाय लेकर पीना एक ऐसा धर्मोल्लघन समझा जाता था जिसके लिए हिन्दुओ का प्रायश्चित करना पडता था । इस तरह के काय का फल होता था जाति निष्कासन । इस समस्त परिहास प्रपच की योजना गोपालराव जोशी न बनाई थी जो अधिकाश अतिथियो का मित्र था और जिसने ईसाई धम ग्रहण कर लिया था तथा बाद मे उसका परित्याग कर दिया । चाय आने पर रानडे, गोखले और तिलक ने एक-दूसर की ओर देखा वे निश्चय नहीं कर पाए कि क्या किया जाए । अन्य भर ईसाई अतिथि भी ऐसे ही धम सकट में पडे थे । उनमें स कुछ ने चाय के एक दो घूट पी लिए, कुछ ने चुपचाप चाय फक दी कुछ प्याले को होठो तक लाने का बहाना करने लगे । सभा समाप्त हो जाने पर सबको यही चिन्ता हो रही थी कि अब क्या होगा । गोपालराव जोशी ने बैठक के विवरण क साथ-साथ उस मे शामिल होने वाले लोगो के नाम भी अविलम्ब प्रकाशित कर दिए । उस प्रकाशन ने बम विस्फोट का काम किया । सनातन धम वाले उबल पडे । गली गली और घर घर मे यही चर्चा थी । उच्चतम धर्माधिकारी शकराचार्य से 'प्रायश्चित' का तरीका निर्धारित करने की प्राथना की गई । धम प्रचारको के उक्त समारोह मे भाग लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति स कहा गया कि वह भूल का प्रायश्चित करे अथवा जाति निष्कासन के लिए तयार हो जाए । इतना अधिक समय बीत चुकने पर अब यह घटना विचित्र अवश्य जान पडती है और यह जान कर तो इसकी विचित्रता और भी बढ जाती है कि उक्त पाप का प्रायश्चित करने के लिए उस समय यह आदेश दिया गया था कि ब्राह्मण पुरोहित को चार आने दे दिए जाए । परन्तु उन दिनो जाति गत प्रतिबन्ध बहुत जबदस्त थे । किसी-न किसी बहाने स यह आदेश मान लिया गया केवल गोखले और उनके पन्द्रह अन्य साथियो ने इसे स्वीकार नहीं किया ।

आगे चल कर गोखले को अपनी सम्यक्ता के लिए जो ख्याति मिली वह रानडे की अभिभावकता का प्रसाद थी । किसी छोटे स पत्र में वह न तो कोई बात छूटने देना पसन्द करते थे, न कोई भूल शामिल होने देना ।

हर काम म वह अत्यधिक परिश्रम करते थे सम्भवत विश्राम की ता वह आवश्यकता ही नही समझत थे । गुरु कहा अप्रसन्न न हो जाए इस भय स वह रात रात भर जाग कर योगी सुलभ अदम्य उत्साह के साथ अध्ययन किया करत थे । स्वय रानडे भी उन्हे उस समय तक आराम नही करन दत थे जब तक वह निर्धारित काम नही कर लेत थे। सराहना करने में भी रानड अधिक उदार नहीं थे । उनका ठीक है मात्र वह दना गाखले के लिए बडी सराहना थी ।

विरोधियो के साथ व्यवहार करते समय रानडे का वाक्सयम और भी अधिक प्रखर हो जाता था । राजनतिक प्रतिद्वन्द्वियो के वाद विवादो में जिन कटूक्तियो और व्यग्य परिहास का प्राय समावेश होता है उनका प्रयोग वह कभी नही करते थे । उनकी धारणा थी कि मनुष्य को चाहिए कि अपन प्रतिद्वन्द्वी को तथ्यो और आकडो के प्रयोग स पराजित करे । रानडे का तरीका था क्षुद्र बन अथवा बनाए बिना, प्रतिद्वन्द्वी को तक द्वारा सन्तुष्ट करके उसे अपने वश म करना । स्वय युवा होन और वाद विवाद के लोकप्रिय तरीको स प्रभावित होने के कारण गोखले को इस प्रकार की सयतता का महत्व समझन और उसे अपनाने मे समय लग गया परन्तु अन्ततोगत्वा उन्होने भी अपने उसी कार्य व्यवहार के कारण प्रसिद्धि पाई जिसमे वह प्रस्तुत प्रसग के गुण अवगुण की तुलना कर लेते थे प्रतिस्पर्द्धी को उसके दृष्टिकोण के लिए समुचित आदर प्रदान करत थे विचारो में यथातथ्यता और लखन म शालीनता से काम लते थे ।

रानडे के प्रभाव से गोखले अपने जीवन का कार्य क्षेत्र निर्धारित करन म समर्थ हो गए । उन्होन निश्चय किया कि वह अपना जीवन राजनीतिक और समाज सेवा को समर्पित करेंगे, और एक सार्वजनिक कार्यकर्ता के नाते न तो कभी सिद्धान्तो के मामले म किसी प्रकार की छूट के लिए तयार होग और न साधारण प्रशसा मात्र के लिए कभी अपन प्रति झूठे ही होगे । गोखले ने अपने जीवन की आरम्भिक अवधि मे ही, यह धारणा बना ली थी कि सच्चे लोकसेवक के लक्षण हैं—सत्य के प्रति अडिगता, अपनी भूल स्वीकार कर लेने की तत्परता, लक्ष्यनिष्ठा और नैतिक आदर्शों के प्रति आदरभाव ।

रानडे एक धर्मपरायण व्यक्ति थे । वह सवेरे जल्दी उठ कर कुछ घण्टे का समय प्रार्थना मे बिताया करते थे । इस सम्बन्ध म गोखले ने एक

ममस्पर्शी घटना का उल्लेख किया है । वह घटना तब हुई जब गोखले रानडे के साथ काग्रेस के 1897 के अमरावती अधिवेशन से वापस लौट रहे थे । रेल के डिब्बे में उन दोनो के अतिरिक्त कोई न था । गोखले ने लिखा है—सवेरे लगभग चार बजे गाडी में सगीत की सी ध्वनि सुन कर मैं जाग उठा और आख खुलते ही मैंने देखा कि रानडे बैठे हुए ह और तुकाराम क 'अभग' गा रहे है और उसक साथ-साथ लय मिलाते हुए तालिया बजा रहे ह । उनकी स्वर लहरी सगीत प्रधान तो नहा थी, परतु जिस उत्साह के साथ वह गा रहे थे उसने मेरा राम राम रोमाचित कर दिया । भाव विभोर हाकर मैं उठ बठा और सुनने लगा मेरे जीवन का वह अत्यन्त मूल्यवान क्षण था । वह दश्य मरे स्मृति पटल स कभी हट नही सकेगा ।

जहा तक स्वय गोखले का सम्बध है प्रस्तुत जानकारी के आधार पर कहा जा सकता है कि उन्होंने खुले में प्राथना कभी नहीं की। फिर भी वह धम भावना स ओतप्रोत थे । श्रीनिवास शास्त्री ने लिखा है—जान पडता था मानो वह उस परमात्मा के सान्निध्य मे ही जीवन विता रहे थे और इससे अधिक उनकी कोई और आकाक्षा ही नही थी कि वह अपने जीवन को उसी ईश्वर की इच्छा पूर्ति का एक साधन और उसके माग दशन म लोककल्याण का एक उपकरण बना सके । उनके गुप्त कागज-पत्रों में मुझे इसी आशय का एक कागज मिला । उस पर 18 फरवरी, 1898 की तारीख है "श्री गुरु दत्तात्रेय की कृपा स, म विनम्र किन्तु अडिग भाव स निम्नलिखित काय पूण करने का प्रयास करूगा—(1) म नियमित रूप से योग साधन करूगा । (2) (क) प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास, (ख) प्राचीन और अर्वाचीन दशन, (ग) खगोल विज्ञान, (घ) भूविज्ञान, (ड) शरीर क्रिया विज्ञान, (च) मनोविज्ञान और (छ) फ्रेंच भाषा का अच्छा ज्ञान करूगा। (3) म (क) बम्बई विधान परिषद (ख) सुप्रीम विधान परिषद और (ग) ब्रिटिश पालियामेंट का सदस्य बनने का प्रयत्न करूगा । अपनी इन सभी आकाक्षाओं द्वारा प्रत्येक सम्भव उपाय स और यथाशक्ति अपने देश का हित-साधन करने का प्रयास करूगा । (4) म उत्कृष्ट ज्ञान-मूलक धम का प्रचार बनने का प्रयत्न करूगा और म उस धम का प्रचार पूरे विश्व मे करूगा । श्रीनिवास शास्त्री न इस 'प्रतिज्ञावाक्तिपूण प्रलेख' की सज्ञा दी है और वस्तुत यह ऐसा था भी । परन्तु यदि भाग्य

उन्हें कुछ वर्ष और जीवित रहने देता तो भारत का यह आत्मनियोजित सेवक पूरे विश्व का सेवक बन जाता और सचमुच उच्चतम दर्शन मूलक धर्म का प्रचार करके दिखा देता।

उक्त प्रलाप किसी स्वप्नद्रष्टा द्वारा अनजाने में लिख दी गई पंक्तियां का लेखा मात्र नहीं है। वह तो वास्तव में एक उमंग भरी आत्मा का उफान है। हां यह समझ पाना अवश्य कठिन है कि वह भूविज्ञान तथा खगोल विज्ञान जैसे विज्ञानों की जानकारी क्यों प्राप्त करना चाहते थे। फ्रेंच भाषा सीखने की उनकी आकांक्षा का कारण तो समझा जा सकता है। फ्रेंच उन दिनों पाश्चात्य देशों की सामान्य भाषा थी और अंतर्राष्ट्रीय मंच पर उभरने वाले व्यक्ति के लिए उसका ज्ञान आवश्यक था। गोखले अपनी उन आकांक्षाओं की पूर्ति में अधिकांशतः सफल हो गए जिन्हें उन्होंने इतनी लगन से संजोया और इतने परिश्रम से पूरा किया। जान पड़ता है कि वह परमात्मा के दत्तात्रेय रूप जिसमें सृजक, पालक और संहारक तीनों रूपों का समाहार है— के उपासक थे।

उज्ज्वल चरित्र और महानतम सेवा की अदम्य आकांक्षा सत्य प्रियता और भौतिक लाभों के प्रति अरुचि कुछ ऐसे गुण हैं, जो इस पृथ्वी पर सहज सुलभ नहीं होते। गांधीजी गोखले को श्रेष्ठ मानते थे इसलिए नहीं कि वह बड़े आदमी थे बल्कि इसलिए कि वह अध्यात्मशील व्यक्ति थे। रानडे गोखले गांधीजी और तिलक ऐसे व्यक्ति थे जो आध्यात्मिक सांचे में ढले थे।

1901 में रानडे का देहान्त हो गया। अपने जिस गुरु की जीवन पद्धति को गोखले ने अपने लिए आचरण संहिता बना लिया था, उसका देहान्त गोखले के लिए एक भयंकर प्रहार था। वह अपने गुरु की जीवनी लिखना चाहते थे और अपने जीवन के अंतिम दिनों में उन्हें इस बात का बड़ा खेद रहा कि वह अपनी यह इच्छा पूरी न कर पाए।

हम यहां दो अवतरण प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनसे विदित होता है कि रानडे के सम्बन्ध में गोखले और तिलक के विचार क्या थे। गोखले ने लिखा है— रावसाहब (अर्थात रानडे) के देहान्त के समय से मुझे ऐसा जान पड़ रहा है मानो मेरे जीवन पर अचानक अंधेरा छा गया है। *यह सच है कि दुनिया की दृष्टि में तो मुझे नई नई प्रतिष्ठाएं प्राप्त हो रही हैं* परन्तु उनसे न तो मुझे सुख मिल पा रहा है न सच्चा आनन्द।

मेरे मित्र जब मुझे बधाई देकर अपनी शुभकामनाएं व्यक्त करते हैं तो मेरी दशा उस व्यक्ति जैसी हो जाती है जिसे किसी आत्मीय की अन्त्येष्टि करके लौटते ही बजाय किसी शानदार भोज में बिठा दिया जाता है। यह बात अवश्य है कि हमारा शोक कितना भी प्रबल क्यों न हो, हमें उसे अपने निर्धारित कार्य में बाधक नहीं होने देना चाहिए और हम पुराने समर्थकों के न रहने के कारण कमजोरी आ जाने पर भी लगातार और सतत विश्वास तथा आशापूर्वक अपने काम में लगे ही रहना चाहिए।

इस अवतरण में अभिव्यक्त भाव हमें अनायास ही पंडित जवाहरलाल नेहरू के उस भाषण का स्मरण करा देता है जो उन्होंने गांधी की हत्या के तुरन्त बाद किया था। गांधी का ऐसा लगा मानो वह अनाथ हो गए हों परन्तु कर्तव्य की पुकार सर्वोच्च थी और गांधी समय की कसौटी पर खरे उतरे।

तिलक ने 'केसरी' में प्रकाशित अपने शोक-लेख में लिखा था—यदि आज हम महाराष्ट्र में उत्साह और प्रतिरोध की एक नई बलवती भावना पा रहे हैं और यदि आज यहां समाचारपत्रों में और सार्वजनिक प्रश्नों पर निर्भीकता और स्पष्टतापूर्वक सार्वजनिक प्रश्नों पर विचार विमर्श किया जाने लगा है, तो यह उसी अनवरत उद्यम का फल है जो रानडे ने 25 वर्ष से भी अधिक समय तक किया है।

उन्होंने आगे लिखा—परन्तु इन सभी बातों में रानडे का मिशन यानी महान सरलता के कारण थे उनका धर्म उनका कानून और अपने भव्य आदर्शों की उपलब्धि के लिए उनकी सत्यनिष्ठा।

6 सार्वजनिक कार्यकलाप

गोखले ने अपना राजनैतिक जीवन सार्वजनिक सभा के मन्त्री के रूप में आरम्भ किया। 'दक्कन एजुकेशन सोसाइटी' के कुछ सदस्य उन्हें मन्त्री बनाने का जबरदस्त विरोध कर रहे थे क्योंकि वे समझते थे कि इस प्रकार कालेज में उनके काम में बाधा पड़ेगी। यह एक निर्वाचित पद था और उसका वेतन चालीस रुपए प्रतिमास था। गोखले ने यह वेतन नहीं लिया और इस तरह कठिनाई दूर हो गई।

गोखले ने रानडे की देखरेख में काम करना आरम्भ किया। तिलक ने सिद्धान्ततः इस बाहरी 'कार्यकलाप' का विरोध किया था, परन्तु उनकी बात कट गई थी। इसका फल यह हुआ कि इन दोनों नेताओं के बीच मतभेद और भी बढ़ गया। सोसाइटी में टकराव की स्थिति पैदा करने की जिम्मेदारी न तो रानडे पर डाली जा सकती है, न गोखले पर, उलझन तो पहले से ही मौजूद थी। यद्यपि रानडे एक बार 1884 में सोसाइटी की कौंसिल में रह चुके थे, परन्तु वह उसमें सक्रिय रूप से सम्बद्ध न थे। कालेज के उद्घाटन के समय वह उपस्थित थे और उन्होंने 50 रुपए चंदे के तौर पर भी दिए थे। संकटपूर्ण स्थिति सामने आने पर उनसे सलाह भी ले ली जाती थी।

सार्वजनिक सभा एक महत्वपूर्ण काम पूरा कर रही थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पहले देश में लोगों की शिकायतों को प्रकाश में लानेवाली कोई अखिल भारतीय संस्था नहीं थी। हां, भारत के तीन बड़े नगरों—कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में यह काम करने वाली संस्थाएं मौजूद थीं। बम्बई में दादाभाई नौरोजी ने 1853 में 'बम्बई ऐसोसिएशन' की स्थापना की थी। उसके चौदह वर्ष बाद, पूणे में भी ऐसी ही एक संस्था का आरम्भ किया गया। पहले पहल उसका नाम 'पूना ऐसोसिएशन' रखा गया, पर तीन वर्ष बाद ही यह नाम बदल कर 'सार्वजनिक सभा' कर दिया गया। इस सभा का उद्देश्य था जनता की आवश्यकताओं तथा भावनाओं की ओर, सरकार का ध्यान आकृष्ट करना। सरकार द्वारा प्रति-

वधित हान पर भी यह सभा शासक और शासिता के बीच की कडी बनी रही । इसके सस्थापक, जी० वी० जोशी सावजनिक मामला के ऐस अथक कायकता थे कि लोग उन्हे 'सावजनिक काका' कह कर पुकारने लगे। वसे ता सभा के अधिकतर पदाधिकारी, देशी रियासता के सरदार और सरकारी कमचारी थे, परन्तु वास्तव मे इसका काम सावजनिक काका' और न्यायमूर्ति रानडे जसे व्यक्ति ही चलात थे । यह बडे आश्चय की बात है कि यद्यपि सभा का प्रत्येक कायकलाप रानडे की बुद्धि क बल पर ही होता था परन्तु उनका नाम सदस्या की सूची मे कही दिखाई नही दता । सभा का काम शान्त भाव से किया जाता था, तडक भडक से काम कभी नहीं किया गया। सभा ज्ञापना के सहारे अपनी लडाई लडती थी । आन्दालन और सीधी कारवाई के दिन अभी दूर थे । उस समय प्रचण्डतापूण कोइ काम करना सम्भव नही था।

जिन परिस्थितिया मे गोखले सभा के मन्त्री बने, उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है । वह सभा की त्रैमासिक पत्रिका का सम्पादन भी करत थे। उनके सम्पादन मे पत्रिका के छब्बीस अक निकले । इन छब्बीस अको मे छपने वाले 49 लेखा मे स गोखले ने केवल आठ नौ ही लिखे थे । सम्पादक क नाते गाखले के रास्त मे अनक कठिनाइया थी । वह पत्रिका अग्रेजी मे प्रकाशित होती थी और अग्रेजी पत्रिका खरीद कर पढ सकन वाले अथवा जिस तरह की सामग्री उसमे प्रस्तुत की जाती थी उसमे दिलचस्पी ल सकन वाले लोगा की सख्या स्वभावतया कम होन के कारण इसमे आश्चय की कोई बात नही है कि उसके ग्राहका की सख्या 500 स घटकर 200 ही रह गई ।

कमण्यता तिलक के जीवन का प्राण तत्व थी । उनका और उनके साथिया का विचार था कि उनक प्रान्त मे वस्तुत पूरे दश म कुछ प्रवृत्तिया ऐसी पनप रही थी जिन्हे अविलम्ब राकना आवश्यक था। अग्रजी शासन की जड़े जम जान पर विशेषत बम्बई और दक्खन का राजनीति म नताओ का एक नया वग सामने आ रहा था । कुलीन, धनवान नवशिक्षित व्यक्ति और असनिक कमचारी जनता क आदर पात्र बनन लगे थे और उन लागा का समान हिता वाला एक समुदाय सा बन गया था। जहा तक सरकार का सम्बध था वह एक निश्चित नीति क कारण इस वग का बढावा द रही थी । उसक बदल म व नव शिक्षित व्यक्ति प्रत्यक्ष

अग्रेजी वस्तु अग्रेजी सस्कृति और यहा तक कि भारत मे अग्रेजी शासन से होने वाले लाभा का गुणगान किया करत थे । तिलक का दढ विश्वास था कि भारत की वास्तविक मुक्ति और भारतवासिया का अभ्युत्थान ऐसे वर्ग की सहायता स कभी नही हा सक्ता जा राष्ट का जकडो वाले बधना से चिपका हुआ हो । पराई सस्कृति पर गव करन वाला पर उहे कोई भरासा न था । उन्होंने अनुभव किया कि समय आ चुका है जब दश की सास्कृतिक आधारभूमि म स देश क ऐसे नेताओ का उदय हो जो निष्काम भाव से सच्ची त्याग भावना स अनुप्राणित होकर लागा की सेवा कर । तिलक अकारण ही भगवदगीता के महान भाष्यकार नही वन गए थे वह कम के फल प्राप्ति स नि सग कम के आराधक थे । उन लोगा से वह कभी सहमत न हो सक, जा कहा करते थे कि शासका की दयालुता और सदाशयता मात्र से ही लागो क लिए लाभो की वर्षा होने लगेगी । इस वग का जिस वह नया वफादार वग मानत थे मुकाबला करने का कोई अवसर वह हाथ से जाने नही दत थे ।

सावजनिक सभा की सदस्यता सवके लिए खुली नही थी । तिलक ने सभा क सविधान क अधीन कुछ और लागा का सदस्य वना लिया और 14 जुलाई 1895 को होने वाली वार्षिक साधारण सभा म पुराने पदाधिकारी अलग कर दिए गए । सभापति कोपाध्यक्ष और ऐसे अनेक लोगा के स्थान पर नए व्यक्ति चुन लिए गए जा सभा की बहुत समय से सेवा कर रहे थे । तिलक ने न तो गाखले से अलग हाने क लिए कहा न वह ऐसा चाहत थे । परन्तु प्रतिकूल परिस्थितिया म गाखले और उनके अल्पसख्यक साथी सभा मे कैसे वन रह सकते थे ? कुछ ही महीने बाद गोखले न मत्री पद से त्यागपत्र दे दिया । रानडे और उनके साथी यह पराजय चुपचाप स्वीकार कर लेने या अपन निर्धारित माग से परे हटन के लिए तयार न थे । 31 अक्तूबर 1896 का उहोने दक्खन सभा नामक नई सस्था बना ली । गाखल उसक मत्री वन ।

तिलक इस तरह के स्थिति परिवतन की कल्पना नही कर पाए थे । दक्खन सभा के इन उद्घोषित लक्ष्या–उद्देश्या ने उह उलझन म डाल दिया कि 'उदारतावाद और सयताचार इस सभा क मूल मत्र हाग । इन उद्देश्या में नई बात तो नही कही गई थी परन्तु यह शब्दावली नई

और स्पष्ट थी । 'उदारतावाद' की भावना का अर्थ है—जाति तथा सम्प्रदायगत पक्षपात से मुक्त होकर ऐसे सभी उपायों के प्रति अधिकाधिक निष्ठा रखना जिनसे मनुष्यों के बीच न्याय किया जा सकता हो और ऐसा करते समय एक ओर शासकों के उतने वफादार बने रहना जितना प्रशासक होने के नाते उनका विधिसम्मत अधिकार है और दूसरी ओर लोगों को भी वह समानता दिला देना जो उनका विधिविहित अधिकार है । 'संयताचार' का अर्थ है किसी भी समय, अव्यवहार्य आदर्शों की निरर्थक अभिलाषा न करके, प्रति दिन अपने सामने मौजूद काम को ईमानदारी के साथ तथा तफसील सम्बन्धी समझौते के लिए तैयार रह कर करना ।

केसरी के 10 नवम्बर 1896 के अंक में प्रकाशित एक लेख में तिलक ने इन उद्देश्यों की कठोर आलोचना की । जैसा कि आगे चल कर, तिलक के जीवनी लेखक एन० सी० केलकर ने स्वीकार किया, रानडे पर किया गया तिलक का यह प्रहार निर्ममतापूर्ण था । आखिर तिलक ने इतना तामस क्यों दिखाया ? क्योंकि वह समझते थे कि उदारतावाद और संयताचार को अपने वर्ग की बपौती बना कर रानडे सरकार का एक ऐसा साधन सुलभ कर रहे थे जिससे वह दूसरे वर्ग के साथ कठोरता और निर्दयता का बर्ताव कर सकती थी । हो सकता है कि स्वयं रानडे का मन्तव्य यह न रहा हो परन्तु सरकार तो इस प्रत्यक्ष पार्थक्य से लाभ उठा ही सकती थी ।

दक्खन सभा के उद्घाटन के बाद एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो गई—रानडे, तिलक और गोखले न एक साथ मिल कर काम कर सकते थे न सोच ही सकते थे । राजनैतिक कार्यकलापों में रानडे आगे कभी नहीं रहे परन्तु उनके शिष्य गोखले को तो आगे चल कर संयताचारी अथवा नरम दल का नेतृत्व करना था । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का वास्तविक विखण्डन तो 1907 के सूरत अधिवेशन से पहले नहीं हुआ लेकिन उसके बीज दक्खन एजुकेशन सोसाइटी विषयक वाद विवाद और सार्वजनिक सभा में सत्ता प्राप्ति के लिए किए गए संघर्ष ने बो दिए थे । दो पृथक् वर्ग अस्तित्व में आ चुके थे—उनके मतभेद राष्ट्रव्यापी स्तर पर व्यक्त होने के लिए उपयुक्त अवसर की मात्र बाट जोह रहे थे ।

तिलक को अतिवादी कहने की प्रथा सी बन गई है परन्तु इस शब्द का पूरा आशय तभी समझा जा सकता है जब यह याद रखा जाए कि इसे रानडे के 'उदारतावाद' के विपरीत अथबोधक शब्द के रूप मे ग्रहण किया गया था । रानडे और उनके साथियो का दृढ विश्वास था कि सामाजिक सुधार के बिना कोई प्रगति सम्भव नही है—अर्थात उदारतावाद समाज सुधार में बद्धमूल है, उसका इस सिद्धात के साथ भी सम्बन्ध था जिसम भारत मे अग्रेजी राज्य का दिव्य अनिवायता मान लिया गया था । तिलक इनमे से कोइ भी बात नही मानते थे । यह सवविदित है कि उनकी विचारधारा मे आदालनात्मक पद्धति का समावेश था ।

जहा तक स्वय तिलक का सम्बन्ध हैं वह दक्खन सभा क उद्देश्या के समग्रत विराधी नही थे । जाति अथवा सम्प्रदायगत पक्षपाता म मुक्ति पान और कानून की दष्टि म समानता के वह और किसी भी व्यक्ति स कम प्रबल समथक नहा थे ? वफादारी क बारे मे उनक विचार कुछ भिन्न भले ही रहे हा परतु उहाने न तो कभी कानन क प्रति असहयाग किया और न कभी राजद्रोह का समथक होने का दावा ही किया जैसा कि आगे चल कर गाधीजी न सरकार स यह कह कर किया कि उन्हे इस प्रकार की भावना का प्रश्रय दने क लिए अधिक स अधिक दण्ड दिया जाना चाहिए । यदि सयताचार का अथ सीमित उद्देश्या की प्राप्ति की इच्छा करना है ता तिलक सयताचारी नहा थे । वह स्वराज्य क आकाक्षी थे जा उनक विश्वविख्यात शब्दा म उनका जन्मसिद्ध अधिकार था ।

सच ता यह है कि हमार इतिहास का काई भी नेता न ता पूरी तरह सयताचारी अथवा नरम रहा है न अतिवादी' अथवा गरम । अतिवादी भी कुछ बाता में और कुछ अवसरा पर सयताचारी रहे ह । और सयताचारी भी कुछ अवसरा पर अतिवादी तथा कुछ अन्य अवसरा पर सयताचारी रहे ह ।

यहा यह बताना शेष रह जाता है कि तिलक का आधिपत्य हा जान पर सावजनिक सभा का और रानडे द्वारा स्थापित का गई दक्खन सभा का क्या हाल रहा । सरकार न सावजनिक सभा का मान्यता देना बन्द कर दिया और तिलक तथा उनके साथियो द्वारा व्यवस्थित होने पर भी वह कमजार पड गई । स्मरणपत्र प्राथना और प्रतिनिधि-

मण्डल ग्रान्ति भेजन का सावजनिक सभा का पुराना काम दक्खन सभा न सभाल लिया । गोखले का तन मन स काम करन का ग्रवसर मिल गया। यहा तक कि वेल्वी ग्रायाग क सामन भारत का पक्ष प्रस्तुत करन के लिए गाखले का ही सभा की ग्रार स इग्नड भेजा गया सावजनिक सभा इस गौरव स वचित रही, यद्यपि गोखले न ग्रायोग क सामन गवाही दत समय, सभा क साथ ग्रपन सम्बन्धा का सकेत ग्रवश्य किया ।

7 पहली महत्वपूर्ण सफलता

गोखले न वेल्वी का ग्रमर बना दिया
न हात ता वेल्वी ग्रौर उनका
में ब द पड रहत । गोखले का ग्रायाग
करन ग्रार ग्रपन ग्रापका एक ग्रथशार
करन का ग्रवसर दकर ग्रायाग न भा
स्थान बना लिया है ।

वेल्वी ग्रायाग की नियुक्ति सर्पा
ग्राधिकार क ग्र तगत किए गए सैनिक
क सम्ब ध मे जाच पडताल करन ग्रार
लिए की गइ निनम इन दाना की दिन
तथा ब्रिटेन की सरकारा क बीच प्रभा
पडता था मानो इस मामल मे भारतीय
ग्रायाग की नियुक्ति ब्रिटिश पालिया
ग्रौचित्य स्थापन क लिए की थी
से सरकारी या क ग्यारह व्यक्तियो का
विलियम वेडरबन ग्रौर डब्ल्यू० एस०

ग्रायाग के सामन साक्ष्य दन क
गया । वे थ सुरेन्द्रनाथ बनर्जी डी०
गापाल कृष्ण गाखले । स्पष्ट है कि स्व
भारतीय उसक सामन ग्राए, परन्तु द
हान क कारण ऐसी स्थिति सम्भव न
ग्रायु क थ उस समय वह कोई 31 वर्ष
ग्रथवा महान सख्याविद एव ग्रथशास्त्र
नियुक्त किया जाता तो इसे ग्रनचित
ग्रार स्क्खन सभा का प्रतिनिधित्व क
ने ग्राश्चयजनक रूप से ग्रच्छा काम ि

है । यदि गाखले वेल्वी ग्रायोग स सम्बद्ध
ायोग, दाना ही पुरालेखा की काल कोठरी
क सामने दिए जाने वाले साक्ष्य का नतृत्व
ो राजनीतिज्ञ तथा दशभक्त साबित
त क इतिहास मे ग्रपन लिए एक निश्चित

ेपद भारत-म त्री ग्रथवा भारत सरकार क
तथा ग्रसनिक व्यया के प्रशासन ग्रौर प्रब ध
ऐस कामा क लिए प्रभारा का बटन करने के
चस्पी हा ।' सक्षेप में उक्त ग्रायोग को भारत
रा क बटन का काम सापा गया था । जान
जनता का काई ग्रस्तित्व ही न था । उक्त
मेंट न ग्रपने मागदशन ग्रौर ग्रपने ही
। ग्रायाग के कुल चौदह सदस्या मे
ग्रायोग मे बहुमत था । दादाभाई नौरोजी,
न ग्रल्पसख्यक वग में थे ।

लिए कुछ भारतीयो को इग्लण्ड बुलाया
ई० वाचा जी० सुब्रह्मण्य ग्रय्यर ग्रौर
य ग्रायाग का तो यह पस द न था कि कोई
दाभाई नौरोजी जसे सदस्य के ग्रायाग मे
थी । भारतीय दल मे गाखले सबसे छाटी
क हो थे । गाखले के स्थान पर यदि रानडे
श्री राव बहादुर जी० बी० जाशी का प्रति-
नही माना जा सकता था । वे नही जा सक
न क लिए गाखले का चुना गया । गोखले
कया । इसका फल यह हुग्रा कि वह एक ही

छला में राजनतिक एव आर्थिक क्षत्रों में अखिल भारतीय स्तर के व्यक्ति बन गए।

गोखले का अंशदान निर्धारित करन क लिए पहले उस समय क संवधानिक ढाचे पर दृष्टि डाल लेना उपयोगी होगा। उस समय भी एक विधान तो विद्यमान था, परन्तु उसका उद्देश्य शासकों को इस बात की खुली छूट दना ही था कि वे शासितों का शोषण कर सकें और देश के साधनों का क्षय कर दें।

आयोग के सामने साक्ष्य दत हुए गोखले ने कहा—इस समय सत्ता का नियन्त्रण इनके हाथ में है भारत सरकार, जिसका प्रांतीय सरकारों पर नियन्त्रण है सपरिषद भारत मन्त्री जिसका भारत सरकार पर नियन्त्रण है (परिषद कभी कभी भारत मन्त्री पर नियन्त्रण करने का प्रयत्न करती है परन्तु अब वह पहले की अपेक्षा भारत मन्त्री पर कहा अधिक निर्भर हो गई है) और पालियामेंट जो केवल मात्र दो सभा पर नियन्त्रण करती है। अब प्रश्न यह है कि ब्रिटिश पार्लियामेंट पर किसका नियन्त्रण है? उत्तर है—ब्रिटिश जनता का, उन मत-दाताओं का, जिन्हें अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत पर उस देश के करदाताओं का नहीं इग्लैण्ड के करदाताओं का नियन्त्रण है। उनसे किस भलाई की आशा की जा सकती है? क्या वे ब्रिटिश देश से यथाशक्ति अधिकतम लाभ प्राप्त करने की कोशिश नही करेंगे? महारानी की उदघोषणा तथा विभिन्न अधिनियम तो कवल अधिनियम पुस्तकों में ही बन्द होकर रह गए हैं। भारत पर वस्तुत एक ही सत्ता का अधिकार है और वह है भारत मन्त्री। बजटों को केवल बहस के लिए पेश किया जाता है पास कराने के लिए नही। किन्हीं मदों में संशोधन या फेर-बदल करने अथवा उनके बदले कोई और मद रखने से सम्बन्धित प्रस्ताव नहीं रखने दिए जाते क्योंकि बजट की मदें तो पहले ही वित्तीय विवरणों में अंतिम रूप प्राप्त कर चुकी होती है।

इस वस्तुस्थिति के मनमाने और तानाशाही स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए गोखले ने कहा—1858 के भारत शासन अधिनियम की धारा 55 से यह सुनिश्चित करने की अपेक्षा की जाती है कि भारतीय राजस्वों का प्रयोग भारततर कार्यों के लिए न किया जाए। परन्तु अब यह सर्वविदित है कि यह धारा इस उद्देश्य की सिद्धि में सर्वथा असमर्थ रही है।

उन्होंने बताया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय भारतीय राजस्वों की रक्षा निश्चित रूप से इससे बेहतर तरीके से होती थी। इस मामले में कम्पनी के शासन

के स्थान पर ब्रिटिश सरकार का प्रत्यक्ष शासन हानिकारक ही रहा है । कम्पनी भारतीय तथा ब्रिटिश हितो के बीच मध्यस्थ के रूप में काम करती रही थी । वह किसी हद तक भारतीय हितो की रक्षा भी करती रही थी परन्तु प्रत्यक्ष शासन से तो भारतीय हितो की उतनी रक्षा का भी अन्त हो गया है ।

वेल्बी आयोग की नियुक्ति के समय भारत मे इन बातो के कारण गहरा असन्तोष था कि भारत के राजस्व का प्रयोग भारत की सीमाओ से बाहर के प्रदेश जीतने के लिए किया जाता था, यूरोप में नियुक्त कर्मचारियो को वह विनिमय क्षतिपूर्ति भत्ता दिया जाता था, जिसका कोई औचित्य नही था सभी असैनिक पदो पर अग्रेज नियुक्त थे, यूरोपीय व्यापारियो को ऐसी रियायत दी गइ थी, जो शोषण का कारण बन गई थी, लोक निर्माण कार्यो के इजीनियरो ने वेतन बढाने के लिए आन्दोलन आरम्भ कर दिया था और जिन नई रेलवे लाइनो का निर्माण आरम्भ किया गया था उनका उद्देश्य विदेशियो का भारत के उन ससाधनो का शोषण करने मे सहायता पहुचाना था जिनका पहले उपयोग नही किया गया था ।

ये मुख्य शिकायते थी, परन्तु इनके अतिरिक्त कुछ और बाते भी थी। कही न जाने वाली मुख्य शिकायत यह थी कि हम पराधीन थे । शासको ने दृढ बन्धन मे देश को जकड रखा था और यह प्रयास किया जा रहा था कि सम्भव हो तो वह बन्धन कुछ ढीला कर दिया जाए । उस समय के सवैधानिक आन्दोलन का चरम लक्ष्य इतना ही था ।

गोखले ने इन सभी बातो पर प्रकाश डालने के लिए अथक परिश्रम किया । वह बजट पर मतदान कराए जाने को भारतीय हितो की रक्षा का एक उपाय समझते थे । दूसरी ओर हमारे शासक, इसे अपने शासन के लिए कुठाराघात समझते थे । ब्रिटिश सरकार ने क्षेत्र विस्तार के लिए अफगानिस्तान और बर्मा में लडाइया लडी थी । पूर्व मे भी उन्होने अपना अधिकृत क्षेत्र बढा लिया था । इन सब लडाइयो तथा क्षेत्र विस्तार पर होने वाला लगभग 115 करोड रुपए का कुल खर्च भारतीय राजकोष मे से किया गया था, ब्रिटिश खजाने मे से नही । वास्तव मे इसका बोझ भारत पर नही पडना चाहिए था । गोखले ने बताया कि शान्ति काल मे भी सामरिक स्तर पर एक विशाल यूरोपीय सेना बनाए रखी जा रही है और उन यूरोपियनो को ऊंचे-ऊंचे वेतन चुकाने का भार, भारत सहन कर रहा है । आखिर इसे किस तरह उचित ठहराया जा सकता है ? ब्रिटिश सैनिको व उनके अमले की और अधिक नियुक्ति की जाने के कारण,

कि तृतीय और चतुर्थ पदक्रम के कार्यकारी इंजीनियरों और प्रथम तथा द्वितीय पदक्रमों के सहायक इंजीनियरों के वेतन बढ़ाए जाएं।

आयोग के समक्ष प्रस्तुत की गई अन्य बातों में से एक थी यूरोपियन व्यापारियों और व्यवसायियों के प्रति किया जाने वाला पक्षपात। भारतीय उत्पादकों को जिन असुविधाओं का सामना करना पड़ता था, उनके अलावा विदेशों से आने वाले माल को शुल्क मुक्त कर दिए जाने के कारण राजस्व की भी बहुत हानि होती थी। परन्तु यह तो पूरी कहानी का एक परिच्छेद मात्र था। रेलों ने अंग्रेज़ व्यापारियों को भारत के विभिन्न प्रदेशों के शोषण के लिए और अधिक अवसर सुलभ कर दिया था। रेल की पटरियां आरम्भ में तो देश के सभी भागों में सेनाओं का आना-जाना सुगम बनाने के लिए बिछाई गई थी, परन्तु आगे चल कर इस काम का उद्देश्य केवल विदेशी व्यापारियों को लाभ पहुंचाना अधिक जान पड़ता था। रेल विषयक नीति के एक भाग के रूप में गैर सरकारी रेलों को प्रोत्साहन दिया गया कभी कभी तो उन्हें वित्तीय सहायता भी दी गई। उन कम्पनियों के कुछ हिस्सेदार ऐसे असैनिक कर्मचारी थे जो इस देश में नौकरी करते थे। फिर इसमें अचम्भे की क्या बात थी कि उन कम्पनियों की स्थापना करने वाले रियायतें और सुविधाएं पा लेते थे?

भारतीय सिविल सेवा संवर्ग और उसमें की जाने वाली भरती आदि के विरुद्ध बहुत समय से चली आने वाली शिकायत पर यहां जोर देना अनावश्यक जान पड़ता है। केवल यह संवर्ग ही नहीं इसके अन्तर्गत आने वाला प्रत्येक महत्वपूर्ण पद भी अंग्रेजों को दिया जाता था। गोखले ने उन लोगों की संख्या का ब्यौरा दिया जो उस समय इस प्रकार के पदों पर बम्बई प्रान्त में काम कर रहे थे। भारतीय सिविल सेवा के 157 पदों में से केवल 5 पर भारतीय नियुक्त थे। भू अभिलेख विभाग में 6 पद थे और उन सभी पर यूरोपियन काम कर रहे थे। वन विभाग के कुल 29 अधिकारियों में सब यूरोपियन थे। नमक विभाग के 12 पदों में से केवल एक पद भारतीय को प्राप्त था। जेल विभाग तक में पूरे ग्यारह पदों पर यूरोपियन नियुक्त थे। चिकित्सा सफाई राजनैतिक, लोक निर्माण विभागों तथा पुलिस में सभी पद यूरोपियनों को दिए गए थे। केवल शिक्षा विभाग में भारतीयों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक 45 में से 10 थी।

प्रश्न था कि आयोग के विचाराधीन विषय के साथ इन सब बातों का क्या सम्बन्ध है? सदस्यों द्वारा यह कहे जाने पर कि असंगत बातें आयोग के सामने नहीं लाई जानी चाहिए, गोखले ने आग्रह किया कि वह समस्या वस्तुतः अविभाज्य

है। उनके लिए समग्र ज्ञान पढ़ा गया और ज्ञान भारत की आवश्यकताओं तथा समस्याओं की दृष्टि से सर्वथा सगत है। गोखले ने विरोध का किन्ना किए बिना अपना दृष्टिकोण आदर के साथ व्यक्त किया। फासेट ने कुछ समस्या में उनके साथ तकरार भी की। परन्तु उन्होंने सहानुभूतिपूर्वक उनकी बात सुनी। फिर भी परिणाम उनकी धारणा के अनुकूल न रहा।

गोखले की स्थिति की परख हुई और उनसे प्रत्येक सवाल का पूरक सवाल जवाब किए गए। उस अवसर पर उन्होंने प्रश्न का तर्क और और उत्तर ... राजनीतिक सिद्ध किया। उनसे यह स्वीकार करा लिए जाने के प्रयास किए गए कि उनकी धारणाएं गलत हैं। उदाहरण के लिए गोखले ने प्रश्न निश्चित साक्ष्य में यह कहा था कि भारत में रेल निर्माण का विस्तार व्यापार के लिए किया जा रहा है। प्रश्न व्यवस्था के सम्बन्ध में लिए गए मौखिक साक्ष्य में उन्होंने इस प्रसंग पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला। उन्होंने यह तो स्वीकार किया कि रेलों के कारण सरकार व्यवस्था में सुधार हुआ है और अकालग्रस्त इलाकों में भोजन तथा चारा पहुंचाने में रेलें बहुत ही उपयोगी रही हैं फिर भी रेलों का विस्तार वास्तव में उन मानवोचित कारणों से न किया जाकर व्यावसायिक कारणों से प्रेरित होकर हुआ अर्थात देश के आन्तरिक यातायात की अपेक्षा दूसरे देशों में बड़े पैमाने पर अनाज और कच्चा माल भेजने के लिए ही किया गया है। भारत से बाहर भेजा जाने वाली मूल्यवान सामग्री के बदले में यहां विदेशों से बना वह सस्ता और अनावश्यक सामान आता था, जिसके वितरण में रेलें जैसी सरकारी एजेंसियां सहयोग देती थीं। गोखले ने आग्रहपूर्वक यह विचार व्यक्त किया कि आयात किया गया वह माल स्वदेशी उद्योगों का नाश कर रहा था और दस्तकारों तथा छोटे शिल्पकारों को फिर खेती करने के लिए विवश कर रहा था।

गोखले के स्थान पर यदि उस समय गांधी जी होते तो वह भी इस स्थिति पर इसी प्रकार प्रकाश डालते। रेलों द्वारा स्वदेशी उद्योगों का अप्रत्यक्ष रूप से विनाश होता देखकर गांधीजी निश्चित रूप से उनका विस्तार बन्द कर देने का आग्रह करते। नील, चाय, काफी तथा अन्य वस्तुओं के सभी बागानों पर ब्रिटिश कम्पनियों का एकाधिकार था। वहां पैदा होने वाली वस्तुएं बाहर भेजने के लिए वे रेलों का विस्तार चाहते थे। विदेशी व्यापारियों को यथासम्भव अधिक से अधिक छूट देने के विचार से निर्बन्ध व्यापार की नीति भारत पर थोप दी गई। निर्यातक भी अंग्रेज थे और आयातक भी। उनसे सीमा शुल्क नहीं लिया जाता था

और इस तरह भारत को इस स्रोत स हो सकने वाली आय से वंचित किया गया था। गोखले ने कहा—निबंध व्यापार की जो नीति हम पर लाद दी गई है, उसने हमारे सभी उद्योगों का नाश कर दिया है। किसी उपनिवेश ने यह नीति स्वीकार नहीं की है। इसका परिणाम यह हुआ है कि फिर खेती के लिए विवश होने के कारण हमारे देशवासी निर्धन से निर्धनतर होते जा रहे हैं। भाप और मशीनों की प्रतियोगिता में हमारे पुराने उद्योग टिक नहीं पा रहे हैं। इन सब बातों के कारण हमारी प्रगति रुक गई है।

उन दिनों रेलों में घाटा हो रहा था और यह स्वाभाविक भी था। विदेशी व्यापारियों को दी जाने वाली अनेक रियायतों और सुविधाओं के रहते रेलों द्वारा मुनाफा कैसे हो सकता था? इसका अर्थ यह नहीं है कि रेलों से लाभ नहीं हो रहा था। उनसे लाभ तो होता था पर वह भारत को नहीं मिलता था। भारतीय नेता यदि क्रुद्ध होकर रेलों का और विस्तार रोक देने की बात कहते थे तो इसका कारण यह नहीं था कि वे उन्नति नहीं चाहते थे, उसका वास्तविक कारण था भारतीय हितों को हानि पहुंचाने वाला यह भेद भाव। वेल्बी आयोग के अध्यक्ष ने गोखले से सीधा प्रश्न किया था—क्या आप वास्तव में आयोग को यह विश्वास दिला सकते हैं कि भारत मंत्री और भारत सरकार ने रेलों का यह काम मुख्यतः अंग्रेजी वाणिज्य और वाणिज्यिक वर्ग के हित साधन के लिए ही उठाया है, क्या यह आपका प्रत्यक्ष आरोप है?

गोखले का उत्तर था—भारत में लोगों का यही विचार है, क्योंकि तथ्य इसकी पुष्टि कर रहे हैं। अपने वक्तव्य के समर्थन में गोखले ने कहा—जब जब भारत के वाइसराय भारत जाते हैं तभी कोई न कोई प्रतिनिधि मण्डल उनसे मिलता है और वे लोग ये रेलें बनाने के लिए उन पर दबाव डालते हैं और वह न्यूनाधिक रूप से यही वचन दे देते हैं कि वह अधिकतम प्रयास करेंगे। ये वचन अंततोगत्वा पूरे भी किए जाते हैं। वित्त आयोग का हवाला देते हुए गोखले ने कहा कि आयोग ने अकाल की रोक थाम के लिए 20,000 मील लम्बी रेलवे लाइनें पर्याप्त समझी थीं। उन्होंने इस बात का भी उल्लेख किया कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी इससे अधिक रेलों की न तो मांग की है, न इसके लिए दबाव ही डाला है। भारतीय रेलों के सम्बन्ध में गोखले द्वारा कही गई बात प्रभावपूर्ण थी।

गोखले ने आयोग के आरमसुख म बाधा पहुचाने वाली जो अन्य उल्लेखनीय बात कही, उसका सम्बन्ध अकाल बीमा निधि से था। उस निधि की स्थापना

लिटन के शासन काल म एक अतिरिक्त कर लगाकर की गई थी । अनुमान यह लगाया गया था कि इस अतिरिक्त कर स प्रतिवप 1 5 करोड रुपया इकट्ठा हो जाएगा और वह रकम अकालग्रस्त लोगा का राहत पहुचाने और अकाल विषयक बीमा के लिए खच की जाएगी । कर स अनुमानित रुपया इकट्ठा ता हो गया, लेकिन वह उस काम पर खच न किया गया, जिसके लिए वह कर लगाया गया था । गाखले न इस तथ्य पर प्रकाश डाला कि उस निधि (अथवा उसके एक अश) का प्रयाग बगाल नागपुर रेलव और इण्डियन मिडलड रेलवे क लिए प्रयुक्त पजी का व्याज चुकान के लिए किया जा रहा है। यह स्पष्ट रूप से उस रकम का दुरुपयोग और विश्वासघात का एक उदाहरण था ।

आयाग क काय विवरण स पता चलता है कि इस आराप पर न ता कभी आपत्ति की गई, न वादविवाद । गोखल न जा कुछ कहा था उसकी आकडा द्वारा भली भाति पुष्टि हो गई थो । एक मात्र बात, जिस पर गरमागरमी रही, यह थी कि क्या उच्च अधिकारी द्वारा दिए गए वचन को अधिनियम की शब्दावली स ऊचा माना जाए ? जेम्स पील कानून पर अधिक निभर रहना चाहत थे, भाषणा पर नहो । गाखले का उत्तर था कि वह जान स्ट्रेची क भाषणा का आधार मानत ह कानून का नही । इस सम्बध में उन दोना म इस तरह सवाल जवाब हुए—

गाखले—मैंने ऐसा कभी नहीं साचा कि मत्री महादय न अपने ही उद्देश्य के बारे में स्वय जा कुछ कहा उस पर कोई व्यक्ति किसी प्रकार का तक वितक करेगा ।

जेम्स पील—क्या तब भी नही जब उसन कानून बना दिया और अपन विचार का अधिनियम का रूप द दिया ? क्या अधिनियम क रूप में कही गई उसकी बात आनुषगिक टोका टिप्पणी के रूप मे कही जान वाली बात स अधिक महत्वपूण नही है ?

गोखले—यहा तो उहान साफतौर से यही कहा है कि कानून इसी सहमति के आधार पर बना, भारत सरकार की सहमति उस अधिनियम में व्यक्त नही है ।

जेम्स पील और आयोग के अध्यक्ष, दाना मे से कोई यह ता नही कह सका कि मन्त्री ने उस आशय का वचन नही दिया था परन्तु उहोने अधिनियम का शब्दावली की आड लेकर सरकार को दाप मुक्त करन का प्रयास अवश्य किया । हमें यह पता नही है कि उन दिना आजकल की तरह उद्देश्य और लक्ष्य अधिनियम के साथ जोडे जाते थे या नही परन्तु उस समय क विधानाग, आज जितने विकसित नहीं

थे। विधेयक के उस भाग के अभाव मे केवल विधेयक के प्रस्तावक के भाषणो को ही उस विधेयक का एक भाग माना जाता या अथवा माना जा सकता था। गोखले ने जेम्स पील का बता दिया कि उन्होंने उस अधिनियम का अध्ययन नही किया है। गोखले यदि वह अधिनियम या उसका विधेयक देख लेते तो उनके तक और भी जोरदार हो सकते थे। कानून के शब्द जेम्स पील के हक, में थे परन्तु उसका मूल आशय गोखले के दृष्टिकोण का समर्थक था। यह सचमुच बहुत ही निकृष्ट बात थी कि अकाल से राहत पहुचाने के उद्देश्य से अतिरिक्त करा द्वारा इकटठी की गई रकम को सरकार घाटा दिखाने वाली रेलवे कम्पनियो का ब्याज चुकाने के लिए खच कर दे। इग्लैण्ड में कभी ऐसा हो सकना अकल्पनीय था।

भारतीय बजटो में सुधार करने के लिए गोखले ने आयोग को कई सुझाव दिए। वह चाहते थे कि बजट की प्रत्येक मद सर्वोच्च विधान परिषद मे पास की जाए। उनका यह सुझाव कही क्रातिकारी न समझ लिया जाए, इसलिए उन्होंने अपने सहज सयत ढग से यह राय दी कि सरकारी बहुसख्यक दल बना रहे ताकि बजट अवश्य पास हो जाए, परन्तु मतदान केवल गैर-सरकारी सदस्यो से ही कराया जाए। यदि गैर सरकारी सदस्य बहुमत से किसी मद विशेष का पसन्द न करे ता वे एक विवरण तयार करके उसे इसी कारण, काम के लिए बनाई जाने वाली नियत्रण समिति के सामने रख दे। इस प्रकार परिषद के भीतर एक और परिषद की स्थापना हो जानी थी गोखले का कथन था— इस योजना मे उचित सीमा तक ही नियन्त्रण की व्यवस्था है और इसके अनुसार भारतीय करदाताओ के, जिन्हे खच पर नियन्त्रण करने का कोई अधिकार प्राप्त नही है, प्रतिनिधियो को उत्तरदायित्वपूर्ण और सवैधानिक ढग से अपनी शिकायत कह सुनाने की सुविधा मिल जाती है।

परन्तु इस तरह की माग करने का तब तक समय नही आया था। दूसरे, इस तरह के सुझाव के लिए आयोग उपयुक्त स्थल भी न था। जसा कि पहले कहा जा चुका है आयोग की स्थापना सनिक कारवाइयो के लिए ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार के बीच प्रभारो का बटन करने के लिए हुई थी। वास्तव में गोखले का सुझाव यह था कि भारत से बाहर की जाने वाली सैनिक कारवाइयो पर होने वाले व्यय का कोई भार भारत पर नही पडना चाहिए। वह 1858 के अधिनियम की धारा 55 में सशोधन कराना चाहते थे। उस धारा के अनुसार ब्रिटिश पार्लियामेंट का यह अधिकार प्राप्त था कि वह भारत से बाहर की जाने वाली सैनिक कारवाइयो का खच भारतीय राजस्व में से कर ले। इस सम्बन्ध में

एक मात्र मत यह था कि इसके लिए पार्लियामेंट के दोनों सदनों की सहमति लेनी होती थी—परन्तु यह कोई कठिन काम न था। गोखले ने सुझाव दिया कि जब तक भारत पर वास्तव में हमला न हो या इस तरह के हमले का वास्तविक भय पैदा न हो जाए तब तक भारत की प्राकृतिक सीमाओं के बाहर की जाने वाली सैनिक कार्रवाइयों के लिए भारत के राजस्व का प्रयोग कम से कम उस समय तक नहीं होना चाहिए जब तक उस खर्च के एक भाग का भार अंग्रेज़ी बजट अनुमानों पर भी न डाल दिया जाए।

उक्त धारा में संशोधन के लिए दिया गया गोखले का सुझाव उचित था, परन्तु इस सम्बन्ध में अंग्रेज़ों का कहना यह था कि उनके द्वारा किए जाने वाले क्षेत्र विस्तार का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा-सुदृढ़ता न होकर स्वयं भारत की सुरक्षा-सुदृढ़ता है, अतः भारत को अपने हित के लिए यह खर्च उठाना ही चाहिए। यह एक साम्राज्यवादी तर्क था। दूसरी ओर गोखले का कथन था कि केवल सुरक्षात्मक कार्यों के लिए भारत को इस तरह का खर्च सहन करने के लिए बाध्य किया जा सकता है। परन्तु 'आक्रमण और सुरक्षा' तो बहुत ही सूक्ष्म अभिव्यक्तियाँ हैं।

गोखले ने यह मौलिक सुझाव और दिया कि मद्रास, बम्बई, बंगाल, उत्तर-पश्चिमी प्रान्त, पंजाब और बर्मा की विधान परिषदों को यह अधिकार दे दिया जाए कि वे अपने निर्वाचित सदस्यों में से चुनकर एक-एक प्रतिनिधि ब्रिटिश पार्लियामेंट में भेज दें। अपने इस सुझाव पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा—670 सदस्यों वाले इस सदन में ये 6 सदस्य कोई उपद्रव तो मचा नहीं देंगे, परन्तु इस तरह सदन के लिए उन विशिष्ट प्रश्नों के सम्बन्ध में भारतीय जनता के विचार जान लेना सम्भव हो जाएगा, जो पार्लियामेंट के विचाराधीन होंगे। उन्होंने आगे कहा—भारत में फ्रांसीसी और पुर्तगाली बस्तियों को पहले से ही यह विशेषाधिकार प्राप्त है।

गोखले की आकांक्षा थी कि विजेता और विजित, गोरे और काले एक साथ हो जाएँ परन्तु उनका यह सपना कभी पूरा नहीं होना था। यह एक विवादास्पद प्रश्न है कि यदि ब्रिटिश पार्लियामेंट में भारत को प्रतिनिधित्व मिल जाता तो क्या भारत को कुछ पहले स्वशासन प्राप्त हो जाता। फिर भी यह तो प्रायः निर्विवाद सत्य है कि इस प्रकार ब्रिटिश पार्लियामेंट के उस मंच के सहारे इंग्लैण्ड में लोकमत अवश्य बनाया जा सकता था।

ब्रिटिश पार्लियामेंट में भारत के प्रतिनिधित्व की बात अव्यवहार्य न मान

ली जाए तब भी गोखले की इस तर्कसम्मत बात को तो अव्यवहार्य नहीं ठहराया जा सकता कि वित्तीय मामलों में विशेष योग्यता रखने वाले व्यक्तियों को ही भारत का वाइसराय नियुक्त किया जाना चाहिए। इस तथ्य का उल्लेख करके कि अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों के ख्यातिप्राप्त ब्रिटिश प्रधान मन्त्री वालपोल, पिट पील डिजरायली और ग्लैडस्टान—वित्त मन्त्री भी थे। गोखले ने प्रच्छन्न रूप से यह आशय प्रकट किया कि वाइसराय के जिस पद के लिए वास्तविक वित्त विषयक कुशाग्रता की आवश्यकता है, उस पद पर नियुक्ति करते समय सैनिक ख्याति और उच्चकुल में जन्म को अपने आप में कोई विशेष महत्व नहीं दिया जाना चाहिए। हो सकता है कि इस तर्क से अनेक वाइसराय अप्रसन्न हो गए हों, परन्तु गोखले अपने देश की वकालत करने के लिए वहां गए थे उन लोगों की खुशामद करने के लिए नहीं।

गोखले को अपना साक्ष्य पूरा करने में दो दिन—12 और 13 अप्रैल (1897) लग गए। वेल्बी आयोग द्वारा किए गए परिश्रम का परिणाम अधिक महत्वपूर्ण न रहा। जैसा कि 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का इतिहास' नामक ग्रन्थ में कहा गया है, वेल्बी आयोग अपनी रिपोर्ट पेश कर चुका है और भारत को जो मामूली-सी राहत दी गई उससे कहीं अधिक बोझ अंग्रेज सैनिकों के वेतन में होने वाली 7,86 000 पौण्ड की वृद्धि के रूप में इस देश पर डाल दिया गया है। वेल्बी आयोग की सिफारिशें ऊपरी तौर पर तो मान ली गई थीं परन्तु अनियमित भय से जो कुछ हो रहा था उसे किसी न किसी तरह और किसी न किसी रूप में नियमबद्ध कर लिया गया था।

गोखले को यह सन्तोष अवश्य था कि वह अपनी लक्ष्य प्राप्ति में सफल रहे हैं। उन्होंने जो काम किया था उसका स्वयं उनकी ओर से किया गया मूल्यांकन 16 अप्रैल 1897 को इंग्लैण्ड से जी० वी० जोशी के नाम लिखे उनके एक पत्र में विद्यमान है। उसमें उन्होंने लिखा था—मेरा साक्ष्य सोम और मंगलवार को लिया गया और सभी कुछ बहुत अच्छा रहा, मेरी आशा से कहीं अधिक अच्छा। मंगलवार को सब कुछ हो चुकने पर विलियम वेडरबर्न मेरे पास आए और बोले—तुमने कमाल का काम किया है। तुमने जो साक्ष्य दिया वह हमारे अपने पक्ष में बहुत अच्छा रहेगा। तुमने अपने देश की जो असाधारण सेवा की है, उसके लिये मैं तुम्हें बधाई देता हूं। हमारा अल्पसंख्यक प्रतिवेदन वस्तुतः तुम्हारे साक्ष्य पर ही आधारित होगा। डब्ल्यू० वेडरबर्न ने मुझे यह भी बताया कि वेल्बी तथा आयोग के अन्य सदस्यों पर मेरा बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है।

हमार भले वुजुग दादाभाई भी प्रसन्न ह। केन महादय न—जा पहल दिन कुछ घटा क लिये ही उपस्थित रहे थे, मरे पास यह लिख भेजा है मने कोई सात घटे तक तुम्हारे साक्ष्य का गम्भीर अध्ययन किया है। मैं यह कहने की अनुमति चाहता हू कि जहा तक मुझे विदित है किसी शिक्षित भारतीय सुधारक न समस्त विवच्य विपया का इतना चातुय तथा अधिकारपूण विवचन पहल कभी नही किया। मै आपके सभी विचारो से सहमत नही हू, परन्तु इसका आयोग पर अवश्य ही वहुत अधिक प्रभाव होगा। आपन और वाचा ने अपने देश की बहुत ही उत्कृष्ट और अभूतपूव सेवा की है, जिसक लिए आपक देश-वासी सदैव आपके कृतन रहेगे। कोटने मेरे साक्ष्य से वहुत अधिक प्रभावित हुए। पूरे समय मरे प्रति उनका व्यवहार अत्यधिक सहानुभूतिपूण वना रहा और पील अथवा स्कौवल के विरुद्ध प्रश्न करन मे वह वरावर मर सहायक रहे। समग्रत यह कहा जा सकता है कि सारा काम अधिकतम सतोषप्रद ढग से पूरा हुआ। म यह स्पष्ट कर देना चाहता हू कि मने यह सब वाते आपको वता देना इसलिए अपना कतव्य समझा क्याकि यह ख्याति तथा प्रशसा वास्तव मे आपकी और रावसाहब (न्याय मूर्ति रानडे) की ही है, स्वय मेरी नहा। अत यदि यह गौरव मुझे दिया गया है ता मैने इस कवल आपके प्रतिनिधि के रूप मे ही ग्रहण किया है और अव म इसे अपनी परम्परागत गुरुदक्षिणा के रूप में आपके तथा राव साहव के चरणा पर समर्पित कर रहा हू। मने तो जल वहन करन वाली नाली अथवा ऐडीसन के ग्रामाफोन की भाति काम किया है और यह वात मने विलियम वेडरवन और दादाभाई का वता भी दी है। म प्राथना करता हू कि आपने इतनी अधिक आत्मीयता और प्रसन्नतापूवक जो जोरदार सहायता मुझे दी है और जिसके वल पर म एक वडी राष्ट्रीय सवा करन मे समथ हा सका हू उसके लिए मेरी ओर स पुन व्यक्त हार्दिक कृतनता भाव आप कृपया स्वीकार करे।

उसी दिन डी० ई० वाचा ने भी जी० वी० जाशी के नाम एक पत्र लिखा था जिसमे गोखल के कारनामे का उल्लेख करत हुए उन्होने लिखा था—जिरह के समय पूछे जान वाले सवाला का उन्हाने बहादुरी क साथ उत्तर दिया इतनी बहादुरी के साथ कि समाचार पत्रा ने उसका एक अश—जिसका सम्बन्ध रला और निधनता के साथ था—प्रश्न तथा उत्तरा क रूप म ही प्रकाशित कर देना अधिक उपयुक्त समझा और उस एक उत्तजनात्मक शीषक द दिया—'शाही आयाग का चौकाने वाले बयान'।

8 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस मे

पुणे मे 1893 मे बहुत हलचल रही। सडके और बाजार स्वागत द्वारा और वन्दनवारा आदि स सजाये गए थे। पुणे ने अपने महान नेता दादाभाई नौरोजी के भव्य स्वागत के लिये शृगार किया था। गोखले के उत्साह की कोई सीमा न थी। केवल सत्ताईस वष के हान पर भी उन्हे काग्रेस के एक नेता के रूप मे प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी थी। वह उन मान्य नेता के 'सहचारी' बनने के आकाक्षी थे, जिन्हे लाहौर काग्रेस का अध्यक्ष चुना गया था, परन्तु युवक गोखले को घोडागाडी मे दादाभाई के साथ बठने का सुयाग न मिल सका और उन्हे उस गाडी के कोचवान के साथ बैठकर ही सन्तुष्ट होना पडा। अपने उस स्थान पर रह कर भी वह नारे लगात रहे, अपना रुमाल हिलात रहे और अपने नेता क बहुत निकट भीड लगाने से लोगो को रोकते रहे। अपन उस जाश म युवा गोखले को इस बात का बिल्कुल ध्यान न रहा कि कालेज के अध्यापक हाने के नात उन्हे धीर-गम्भीर बने रहना चाहिए।

गोखले और तिलक 1889 मे काग्रेस में शामिल हुए थे। देश की किसी भी प्रकार सेवा करने की आकाक्षा रखने वाला गोखले का कोई भी समवयस्क उस राष्ट्रीय सस्था से अलग नही रह सकता था। ए० ओ० ह्यम ऐसे पचास सज्जन एकत्र करना चाहते थे, जा सही अर्थो मे नि स्वाथ हो, नैतिक उत्साह और आत्मसयम सम्पन्न हो और जो भारत मे एक लोकतन्त्री शासन की स्थापना के लिए अपना जीवन समर्पित कर देने की सक्रिय सेवा भावना से ओत-प्रोत हो। इन लोगो मे गोखले को स्थान दिया जा सकता था। राष्ट्रीय लक्ष्य-सिद्धि के इस काम की ओर वसे तो आगे चल कर सैकडो हजारो युवक आकृष्ट हुए, परन्तु उनमे गोखले जैसे होनहार युवको की सख्या अधिक नही रही।

काग्रेस के जन्म के समय वहा न गोखले विद्यमान थे, न तिलक। रानाडे काग्रेस के सस्थापको मे स थे और उन्ही की महत्प्रेरणा के वशीभूत होकर गोखले ने अपना भाग्य इस सस्था के साथ आबद्ध कर दिया था। वस ता पुणे को ही काग्रेस के सवप्रथम अधिवशन क आतिथ्य का गौरव प्राप्त होना था,

परन्तु वहा महामारी फैल जाने के कारण अधिवेशन का स्थान बदल कर बम्बई कर दिया गया। 1889 में कांग्रेस अधिवेशन फिर बम्बई में हुआ। विलियम वेडरबन अध्यक्ष थे। विचित्र सयोग की बात है कि 1889 में हुए इस अधिवेशन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों की सख्या ठीक 1,889 थी। ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के एक सदस्य चार्ल्स ब्रडला काग्रेस के उस अधिवेशन में उपस्थित थे, जिसमे इस आशय के एक प्रस्ताव पर विचार किया गया कि किस तरह पार्लियामेण्ट मे एक विधेयक रख कर भारत के लिए विधान परिषदें बनाई जा सकती हैं। वह प्रस्ताव विवादजनक रहा। तिलक ने इस आशय का एक सशोधन पश किया कि सर्वोच्च विधान सभा के सदस्यों का चुनाव प्रातीय विधान परिषदों के सदस्यों द्वारा किया जाना चाहिए। गोखले ने उक्त सशोधन का अनुमोदन किया। आगे चलकर इन दोनो नेताओं के पारस्परिक सम्बन्ध जिस तरह के हो गए, उन्हें ध्यान में रखते हुए इसे एक असाधारण अवसर माना जा सकता है। सशोधन अस्वीकार कर दिया गया। परन्तु वह ऐसा एकमात्र सार्वजनिक अवसर था जब तिलक और गोखले एकमत रहे थे। वह सशोधन रानाडे की देन था। अत गोखले द्वारा उसका समर्थन किया जाने में आश्चर्य की कोई बात न थी।

गोखले ने अपने जीवन के अंत तक लगभग सभी काग्रेस अधिवेशनों में भाग लिया—केवल 1903 के अधिवेशन में वह एक प्रवर समिति के काम में लगे होने के कारण और 1913 तथा 1914 में बीमार होने के कारण काग्रेस अधिवेशनों में भाग न ले सके। काग्रेस द्वारा किए जाने वाले विचार-विमर्श में वह सक्रिय भाग लेते थे और आवश्यकता पडने पर काग्रेस के सामने रखे जाने वाले प्रस्तावों पर बोलते भी थे। उनकी अभिव्यजना शक्ति, विचाराधीन विषय की उनकी गहरी जानकारी और अपने तर्कों के विकास प्रसार के लिए उनके द्वारा अपनाई जाने वाली शैली का काग्रेस के कर्णधारों पर उत्तम प्रभाव पडा और वे उनके भावी महत्व का अनुभव करने लगे।

आरम्भिक अवस्थाओं में काग्रेस द्वारा पास किए गए प्रस्ताव नरम अथवा आपत्तिरहित थे। वे तो प्राय विनम्रतापूर्ण मांगों के रूप में ही थे, परतु अनिच्छुक अधिकारियों का उनके लिए भी तैयार कर लेना बहुत बड़ा काम था, फिर भी वे प्रयास उपयोगी रहे, उन्होंने भारत में विद्यमान परिस्थितियों के सम्बन्ध में विदेशों और स्वय इस देश के लोगों की आखें खोल दीं।

प्रथम काग्रेस अधिवेशन (1885) मे पास किए गए प्रस्तावो मे निम्न-लिखित मागे प्रस्तुत की गई थी —

(1) भारतीय प्रशासन के काम की जाच पडताल करने के लिए एक राजकीय आयाग की नियुक्ति
(2) भारत परिषद् (इण्डिया कासिल) की समाप्ति
(3) विधान परिषद के सदस्या का निर्वाचन
(4) परिषदा मे प्रश्न उठाने का अधिकार
(5) उत्तर-पश्चिमी प्रान्त और अवध तथा पजाब मे विधान परिषदा की स्थापना
(6) परिषदा मे बहुमत द्वारा किए जाने वाले औपचारिक विरोधा पर विचार करने के लिए हाउस आफ कामन्स की एक स्थायी समिति
(7) भारतीय सिविल सेवा की परीक्षाओ का एक साथ आयाजन और उनमे प्रवश के लिये आयु सीमा मे वद्धि और
(8) सैनिक व्यय में कमी करना।

इन प्रस्तावा द्वारा उन मामला पर प्रकाश डाला गया, जिन पर परिषदा के प्रतिनिधि राय प्रकट कर सकते थे। काग्रेस के कुछ नेता विधान मण्डला के सदस्य भी थे और एक प्रकार स उन्हे यह आदेश द दिया गया कि वे इन प्रस्तावो को स्वीकार करान मे अधिकतम सम्भव प्रयास करेंगे। यह कोई आसान काम न था, साधारण माग पूरी हो जाने में वर्षों का समय लग गया।

काग्रेस मे गोखले बराबर ऊपर उठते जा रहे थे। सस्था के वरिष्ठ सदस्य उनस प्रभावित थे। बहुत जल्दी उन्हे काग्रेस का एक मन्त्री बना दिया गया, क्याकि पुणे मे काग्रेस का एक अधिवशन होने वाला था। एक अन्य मन्त्री थे तिलक। इस अधिवेशन की चर्चा करने से पहले पुणे की उस समय की वस्तु-स्थिति जान लेना आवश्यक है।

भारत के किसी और नगर की अपेक्षा पुणे में उन दिना की स्मतिया अधिक सजीव थी, जब भारत में भारतीया का शासन था। अग्रेजी सरकार का प्रभुत्व तो वहा भी छा गया था पर वहा के शूर नागरिक उस शासन का विधि का विधान नही मानते थे। नई पीढी के कुछ लोग ता सम्भव हान पर हिंसात्मक उपाया द्वारा पराधीनता का वह भार उतार फेंकने मे भी किसी प्रकार की बुराई नही समझत थे। इन क्रान्तिकारियो के अनेक निष्क्रिय

समथक थे। तिलक आतकवाद के पक्षपापक नही थे। हा, राष्ट्रीयता की ज्वाला को वह जलाए रखना चाहते थे और दास मनोवत्ति उन्हें कभी स्वीकार नही थी। उनका लक्ष्य था विदेशी शासन मुक्त होना। यह समझना ठीक नही है कि सयताचारी अथवा नरम दल जिसके नेता रानडे थे, राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की पुन स्थापना के लिये तिलक को अपेक्षा कम चिन्तित था। परन्तु फिरोजशाह महता और वाचा से यह आशा नही की जा सकती थी कि व मराठा के विगत इतिहास के आधार पर उद्वेलित हो जाए अथवा शिवाजी की गौरव-गाथा सुन कर उत्प्रेरित हो जाए, या उत्साह और उल्लासपूवक गणपति उत्सव मनाने लगें। तिलक ने 1893 94 मे शिवाजी उत्सव और गणपति उत्सव फिर आरम्भ करके जन मानस पर अधिकार कर लिया था।

दानो वग इस वात से प्रसन्न थे कि काग्रेस का अधिवेशन पुणे में होने वाला है और दानो उस सफल बनाना चाहते थे। फिर भी, भीतरी मतभेद बहुत समय तक छिपे न रह सके। आइए पहले हम इन नेताओ क सम्बध मे ही विचार करें। रानडे का आदर तो होता था, परन्तु उन्हे लोगो का प्रेम प्राप्त न था। उनके विरोधियो के कथनानुसार उनके दोष ये थे कि वह आवश्यकता से अधिक नतिकतावादी थे सामाजिक सुधारो के आवश्यकता से अधिक उपासक थे और उन्ह शासको की सज्जनता और महानता में आवश्यकता से अधिक विश्वास था। जब यह आग्रह किया गया कि कांग्रेस अधिवेशन के साथ-साथ समाज सुधार सम्मेलन भी किया जाए तो बडी उलझन पदा हो गई। लोग वैसा नही होने देना चाहते थे। इस मामले ने पुणे में एक भयकर वादविवाद का रूप ग्रहण कर लिया। लोग कहने लगे कि जब तक समाज सुधार सम्मेलन का स्थान बदल नही दिया जाएगा तब तक वे अधिक सख्या म काग्रेस की स्वागत समिति के सदस्य नही बनेंगे। काग्रेस अधिवेशन का दिन निकट आता जा रहा था। तिलक ने काग्रेस अधिवेशन के एक मन्त्री के नाते अपने साथियो को समझाया कि समाज सुधार सम्मेलन उसी पडाल म करने दिए जाने से कोई हानि नही होगी, परन्तु मतभेद बढता ही गया। उस अवसर पर फिरोजशाह मेहता, जिनका काग्रेस मे अत्यधिक प्रभाव था, सामने आए। इस आधी को शान्त करने के लिये उन्होने मन्त्री पद के लिये तीन और नामो—वाचा, सातलवाड और डी० ए० खरे का सुझाव दिया। फिर भी तिलक के साथियो ने उनका मन्त्री बन रहना कठिन कर दिया और उन्हे त्यागपत्र देना पडा।

तिलक के त्यागपत्र से भी समस्या हल नही हुई। पुणे में सार्वजनिक सभाए हुईं, जिनमे यह धमकी दी गई कि यदि काग्रेस पडाल में समाज सुधार सम्मेलन करने दिया गया तो उसमे आग लगा दी जाएगी। काग्रेस के मनोनीत अध्यक्ष सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के पास इस आशय के हजारो तार आए कि उन्हे समाज सुधार सम्मेलन का स्थान बदलवा देना चाहिए। रानडे ने सोचा कि वे मतभेद बने रहे तो उनका देश के सभी भागो मे से आने वाले प्रतिनिधियो पर बुरा प्रभाव पडेगा और सरकार को भी बल मिलेगा। अत उन्होने अपनी इच्छा के विरुद्ध समाज सुधार सम्मेलन अन्यत्र करने का फैसला कर लिया। उससे पहले काग्रेस के किसी भी और अधिवेशन मे काग्रेस पडाल मे समाज सुधार सम्मेलन करने का कोई विरोध नही किया गया था, परन्तु रानडे ऐसी भद्दी स्थिति पैदा नही होने देना चाहते थे।

इस कठिन स्थिति मे गोखले ने मन्त्री के नाते अपने कर्तव्यो को शान्ति और निष्ठापूर्वक पूरा किया, यद्यपि वाचा उन पर उत्तेजनावादी होने का आरोप लगाते रहे। अधिवेशन की अवधि मे गोखले ने एक दैनिक बुलेटिन का सम्पादन भी किया और उससे पहले उन्होंने अधिवेशन के लिए सफलतापूर्वक धन सग्रह भी किया, यद्यपि इसके लिए उन्हे कुछ श्रेय नही मिला।

ऊपर वर्णित घटना के अतिरिक्त पुणे अधिवेशन फीका ही रहा। इसमे तिलक को भी प्रमुखता नही मिली। तिलक ने पुणे में एक विशाल सभा का आयोजन अवश्य किया, जिसमे काग्रेस के अध्यक्ष तथा अन्य नेताओ को निमन्त्रित करके उनका अभिनन्दन किया गया और जहा शिवाजी उत्सव भी मनाया गया।

ऊपर वर्णित घटना ऐसी न थी जिसे आसानी से भुला दिया जाता। काग्रेस के जन्म के बाद दस वर्ष मे ही ऐसे लक्षण प्रकट हो गए कि सस्था का विखण्डन कोई दूर नही रह गया। काग्रेस के पुणे अधिवेशन मे दोनो विचार सम्प्रदायो के पथ भेद का मानो ऐलान ही कर दिया गया।

9 एक नैतिक धर्मसंकट

अपनी पहली इग्लैंड-यात्रा के समय गोखले लगभग पाच महीने तक—मार्च से जुलाई 1897 के अन्त तक—भारत से बाहर रहे। इससे पहले इग्लण्ड के सम्बन्ध मे उन्होने पुस्तकों और समाचारपत्रो द्वारा ही जानकारी प्राप्त की थी, अब उन्हे व्यक्तिगत रूप से वह देश देखने का अवसर मिला। दीनशा एदलजी वाचा ने, जो वेल्बी आयोग के सम्बन्ध मे इग्लैड मे गोखले के साथ रहे थे, इग्लैंड मे गोखले के अनुभवो का बडा सजीव चित्र प्रस्तुत किया है।

अग्रेजी सामाजिक जीवन गोखले के लिए बिलकुल नई बात थी। फिर भी उन्होने बहुत सावधानी के साथ उस शिष्टाचार का परिचय पा लिया, जिसका पालन भद्र समाज मे किया जाता था। आरम्भ मे वह अवश्य कुछ डगमगाए परन्तु शीघ्र ही उन्होने सब सीख लिया।

फिर भी यह आश्चर्य की ही बात थी कि गोखले इग्लैड मे इतना समय कैसे बिता सके। भारत से जाते समय वह कैले (Calais) मे प्रतीक्षालय मे गिर पडे थे। इससे उनके हृदय पर चोट आई थी, परन्तु वह इतने अधिक सकोचशील थे कि उन्होने इसकी सूचना वाचा को भी न दी। वह चुपचाप पीडा सहन करते रहे। पर वह कब तक उस पीडा को छिपा सकते थे? तीसरे दिन उन्हे वाचा को उसकी सूचना देनी पडी। गोखले वस तो दादाभाई नौरोजी के साथ ही रहे थे, पर वह उनसे दूर-दूर ही रहा करते थे। एक ऋषि के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हो पाने की वह कल्पना भी नही कर पाते थे। वाचा ने दादाभाई को उक्त दुर्घटना की गम्भीरता से अवगत कराते हुए किसी डाक्टर की सहायता मागी। डाक्टर आ गया। गोखले की परीक्षा करने के बाद उसने दादाभाई और वाचा को उसकी गम्भीरता की सूचना देकर कहा कि गोखले मौत के मुह मे जाने से बाल बाल बचे है। इलाज किया गया और लगभग तीन दिन बाद वह सकट दूर हो गया।

गोखले से कहा गया कि वह पन्द्रह दिन तक अपने बिस्तर से न

हिल पर वहा उनकी देखभाल और परिचर्या कौन करता? वाचा का कथन है—हमार और उनके लिए यह सौभाग्य की बात हे कि हमारे अपन मकान म एक ऐसी बहुत ही सुसस्कृत महिला मौजूद थी, जो अपन को महान शेरिडन के वश का बताती थी। उन्ही श्रीमती कासग्रेव ने स्वेच्छया गोखले की परिचारिका बनना स्वीकार कर लिया। गाखले की बीमारी भर उन्हान उनकी सवा-परिचर्या की। कोई बहिन भी इसस अधिक सवा नही कर सकती थी तथा उस गम्भीर बीमारी म उह इतना प्रसन्न और उत्फुल्ल नही बनाए रख सकती थी।

इस बीमारी से गाखले को कुछ लाभ भी हुए। सुसस्कृत तथा बहुत अच्छे स्वभाव वाली उस प्रौढ महिला का सम्पक गोखले की सकोचशीलता दूर करन म बहुत सहायक रहा। फिर भी, वह मास और मदिरा से सदैव ही बचे रहे।

अपनी पहली इग्लड यात्रा म गोखले न कुछ प्रसिद्ध ब्रिटिश राज ममना का परिचय पा लिया। गोखले उनमे से विशेपत जान मार्ले से बहुत प्रभावित हुए। लदन म वह जहा भी गए, भले ही वह पार्लियामेंट भवन हो अथवा कोई और स्थान, वह अपनी महाराष्ट्रीय पगडी अवश्य पहन कर गए। उनकी पगडी सुनहरे नारगी रग की थी और उससे उनकी ओर लागा का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हाता था। वाचा का कथन है कि महिलाए उन्हे पगडी पहने देखने के लिए विशेष उत्कठित रहती थी और इससे गाखले का बहुत मनोरजन होता था। वह कही भी जाते, उस पगडी के कारण उन्हे सभी जगह आसानी से पहचान लिया जाता था। गोखल ने आगे चलकर जो इग्लड यात्राए की उनमे उहोने पगडी का अपन साथ नही रखा। उन अवसरा पर उनकी पोशाक बदल गई—पगडी का स्थान हैट ने ले लिया।

वेल्बी आयोग के सम्बध मे इतना अधिक उल्लेखनीय काय करने के बाद गाखले को आशा थी कि जब वह भारत लौटेंगे तो इस देश म उस काम की बहुत सराहना हागी, पर भाग्य म कुछ और ही बदा था। प्रशस्तिया और मालाओ के स्थान पर, भारत लौटने पर गाखले को केवल सरकार की ही नही, स्वय भारतीया की भी निंदा और भत्सना का भाजन बनना पडा। गोखले के जीवन का यह सर्वाधिक सतापपूण समय था।

जिन दिनों गोखले इंग्लैंड में थे, उस समय भारत एक अग्नि परीक्षा में से गुजर रहा था। अक्तूबर 1896 के प्रारम्भ में बम्बई नगर में महामारी फैल गई। उसी वर्ष वहां अकाल भी पड़ा। इन दो आपदाओं के कारण बम्बई नगर निर्जन हो गया। लोगों के वहां से प्रयाण करते जाने से एक उलझन यह पैदा हो गई कि वे लोग उस संक्रामक रोग को भी अपने साथ लेते गए। महामारी से ग्रस्त होने वाला दूसरा नगर था पूणे। उस स्थिति में सरकार चुप रह कर उस घातक रोग को फैलने नहीं दे सकती थी। अतः उसने महामारी को फैलने से रोकने के लिए बहुत कड़े कदम उठाए।

इंग्लैंड 'ब्लैक डैथ' महामारी से होने वाले विनाश और जन संहार को भूला नहीं था। अतः इंग्लैंड से भारत सरकार पर इस बात के लिए बराबर जोर डाला जाता रहा कि वह इस बात का ध्यान रखे कि वह घातक रोग कहीं उस देश के समुद्रतट तक न पहुंच जाए।

4 फरवरी, 1897 को बम्बई विधान परिषद में एक विधेयक पास किया गया, जिसमें सरकारी कर्मचारियों को यह अधिकार दे दिया गया कि वे उक्त महामारी का प्रसार रोकने के लिए जो भी कदम उठाना आवश्यक समझें उठा लें। यह अधिकार उन अधिकारों से विशेष भिन्न न थे जो मार्शल ला की स्थिति में दिए जाते हैं। कर्मचारियों को इतने अधिकार दे दिए जाने का भारतीयों ने प्रबल, परन्तु निष्फल विरोध किया। उक्त अधिनियम को कार्य रूप देने के लिए अविलम्ब कायदे-कानून बना दिए गए और लोगों का रोष अपनी चरम सीमा तक पहुंच गया। लोग इन उपायों का शिकार होने के बदले प्लेग के कारण मर जाना अधिक पसन्द करते थे।

बम्बई नगर में सत्तासम्पन्न व्यक्तियों ने अपने अधिकारों का प्रयोग विवेक और तर्कसंगत रीति से किया, परन्तु पूणे में स्थिति इससे भिन्न रही। वहां महामारी रोकने के लिए कठोर कदम उठाने के लिए रैण्ड नामक एक व्यक्ति को विशेष अधिकारी नियुक्त किया गया था। प्रत्येक घर का निरीक्षण करके वहां रोगाणुनाशक दवाई छिड़कने, रोग संक्रमित समझे जाने वाले लोगों को अलग करने और विशेष रूप से खोले गए अस्पतालों में उन्हें जबरदस्ती ले जाने के कामों में उसने सैनिक कर्मचारियों से सहायता ली। इस प्रकार वहां संग्राम का-सा दृश्य उपस्थित हो गया।

सब ओर आतंक का साम्राज्य था। सभी सैनिक यूरोपीय थे। उनके साथ कोई भारतीय नहीं था। भारतीय भावनाओं की उन्हें कोई परवाह नहीं थी, भारत के सामाजिक तथा धार्मिक नियमों-बंधनों के प्रति उन्हें कोई आस्था नहीं थी। तिलक बराबर विरोध प्रकट करते हुए कह रहे थे कि वे उपाय उस रोग से कहीं अधिक बुरे हैं। एक गैर-सरकारी अस्पताल खोलकर उन्होंने यह प्रदर्शित कर दिया कि वही काम अच्छे ढंग से किस तरह किया जा सकता है, परन्तु सरकार आलोचकों की बात सुनने के लिए तैयार नहीं थी।

लोग भयाक्रान्त और अनियन्त्रित हो गए थे। सैनिक लोगों की भावनाओं का आदर करना नहीं जानते थे। हिन्दू का घर एक पवित्र स्थान होता है और कोई गृहपति यह पसन्द नहीं करता कि किसी और धर्म का कोई अनुयायी उसके घर में रसोई अथवा पूजाकक्ष में पैर रखे। सैनिक तो लोगों को आतंकित करके उनकी रसोइयों तथा पूजा-कक्षों में भी प्रविष्ट हो रहे थे। फलतः लोगों का आक्रोश तो बढ़ता जा रहा था पर उसका कोई समाधान समय में नहीं आ रहा था।

22 जून, 1897 को महारानी विक्टोरिया के शासन के हीरक जयन्ती समारोह के सम्बन्ध में आयोजित डिनर में भाग लेने के उपरान्त जब रैण्ड और उसके सहयोगी लेफ्टिनेंट आयर्स्ट गवर्नमेंट हाउस से वापस लौट रहे थे तो उनको गोली मार दी गई। आयर्स्ट का तत्काल देहान्त हो गया परन्तु रैण्ड को एक अस्पताल में पहुंचा दिया गया, जहां ग्यारह दिन के उपरान्त उसकी मृत्यु हो गई।

पुणे में सन्नाटा छा गया। हजारों की संख्या में लोग मर चुके थे, बहुत से लोग जीवन रक्षा के लिए भाग खड़े हुए थे और प्लेग के प्रकोप के सूचक चिह्नों ने मकानों को विरूप कर दिया था। उक्त दोनों अधिकारियों पर आक्रमण की घटना भी महामारी के शान्त हो चुकने के कोई दो महीने बाद हुई थी। अन्ततोगत्वा उक्त हत्या के कारण चाफेकर तथा कुछ अन्य व्यक्तियों को गिरफ्तार करके उन पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें फांसी दे दी गई।

सैनिकों की क्रूर तथा काली करतूतों के बारे में तरह-तरह की अफवाहें फैल रही थीं। गोखले को भारत से आने वाले वे समाचार-पत्र मिल रहे थे, जिनमें उन घटनाओं के रोंगटे खड़े कर देने वाले

वणन हात थे । उनका रोष प्रचण्ड हो उठा । अय समाचारपत्रों में प्रकाशित बातों पर तो वह विश्वास न भी करते, परन्तु जब उन्होंने अपने ही पत्र 'सुधारक' में अनियन्त्रित रोष म भरी भाषा का प्रयोग पाया तो उन्हें पुणे मे होने वाले अत्याचार कामो का विश्वास हो गया। 'सुधारक' के 12 अप्रैल 19 अप्रल और 10 मई, 1897 क अको में तो लोगों को यहा तक प्रोत्साहित किया गया था कि व चुपचाप उन अत्याचारों को सहन न करके उनका प्रतिरोध करें । 'सुधारक' के एक लेख में कहा गया था—तुम्हें धिक्कार है । तुम्हारी माताओं, बहनों और पत्नियों क साथ बलात्कार किया जा रहा है और तुम शात हो! ऐसी स्थिति को इतने निष्क्रिय भाव स तो पशु भी सहन नहीं करते । क्या तुम इतने अधिक क्लीव हो गए हो ? हृदय को भीतरी तह का चीर डालने वाली सबसे अधिक असह्य बात सनिकों की दमन क्रिया न होकर तुम्हारी कायरता और तुम्हारी क्लीबता है । एक अय अवसर पर (सुधारक) में लिखा गया—अभी तक व लोग माल ही चुरा रहे थे, पर अब तुम्हारी औरतों पर भी हाथ डालने लगे हैं। यह सब होने पर भी क्या तुम्हारा खून नही खौलता ? धिक्कार है ! मानना ही पडता है कि भारतीयों जैसे कायर दुनिया क और किसी भाग म नही मिल सकते। क्या तुम बूढ़ी औरतों की तरह आसू बहा रहे हो ? क्या तुम इन नर पशुओं को पाठ नही पढ़ा सकते ? रैण्ड के शासन पर प्रहार करने की दृष्टि से केसरी की अपेक्षा 'सुधारक' उग्रतर रहा।

12 और 13 अप्रल को उस समय वल्बी आयोग गोखले के साथ जिरह कर रहा था, जब उनका पत्र अपना क्षोभ शब्दों के रूप में व्यक्त कर रहा था । भारत अथवा उनका अपना पुणे एक दूरस्थ देश में प्राप्त विजय का अभिनन्दन करने की मनःस्थिति मे न था । सम्भवत आयोग के साथ होने वाली उन नोक-झोंक मे भारत के किसी भी पत्र न उत्साहपूर्ण रुचि नही दिखाई, जिसमे विजयश्री न गोखले का वरण किया, परन्तु यह अत्यन्त सराहनीय बात है कि गोखले ने, स्वदेश म होने वाली घटनाओं के कारण अपने को उस समय विचलित नहीं होने दिया । उन्होंने एकनिष्ठ होकर अपना काम पूरा किया।

आयोग के कमरे से बाहर निकलने पर ही गोखले को अपने साथियों और मित्रों की ओर स प्राप्त पत्र पढ़ने का समय मिल पाया,

जिनमें पूने में व्याप्त आतंक के शासन का विस्तृत विवरण दिया गया था। फर्गुसन कालेज के प्राध्यापक वी० के० राजवाडे पूने के विख्यात उपन्यासकार एच० एन० आप्टे सदाशिव नाटू, पण्डिता रमाबाई और अन्य व्यक्तियों ने पत्रों द्वारा मर्मभेदी खबरें उन तक पहुंचाईं। इस समाचार ने गोखले का बहुत उद्वेलित कर दिया कि सैनिकों ने दो महिलाओं के साथ अनाचार किया और उनमें से एक ने आत्महत्या कर ली। गोखले क्या कर सकते थे? इंग्लैंड में रहकर वह अधिकारियों से यह आग्रह ही कर सकते थे कि वे अपने नाम को कलंकित करने वाले उन अत्याचारों को रोकने के लिए अविलम्ब कदम उठाएं। उन्होंने अपने साथियों से सलाह की। विलियम वेडरबर्न ने उन्हें सलाह दी कि वह पार्लियामेंट के कुछ सदस्यों को अपने विचारों से परिचित करा दें और वह सारी सामग्री पेश कर दें, जो उनके पास है। उन्होंने ऐसा ही किया। परन्तु वह इससे ही सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने अपने हस्ताक्षर सहित एक पत्र मैंचेस्टर गार्डियन में प्रकाशित करा दिया। उस पत्र में उन्होंने दो महिलाओं के साथ किए गए उक्त अनाचार का उल्लेख किया। इससे इंग्लैंड में बहुत अधिक उद्वेग उत्पन्न हो गया क्योंकि अंग्रेज ऐसी बातों के बारे में बहुत संवेदनशील हैं जो उनकी नीति और महिलाओं के प्रति सम्मान की उनकी परम्परा पर प्रभाव डालती हैं। सच्ची बात का पता लगाने और बुराई को दूर करने के बदले उन लोगों ने तूफान मचा दिया। इतना बड़ा अपमान वे नहीं सह सकते थे और सरकार न्याय तथा ईमानदारी के साथ उक्त आरोप पर विचार करने के लिए तैयार न थी।

इस आरोप के साथ बम्बई सरकार का सीधा सम्बन्ध था। उसने पूछताछ करके इंग्लैंड की सरकार को सूचित कर दिया कि उक्त आरोप विद्वेष और घृणा के कारण गढ़ लिया गया है। सच्चाई का पता लगाने के लिए बम्बई के शासनाध्यक्ष सैण्डहर्स्ट ने एक अनोखे तरीके से काम लिया। उनके विभाग ने प्लेग सहायता प्रबंध के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न तैयार करके उन्हें तार द्वारा पूने के पांच सौ विशेष नागरिकों के पास भेज दिया और उन्हें तार द्वारा ही उन प्रश्नों का उत्तर भेजने के लिए कहा। इस प्रकार प्राप्त होने वाले किसी भी उत्तर में गोखले द्वारा कही गई बात की पुष्टि नहीं की गई थी। वे ऐसा कैसे कर सकते थे? सम्पूर्ण वातावरण में आतंक और प्रतिशोध परिव्याप्त था। गोखले का साथ देने

वाले किसी भी व्यक्ति को दड दिया जा सकता था। पत्र पाने वाला को बता दिया गया था कि उन्हे चौबीस घटे के अन्दर ही उन प्रश्ना के उत्तर भेज देते हैं। उन महानुभावा को उत्तर देने से पहले आवश्यक पूछ-ताछ करने भर का समय भी नही दिया गया था। इस सम्बध में कुछ कहना व्यथ है। सरकार 'विजयिनी' हुई। समाचारपत्रा में जा कुछ कहा गया था, जो कुछ लोगो ने सहन किया था, वह सब झूठ था। सैनिका और अधिकारिया ने जो कुछ किया था, वह अधिक से अधिक उचित और मानवीय ढग से तथा लोगा के हित साधन के लिए ही किया था। क्या हम यह मान सकते हैं, क्या उन पाच सौ प्रतिष्ठित नागरिका न जा कुछ कहा था अपन विश्वास के आधार पर कहा था? गाखले को उक्त कथा का खलनायक घाेषित कर दिया गया—उनके द्वारा लगाए गए आरोप झूठे और दुर्भावनापूण ठहरा दिए गए। गोखल से भिन्न प्रवृत्ति का काई व्यक्ति उनक स्थान पर हाता तो वह किसी अन्य समाचारपत्र मे एक पत्र लिख कर यह प्रकट कर देता कि वे उत्तर अनुचित ढग स प्राप्त किए गए।

गाखले की विपत्तिया का प्याला भर चुका था। उनके मित्र तथा प्रशसक भी उनकी आलोचना करने लगे थे। भारत मत्री ने बम्बई सरकार के कथन के आधार पर, हाउस आफ कामन्स में विजय दपपूवक यह उत्तर दिया कि गाखले न जा आरोप लगाए ह वे झूठे हैं, निराधार ह।

वाचा के मतानुसार गाखले को समुचित सावधानी बरते बिना मूल पत्र "मनेचस्टर गार्डियन" मे नही भेजना चाहिए था। गाखले के स्थान पर वाचा होते तो ऐसा न करते। गोखले के पास अपन उन मित्रा के पत्र मौजूद थे जिन पर उन्हें स्वय अपने बराबर विश्वास था। फिर वह क्या करते? क्या वह अपने मित्रा से कह दते कि उन्हान अपने पत्रो मे जा कुछ लिखा है उसके समथन मे कोई साक्ष्य उपलब्ध नही है और इसीलिए वह उस सम्बध में कुछ भी करन की स्थिति में नही हैं? पुणे मानव उत्पीडन मे कराह रहा था। पुणे का प्रतिनिधि, जो सयागवश इग्लड में मौजूद था, यदि उस समय चुप रहता ता उस पर निकम्मपन और काहिली का आरोप लगाया जाता।

उन परिस्थितिया में गोखले ने वही किया, जो उन्हे करना चाहिए था। विदशी शासन में, सवश्रेष्ठ साक्ष्य उपलब्ध हाने पर भी, कोई आराप

सिद्ध कर देना प्राय असम्भव हा जाता है, पर इसका अथ सदा यही नही होता कि वे आराप भूठे ह। जिन महिलाग्रा के साथ अनाचार किया गया वे भी, नारी हान के नात, यह कभी स्वीकार न करती कि वास्तव में वसा हुआ। इस प्रकार की स्वीकृति का अथ हाता उनके पारिवारिक तथा मामाजिक जीवन का अन्त। अधिक स अधिक यही कहा जा सकता है कि आराप महा ता थे पर उन्हें सिद्ध नही किया जा सका।

इस स्थिति न गाखले का क्षुब्ध और उद्वेलित कर दिया। जसा कि वाचा न कहा है, गाखल आवगशील तथा भावुक व्यक्ति थे। उनके मित्रा ने, सदाशयपूण हान पर भी, उक्त आराप लगान स पहले उनके बारे में पूरी तरह छानबीन नहा की थी। अविलम्ब यह सब प्रकाशित कर देन से पहले उन्हाने भी पूरी सावधानी स काम नही लिया था। सरकारी तन्त्र गैर सरकारी तन्त्र स अधिक शक्तिशाली था। सामायत लागा में सरकार का विरोध करन की भावना का अभाव था। गाखले की ख्याति पर आच आन जसी स्थिति हा गई और भविष्य अधकारमय जान पडने लगा।

गाखले और वाचा न यूराप का दौरा करन की योजना बनाई थी, परन्तु गाखले न यह विचार छोड दिया। स्वय अपने प्रति सघपशील हाने की दशा में वह उस यात्रा स आनन्दित कसे हो सकते थे? 18 जुलाई 1897 को वह स्वदेश यात्रा के विचार से ब्रिडिसी नामक स्थान पर वाचा के साथ आ मिले। माग म जहाज पर वह प्रसन्नचित्त नही रहे और सभी लोगा का साथ बचा कर उसी दुखद प्रसग पर विचार करत रह। वहा भारतीय सिविल सेवा का एक अधिकारी हीटन मौजूद था, जिसे गोखल के उस काय की सत्यता पर पूण विश्वास था। उसने गोखले का धीरज दिलाने का प्रयत्न किया। अय अग्रेज यात्री गोखले को ऐस व्यक्ति के रूप म ही देखते रहे, जिसन दुर्भावनापूवक ब्रिटिश सैनिका को बदनाम किया था।

गाखले के जहाज ने जब अदन पहुचकर लगर डाला तो उन्हे अपने मित्रा के पत्र मिले, जिनमे यह आग्रह किया गया था कि वह सरकार को यह न बताए कि उन लोगा ने गोखले को उक्त जानकारी प्रदान की थी। गोखले अपने उन मित्रा के नाम बताते या न बताते यह सवथा भिन्न प्रश्न था, परतु उनके इस प्रकार के आग्रह से उन मित्रो की

कमजोरी ही सामने आई। गोखले के मित्र यदि स्वेच्छया तथा साहसपूर्वक अपने नाम प्रकट कर देते तो गोखले की जिम्मेदारी कुछ कम हो जाती। गोखले को जो कुछ बताया गया उसे प्रकट कर देने में गोखले ने जितना साहस दिखाया, उतना साहस उनके उन विश्वसनीय मित्रों ने नहीं दिखाया, जिन्होंने उन्हें वह जानकारी दी थी।

जहाज बम्बई पहुंचा। उसके पश्चात् क्या हुआ, यह निश्चित रूप से पता नहीं है। वाचा का कथन है—गोखले के बम्बई पहुंच जाने के बाद इस अप्रिय प्रसंग का शेष भाग इतिहास का विषय है, अतः मैं आग्रहपूर्वक उसके उल्लेख से बच रहा हूं।

इस सम्बन्ध में दो घटनाओं का उल्लेख पाया जाता है। उनमें से एक बम्बई के पुलिस कमिश्नर की गोखले से भेंट और दूसरी है फिरोजशाह मेहता के प्रतिनिधि की गोखले से भेंट। आखिर पुलिस कमिश्नर गोखले को क्यों मिला? वह भेंट न तो शिष्टाचार प्रदर्शन के लिए की गई थी न गिरफ्तारी अथवा तलाशी के लिए। यदि इस तरह की कारवाई सोची या की जाती तो क्या वह विधिसम्मत होती? पत्र इंग्लैंड में प्रकाशित हुआ था, यद्यपि यह कहा जा सकता था कि वह समाचारपत्र भारत में भी प्रचारित होने के कारण उसके न्याय-अधिकार का प्रश्न पैदा नहीं होता था। परन्तु उस दशा में यह आवश्यक था कि बम्बई की अदालत में उसकी शिकायत दर्ज की जाती और तलाशी के लिए आदेश ले लिए जाते। परन्तु न तो इस तरह की कोई शिकायत दर्ज कराई गई थी न ऐसे आदेश ही लिए गए थे। क्या सरकार को इस बात का भय था कि उन पत्रों से सरकार के विरुद्ध कोई अप्रिय बात सामने आ जाएगी? कमिश्नर सरकारी तौर पर ही गोखले से मिला होगा, ताकि यह जान सके कि गोखले आगे क्या करना चाहते हैं। इससे आगे की कारवाई गोखले के उत्तर पर निर्भर रहनी थी। बताया जाता है कि गोखले ने पुलिस कमिश्नर को यह उत्तर दिया कि वह भारत में अपने मित्रों से सलाह किए बिना कुछ नहीं करेंगे। इससे सरकार अनिश्चय की स्थिति में पड़ गई।

जहाज पर फिरोजशाह मेहता का प्रतिनिधि गोखले से पुलिस कमिश्नर से पहले मिला और उनके द्वारा इंग्लैंड में दिए गए वक्तव्यों से संबंधित सभी कागज-पत्र अपने साथ ले गया। उन कागजों

किया, परन्तु महिलाम्रा के प्रति किए गए उस अनाचार का वह भी प्रमाणित नही कर सक्त थे, जिसका उल्लेख गाखले न अपन वक्तव्य मे किया था।

गोखले न 4 अगस्त 1897 को "दि टाइम्स आफ इण्डिया" और "दि मचस्टर गार्डियन" म अपनी क्षमायाचना प्रकाशित करा दी। वह क्षमायाचना का पत्र लम्बा और विस्तारपूर्ण था और यह उन लागा अर्थात सनिका का लक्ष्य करके लिखा गया था, जो किसी प्रकार की क्षमायाचना के पात्र नहीं थे। उसका अन्तिम भाग बहुत मार्मिक था। गोखले न लिखा—

जब मन उनके (भारतीय पार्लियामेंटरी समिति के सदस्या के) सामन भाषण दिया, उस समय स्वर्गीय रैण्ड की स्थिति गम्भीर थी और मन अपन वक्तव्य के आरम्भ मे ही यह कहा था कि किसी भी व्यक्ति के लिए इस स्थिति मे हाना अप्रिय ही है कि वह एक ऐस अवसर पर पूणे के प्लेग विषयक काय-कलापो की आलाचना करे, जबकि उनके लिए कष्ट सहन वाला अधिकारी ऐसी दशा मे पडा है जिसके लिए सभी ओर से अधिकाधिक सहानुभूति और आदर भाव की ही अभिव्यक्ति हानी चाहिए। और इस समय भी, जबकि म उस दयनीय स्थिति का पूरी तरह अनुभव कर रहा हू जिसमे मरे द्वारा उठाए गए कदम न मुझे डाल दिया ह, मुझे यह साचकर बहुत खेद हा रहा है कि मैं एक ऐस समय मे परमश्रेष्ठ गवनर महादय की चिन्ताए बढान का कारण बना, जिस समय वह अपना मानसिक सतुलन बनाए रखन मे अधिकतम कठिनाई का अनुभव कर रहे ह। मैं इस बात का भी गभीर अनुभव कर रहा हू कि यद्यपि इस देश म कुछ अग्रेज मरे बारे मे फसला करत समय केवल विधिसगत ही नहीं उदार भी रह ह परन्तु म उनके दशवासिया अर्थात् प्लेग विषयक कायकलापा मे लगे सनिका के प्रति इससे कहीं कम उदार रहा हू और मन ऐसी स्थिति में उनक विरुद्ध गम्भीर तथा अकारण आराप लगाए ह, जबकि व एक ऐसे काम मे लगे थे जिसके कारण उनके आलाचका का उनके प्रति केवल न्यायसगत ही नही, उदार भी हाना चाहिए था। अत म एक बार फिर, बिना किसी शत के परमश्रेष्ठ गवनर महादय स, प्लेग समिति क सदस्यो स और प्लेग विषयक कायकलापा में लगे सनिका स क्षमायाचना करता हू।

गाखले के जीवन के एक दुखद अध्याय का अत इस तरह हुआ। आराप वापस ल लन और क्षमायाचना की उनकी बात तो उचित मानी जा सकती है, परन्तु सनिका की उन्हान जो प्रशसा की वह अनावश्यक ही थी। अन्यथा गाखले अपनी स्पष्टवादिता, साहस और उदारता के लिए पूरी प्रशसा के अधिकारी रहे। उनकी स्थिति मे काई और व्यक्ति भी इससे भिन्न आचरण नही कर सकता था। काल्हापुर अभियाग के सम्बध में अनजान म ही जाली पत्र छाप दन के कारण पहले भी कुछ अवसरो पर क्षमायाचना करने मे तिलक और आगरकर ने इतनी ही स्पष्टवादिता प्रदर्शित की थी।

परन्तु जनसाधारण न आर विशेषत गोखले के घनिष्ट मित्रा ने न ता उस भाषा को ही पसद किया, जिसमें क्षमायाचना की गई थी और न उसमे की गई सनिको की कृतज्ञतापूण सराहना की। पुणे की उन सकट की घडियो के वे प्रत्यक्ष दशक और भुक्तभोगी रहे थे। वे इस बात का स्वागत करते कि गाखले पर मुकदमा चलता और इस तरह उस आराप को कम से कम अशत तो सच्चा सिद्ध कर पान का अवसर मिलता जा गोखले ने इतन साहसपूवक लगाया था। परतु गाखले भिन्न प्रकृति के व्यक्ति थे। वह ऐसी किसी बात की पुष्टि नही करना चाहत थे जिसकी पुष्टि ही नही हो सकती थी और क्षमायाचना सच्ची तभी हो सकती थी जब वह पूण हो।

इग्लण्ड और भारत म उस क्षमायाचना की प्रतिक्रिया क्या हुई? बम्बई के गवनर सडहस्ट न बम्बई विधान परिषद मे क्षमायाचना प्रसग का उल्लेख तो किया, परन्तु उसम इतनी विशाल हृदयता नहा थी कि वह इसे उदारतापूवक ग्रहण कर पात। उन्होने तो गोखले का नामाल्लेख भी नही किया। अपनी सीमा का उल्लघन करके उन्हाने गाखल का यह सलाह दी कि वह आवश्यक हान पर उस प्रकार के वक्तव्य भारत मे दे, क्याकि यहा उनकी जाच पडताल हो सकती थी और सत्य सिद्ध न हाने पर उनका खण्डन किया जा सकता था। सडहस्ट की यह प्रवृत्ति बदलने मे दा वष लग गए। अगल वर्षो मे पुणे मे फिर प्लग का प्रकोप हा गया। सहायता आदालन मे गाखले ने अनथक काम किया आर उन्हाने घर घर का दौरा किया। सडहस्ट न 1899 म कहा था—प्लग के दिना मे सहायता काय करन वाल स्वयसवको मे स प्राफेसर गोखले स

अधिक महनती, उदार और सहानुभूतिपूर्ण कायकर्ता और काई नहीं है। सडहस्ट की तुलना में इग्लड में उनके देशवासी कहीं अधिक उदार थे। मार्ले न इस घटना का उल्लेख डब्ल्यू० एस० केन क सामन किया और उन लागा न वह प्रसग हस कर टाल दिया। वडरवन और ह्यूम ने गाखल स हिम्मत न हारने क लिए कहा। ह्यूम न कहा—इस घटना को मैं किंचित मात्र भी परवाह नही करता। तुम्हे यह कभी नही साचना चाहिए कि तुम हम लोगो से दूर हो गए हा। हमसे क्षमायाचना करने की आवश्यकता नही है। हम तुम्हे एक लक्ष्य क प्रति शहीद हान वाला व्यक्ति समझत ह और हम यथासभव पहले स भी अधिक तुम्हारा साथ दन के लिए तत्पर हैं।

गोखले समझते थे कि उनके कारण दादाभाई नौराजी का पार्लियामेंट म नीचा दखना पडा है। इस सम्बन्ध मे गाखले न उन्हे जो पत्र लिखा वह स्मरणीय है। वह पत्र क्षमायाचना म दो दिन बाद लिखा गया था और उसमे गोखले न कहा था—मेरे यहा पहुचने स पहले सरकार ब्रिटिश सरकार न रह कर रूसी सरकार की तरह काम करने लग गई थी। गद्दारी का अभियाग लगाकर की जाने वाली गिरफ्तारियो और देश निष्कासनो के कारण पुणे मे इतनी घबराहट फल गई थी कि किसी भी तरह का पुष्टिकरण असभव हो गया था। इसक अलावा सरकार न यह निश्चय कर लिया था कि वह उन शिकायतो की किसी आयोग द्वारा जाच-पडताल नही करवाएगी। अत पीछे हट जाने क अतिरिक्त मेरे सामने और कोई विकल्प न था। मन जो कदम उठाया है, वह मेरे द्वारा परिस्थितियो के सामने सिर झुका देने जैसा है और मैंने ऐसा करते समय प्राप्त उत्कृष्टतम परामर्श के अनुरूप कार्य किया है। म जानता हू कि मेरे इस काम न इस उद्देश्य का जबरदस्त नुकसान पहुचाया है, जो हम सबको बहुत प्यारा है और जिसकी पूर्ति म बराबर करता चाहता था।

दादाभाई न इस पत्र के उत्तर मे गाखले को यह परामर्श दिया—धैयपूर्वक अपना कर्तव्य करते रहो। तुम जल्दी भडक जाते हो और तुम्हारी वर्तमान उत्तेजना को भी मैं उस दशा म सुख स सहन कर लूगा यदि इस दुखद अनुभव स तुम शात तथा सौम्य बन रहन तथा कोई भी कदम उठान स पहले उस पर विचार कर लेने का पाठ सीख लाग। तुम्हें हिम्मत नही हारनी चाहिए।

गोखले न इग्लड मे अपने मित्रा के नाम लिखे पत्रा में यह विचार प्रकट किया कि वह सावजनिक जीवन से कायमुक्त हो जाना चाहते ह। बहुत अधिक भावुक और सवेदनशील होने के कारण वह इस वात के लिए तैयार नही थे कि उनके कारण देश को हानि उठानी पडे। गोखले क हितपिया ने उन्हे कायमुक्त होने से रोका। कायमुक्ति का यह विचार गोखले के जीवन मे पहली बार नही आया था। 8 फरवरी 1896 को इग्लड के लिए प्रस्थान करन से पहले और क्षमायाचना की उक्त घटना से भी पहले उन्होन जी० वी० जोशी का एक पत्र लिखा था, जिसमे कहा गया था—पुणे के सावजनिक जीवन स मैं ऊन गया हू। हाल की घटनाओ न मेरी आखे पूरी तरह खोल दी है और मेरी बहुत इच्छा है कि मैं सावजनिक दायित्वा म छुट्टी पाकर अपना बाकी जीवन पूरी तरह कायमुक्त रह कर विताऊ। कायमुक्त हो जाने का विचार समय-समय पर एक दौरे की भाति गोखले के मन म उठा करता था, परन्तु वह विचार अधिक समय तक बना नही रहता था।

क्षमायाचना प्रसग ने गोखले पर अपरिमित प्रभाव डाला। एक बार गोखले न अपन एक प्रशसक तथा 'ज्ञान प्रकाश' के सम्पादक, वासुदेव गोविन्द आप्टे से पूछा कि उक्त पूरे प्रसग क सम्बन्ध मे उनका क्या विचार है। आप्टे न कहा कि गोखल के आचरण के कारण देश को बहुत नीचा देखना पडा है। अपन अतरग सखा को यह कहते सुन कर गोखले का अपार दुख हुआ। परन्तु शीघ्र ही वह आशावान हो गए। उन्होंने कहा —मुझ पर जिस भूल का दोषारोपण किया गया है उसकी क्षतिपूर्ति के रूप मे म एक दिन अपने देश क लिए गौरव का कारण बन कर रहूगा। और उस समय तुम्हारे जैस मेरे वे आलोचक मेरे प्रशसक बन जाएगे, जो आज मुझे मौत के मुह मे धकल रहे ह।

इस सम्बन्ध मे गोखले के वक्तव्य का एक अश उदधृत कर देना समीचीन है—अपने आचरण के बारे म अन्तिम फैसले के विषय में मुझे कोई सदेह नही है। एक दिन ऐसा अवश्य आएगा जब मेरे सभी देशवासी यह अनुभव करेंगे कि जहा तक मेरा सबध है, इस अधिकतम दुर्भाग्यपूण घटना पर शोकपूवक विचार किया जाना चाहिए, क्रोधपूवक नही और यह कि अधिकतम दुष्कर परिस्थितियो में मैंने वही एकमात्र माग ग्रहण किया, जो मेरे कर्तव्य तथा गौरव के अनुरूप था। तथापि अभी तो मैं

चुप रह कर ही सतुष्ट हू। सही भावना स अगीकार की जाने वाली परीक्षाए और कठिनाइया हमे पवित्र और उन्नत ही बनाती ह सावजनिक कतव्य, जो किसी व्यक्ति के कहन पर नही ग्रहण किए जात, किसी के कह देन मात्र से छोडे भी नही जा सकते।

जैसा कि बाद की घटनाओ से सिद्ध हो गया, गोखले न अपने वचन पूरे कर दिखाए। उस अस्थाई धक्के ने उन्हें सन्तप्त कर दिया, परन्तु उसन उन्हें दुगुनी शक्ति और उत्साह से अपने कतव्य-पालन में लग जाने की सामथ्य भी प्रदान की।

8 जनवरी, 1898 को गोखले ने 'दि टाइम्स आफ इडिया' में एक पत्र प्रकाशित करके अपनी क्षमायाचना का औचित्य स्थापन किया। उस अत्यत महत्वपूण पत्र के कुछ अशो से यह पता चल जाता है कि उनका मस्तिष्क किस दिशा में गतिशील था--जहा तक इस विचार का सम्बन्ध है कि मुझे पीछे हटना ही नही चाहिए था और सामन आने वाले प्रत्येक परिणाम का सामना करना चाहिए था, मुझे यह कहन म कोई आपत्ति नही है कि जो लोग ऐसा सोचते हैं वे प्रस्तुत प्रसग के बार में कुछ जानत ही नही हैं। एक मनुष्य की भाति अपनी विपत्ति को झेलन क लिए जिस तरह के साहस की मुझे आवश्यकता थी, वास्तव मे उसी साहस के कारण मने वह माग अपनाया था, जिसके लिए मुझे इतन अपयश का भागी बनना पडा। व्यक्तिगत भय का साधारणतया जो अथ लगाया जाता ह वसा कोई खतरा मरे सामने कभी नही रहा। किसी अन्य कारण को नहो तो कम स कम तकनीकी कठिनाइयो क कारण ही मेरे खिलाफ कानूनी कारवाई नही की जा सकती थी।

ऐसा लगता है कि कही कहा यह समझा जा रहा है कि मरे पीछे हट जाने का कारण यह है कि स्टीमर पर ही पुलिस कमिश्नर न मुझे धमकी द दी थी। यह विचार सरकार के प्रति भी अन्यायपूण है और स्वय मेरे प्रति भी। विसेंट साहब न जिन्होंने बहुत ही समझदारी और सावधानी से काम किया, इस बात का फैसला पूरी तरह मुझ पर छोड दिया था कि म स्टीमर में ही उनकी इच्छानुसार उनके साथ भेट वार्ता करना चाहता हू या नहीं। जहा तक मैं समझ सका उस भेंट म तो मुझे उनका उद्देश्य यही जान पडा कि वह मुझसे उन लोगो क नाम जान लें, जिन्होंने मुझे पत्र लिखा था, सम्भव हो तो वे पत्र दख भी लें

और यदि वह ऐसा कर सके तो मेरे, जहाज स उतरकर किसी और से मिलने से पहले ही मुझे उन अनुमानित क्षतिग्रस्त पक्षों के सम्बध में कुछ विशेष ब्यौरों के लिए वचनबद्ध कर ले। मैंने किसी भी प्रकार के ब्यौरे के विषय में उनकी इच्छानुसार वचनबद्ध होने से नम्रता, किन्तु दृढतापूर्वक इनकार कर दिया कि वह इतना विश्वास अवश्य कर सकते हैं कि मैं उस मामले में सर्वथा स्पष्टवादितापूर्वक आचरण करूँगा।

10 बम्बई विधान परिषद में

गोखले को जब यह पता चला कि 1899 में बम्बई विधान परिषद के चुनाव में वह जीत गए हैं तो उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई। यह उनकी पहली सफलता थी जिसके बाद उन्हें अनेक सफलताएं प्राप्त करनी थीं। वेल्बी आयोग के सामने उन्होंने जिस योग्यता का परिचय दिया, उससे यह सिद्ध हो गया था कि वह विधान मंच पर सरकार का मुकाबला करने के लिए बहुत उपयुक्त व्यक्ति हैं। क्षमायाचना की एक घटना एक बीती बात बन चुकी थी और सरकार का क्रोध भी शान्त हो गया था और अब वह गोखले के प्रति उस आदरभाव की अभिव्यक्ति करने लगी थी जिसके वह अपनी सेवा और सज्जनता के कारण अधिकारी थे। गोखले को उनका पुराना स्वत्व पुनः प्राप्त हो गया था। देश के हितसाधन के लिए अधिक कष्टसहन, अधिक सेवा और संघर्ष—यही तो वह चाहते थे। और सहायता तथा मार्गदर्शन के लिए उन्हें रानाडे भी उपलब्ध थे।

उन दिनों प्रान्तीय विधान परिषदों में सरकार का जबर्दस्त बहुमत होता था। निर्वाचन से भरे जाने वाले गिने-चुने पदों के लिए भी प्रत्यक्ष चुनाव नहीं किया जाता था। बम्बई प्रेसीडेंसी के मध्यवर्ती डिवीजन को, जिसमें छह जिले शामिल थे एक स्थान प्राप्त था, इस स्थानीय जिला मंडल (डिस्ट्रिक्ट लोकल बोर्ड) भरा करते थे। गोखले ने इसी पद के लिए चुनाव लड़ा था। इस निर्वाचन क्षेत्र में तिलक दो बार—1895 में और फिर 1897 में—चुने गए थे। 1897 में उन्हें राजद्रोह के अभियोग में डेढ़ वर्ष का कारावास दे दिया गया। यह कारावास छह महीने कम कर दिया गया और उन्हें 6 सितम्बर, 1898 को रिहा कर दिया गया। तिलक मुख्यतः सरकार को यह दिखाने के लिए कि लोगों का उन पर पूरा भरोसा है, तीसरी बार भी चुनाव में खड़े होना और वह स्थान पाना चाहते थे। उन्होंने जिला मण्डलों के सदस्यों के विचार जानने का प्रयत्न किया। उन्हें पता चला कि यद्यपि वे लोग हृदय में

उनक प्रति सहानुभूति रखत थे परतु उनमे इतना साहस नही था कि वे खुले ग्राम सरकार का सामना कर सके। ग्रत तिलक न चुनाव मे खडे होने का विचार छाड दिया। इस प्रकार गोखले का माग सुगम हो गया ग्रौर वह चुनाव भी जीत गए। उनकी सफलता पर बहुत खुशिया मनाई गइ। बम्बई विधान परिषद मे किए जाने वाले उनके काम को तो इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के वहत्तर मच पर किए जाने वाले उनके ऐतिहासिक काम की भूमिकामात्र सिद्ध होना था।

गोखले विधानाग के निष्क्रिय सदस्य कभी नही रहे। एक युवा नव-सदस्य के नाते भी वह लोगो का बराबर ग्रपने ग्रस्तित्व का भान कराते रहे। वह परिषद् की कायवाही मे सक्रिय रूप से दिलचस्पी लेते थे ग्रौर उसमें प्रभावपूण दखल देते थे। ससदीय राजनीति के साथ उनके ग्राचार ग्रौर विचार का सहज सम्बध था।

गोखले न बम्बई विधान परिषद की तीन महत्वपूण समस्याग्रो मे विशेष रुचि दिखाई ग्रकाल सहिता भूमि ग्रन्तरण विधेयक ग्रौर नगर पालिकाग्रो की कायव्यवस्था। उस प्रान्त की कृपिरत जनता ग्रभी 1896 के ग्रकाल के प्रकोपो के प्रभावो से सभल नही पाई थी। गोखले वेल्बी ग्रायोग के सामने दिए गए साक्ष्य मे पहले ही यह स्पष्ट कर चुके थे कि *ग्रकाल सहायता के लिए इकट्ठी की गई रकम को सरकार ने गलत* तरीके से खच करके उससे, घाटे मे जाने वाली रेलवे कम्पनियो के, लाभाश चुका दिए थे। सावजनिक सभा ग्रौर दक्खन सभा मत्री होने के नाते गोखले ने ग्रनेक ग्रभ्यावेदनो के प्रारूप तैयार किए थे। ग्रनेक याचनाए पेश की थी ग्रौर वह बराबर दुखी लोगो के सम्पक मे ग्राते रहे थे। ग्रत वह उनके शोक सतापो से भली प्रकार परिचित थे।

ग्रकाल सहिता ग्रनेक वर्षो से मौजूद थी। हा, उस पर प्रभावपूण ढग से काम नही हो रहा था। सरकार की नीयत तो खराब नही थी, परन्तु उसे काय रूप देने की जरूरत बराबर बनी थी। उस सहिता की *तीव्र ग्रालोचना करने का पहला ही ग्रवसर गोखले ने हाथ से न निकलने* दिया ग्रौर उन्होने वह काम किया भी योग्यतापूवक। सहिता के ग्रनुसार कुछ निम्नतम सहायता काय ग्रारम्भ कर दिए गए थे ग्रौर कजूसी के साथ कुछ सहायता भी दी जाती थी। वास्तव मे उस सहिता का पालन ग्रत्यत कठोर ढग से किया जाता था। गोखले यह नही पसद करते थे कि

सहायता राय उन स्थाना पर प्रारम्भ किए जाए जो प्रभावित पीडित किसाना र घरा स दूर हा। काई भा किसान या मजदूर बहुत समय तक अपन घर स दूर नहा रह सकता था। यह भी दखा गया था कि जहा बहुत अधिक लाग एकत्र हात थे वहा महामारी फल जान का डर हा जाता था। अत गाखल न सुझाव दिया कि प्रभावित इलाका म ही छाट पमान क उद्याग धधे शुरू कर दिए जाए। अकाल स पीडित जिन लागा म काई शक्ति-साहस शप नही रहता था उनस बहुत कठार परिश्रम की अपक्षा की जाती था। इस तरह काम लकर सरकार मानो अकाल सहायता क वास्तविक उद्दश्य की ही हानि कर रही थी। निश्चित काम पूरा न किया जान पर छाटे छाट अधिकारी प्राय जुर्माने कर दिया करत थे। जहा तक मुफ्त सहायता का सम्बध था गाखल न यह स्पष्ट कर दिखाया था कि इस दिशा में बम्बई सरकार अय सरकारा स कितनी कम उदार थी। सहिता स्वय ता बुरी नहा थी परन्तु उसका पालन बुर ढग स किया जा रहा था। गाखल का कहना था कि इस तरह क सहायता काय का प्रबध सम्मानजनक ढग स किया जाना चाहिए।

अकाल पीडिता स प्रत्यक्ष रूप स परिचित हान और सहिता क काय की पूरी जानकारी रखन क कारण गाखल का उनक विधान विषयक काय क आरम्भ म ही, अकाल सहायता क सम्बध म अधिकारिक जान-कारी वाला व्यक्ति समझा जान लगा। उनकी यह ख्याति आजीवन बनी रही। सरकारी नीतिया पर भी इसका प्रभाव पडा और इसक कारण उन्हें लागा का भी अपरिमित आभार और श्रद्धा भाव प्राप्त हा गया।

उन वर्षों म महाराष्ट्र का एक क बाद एक सकट का सामना करना पडा। अकाल और प्लेग हिन्दू मुसलमाना क झगडा, क्राफाड काण्ड और कुछ अय घटनाओं ने यहा के निवासिया का विचलित कर दिया। प्लेग की वदी पर प्रति वष बहुत अधिक लाग बलि चढ जात। एक ओर वह निदय सरकार थी जो प्रतिरोध के हल्के स हल्के प्रदशन का कुचल डालने के लिए तत्पर रहती थी और दूसरी ओर वे नता थे जिनम आपस मे ही फूट थी। लाग कष्ट पीडा म पिस जा रहे थे और उनकी स्थिति सुधारन क लिए कोई निश्चित कदम उठाए जान का कही काइ सकेत दिखाई नही द रहा था। लाग निराश हाते जा रहे थे। और सरकार से उन्हें बहुत नफरत हो गई थी—यद्यपि इससे उन्हें कुछ लाभ नही हो

रहा था। उस समय आवश्यकता ऐसे रचनात्मक चितकों की थी, जो इस बात का ध्यान रख सके कि लोगो की भावनाए निराशा की ओर अग्रसर न हो और इस प्रकार के उद्देश्यनिष्ठ नेताओ मे गोखले को मुख्य स्थान प्राप्त था।

30 मई, 1901 का बम्बई सरकार ने विधान परिषद मे भूमि अन्तरण विधेयक रखा। गर सरकारी सदस्यो ने उसका इतना तीव्र विरोध किया कि पास हो जाने पर भी वह विधेयक काम मे नहो लाया गया। पत्रो, राजनैतिक सगठना और सामान्यत किसानो ने भी उसकी खूब निन्दा की तिलक ने केसरी मे ऐसे अनेक लेख लिखे, जिनमे परिषद के गर-सरकारी सदस्या का समर्थन किया गया था और सरकार का विरोध।

जैसा कि प्राय बुरे विधेयको के बारे मे होता है, इस विधेयक का मूल आशय नही इसकी शब्दावली ही लागो को अधिक अप्रिय जान पडी। अकाल तथा दूसरे कारणा से विवश होकर बम्बई प्रेसीडसी मे छोटे और बडे भूस्वामी समान रूप से बहुत अधिक सख्या म साहूकारो के हाथ अपनी जमीन बेच रहे थे। सभी ओर इस बात की जबरदस्त आलाचना हा रही थी कि किसाना की ऋणग्रस्तता चिताजनक तजी के साथ बढ रही है और इस बुराई को जल्दी ही न रोका गया तो किसान भूमिविहीन हा जाएगे और भूमिहीन श्रमिक वग बढ जाएगा। अत सरकार न भूमि के अतरण पर प्रतिबध लगाने क विचार स यह कदम उठाया। भूस्वामी किसान खडी फसले तो साहूकार के पास गिरवी रख सकता था परन्तु जमीन गिरवी नहीं रख सकता था। सरकार समझती थी कि इस उपाय स किसाना की ऋणग्रस्तता कम हा जाएगी। उन्हाने यह नही सोचा कि भूराजस्व का क्या हागा? भूस्वामी किसान अपनी जमीन गिरवी रख कर गाव के साहूकार से रुपया उधार लेकर उसस सरकारी देनदारिया चुकाया करत थे। उक्त अधिनियम द्वारा भूमि के अतरण पर प्रतिबध लगा दिए जाने पर किसान अपनी जमीन न बेच सकता था, न उस गिरवी रख सकता था, जिसका परिणाम होना था सरकार द्वारा भूमि का जब्त कर लिया जाना। जब्त कर ली जाने के बाद वह जमीन फिर उसी किसान को दी जा सकती थी, परन्तु यदि वह उसके अगले वर्ष सरकारी देनदारिया नहीं चुका पाए तो उस उस जमीन से बेदखल किया जा सकता था और इस तरह उसके भूमि-विहीन होकर नाकारा हो जान की सभावना थी।

उस ऋणग्रस्तता को दूर करने के लिए जो इलाज सुझाया गया, वह स्वयं रोग से भी बुरा था। जैसा कि गोखले ने कहा, सरकार को चाहिए था कि वह भूमि सुधार के लिए कदम उठाती और उपज बढ़ाने के उपाय सुझाती। वे किसानों को साहूकारों के चंगुल से छुड़ा सकते थे वे भूमि न्यास बैंक अथवा सहकारी ऋण समितियां अथवा कृषि बैंक स्थापित करके एक सीमा तक ऋणग्रस्तता को रोक सकते थे।

गोखले ने इस समस्या का पूरी तरह अध्ययन किया था और उनके तर्क काटे नहीं जा सकते थे। उनका सुझाव था कि वह छोटा सा कानून स्थगित कर दिया जाए और उस पूरे प्रश्न पर विस्तृत रूप से विचार किया जाए। सरकार के इस कथन से वह सहमत नहीं थे कि मुस्लिम शासन में किसान अधिक ऋणग्रस्त थे। उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया कि अंग्रेजी शासनकाल में निर्धनता और ऋणग्रस्तता में वृद्धि हुई है। उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया कि सरकार ने वह कदम उठाने में इतनी जल्दी दिखाई और उसके लिए सूचना देने की निर्धारित अवधि की भी उपेक्षा की गई। बम्बई सरकार और भारत मंत्री ने आग्रहपूर्वक कहा कि विधेयक के विरुद्ध होने वाला आन्दोलन साहूकारों के समर्थक कर रहे हैं। गोखले ने यह कहकर इस दुर्भावनापूर्ण अभियोग का खण्डन किया कि—"मैं अपनी पूरी शक्ति से काम लेकर इस विधेयक का विरोध करना अपना धर्म समझता हूं—इसलिए नहीं कि इससे साहूकारों को कुछ हानि पहुंचने की संभावना है, बल्कि इसलिए कि मेरा विश्वास है कि वह किसानों के हितों की दृष्टि से घातक सिद्ध होगा।

उक्त विधेयक के पास हो जाने में गोखले को एक खतरा और दिखाई दिया। उन्होंने कहा इस विधेयक का अर्थ यह है कि जब्त कर ली जाने वाली जमीनों का राष्ट्रीयकरण हो जाएगा और इससे इस प्रेसीडेंसी की भूमि व्यवस्था का स्वरूप ही पूर्णतया परिवर्तित हो जाएगा। उन्होंने यह रचनात्मक सुझाव दिया कि वह प्रयोग करके देखना ही है तो यह काम किसी छोटे इलाके में कर लिया जाए। सरकार को चाहिए कि साहूकारों के प्रति रैयतों की देनदारियां अपने ऊपर ले ले कृषि बैंक खोल दे और उसके बाद किसानों की भूमि के अन्तरण पर रोक लगाए।

तथ्यों का क्रम संयोजन करने, सरकारी तर्कों का खंडन करने अपना दृष्टिकोण प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने और रचनात्मक सुझाव

देन में गोखले की योग्यता शीघ्र ही प्रशंसा का विषय बन गई। परन्तु, गैर-सरकारी सदस्यों के विरोध के बावजूद सरकार ने वह विधेयक पास करा दिया। विरोध प्रदर्शन के लिए फिरोजशाह मेहता के नेतृत्व में गैर सरकारी सदस्य विधान परिषद से बाहर निकल आए। गोखले ने भी उनका साथ दिया। उन्होंने उस अवसर पर मेहता से कहा था—मैं अकेला रह कर ठीक काम करने की अपेक्षा आपके साथ रह कर गलत काम करना अधिक पसन्द करता हूं।

सदन त्याग से पहले उन्होंने एक छोटा सा वक्तव्य दिया— मैं बहुत अधिक संकोच और खेद के साथ यह कदम उठा रहा हूं। परमश्रेष्ठ, मेरा उद्देश्य न आपके प्रति अनादर भाव व्यक्त करना है और न व्यक्तिगत रूप से आपके किसी सहयोगी के प्रति। कर्तव्य को पराभूत कर देने वाली भावना मुझे यह कदम उठाने के लिए विवश कर रही है, क्योंकि मैं इस विधेयक के साथ नाममात्र के लिए भी सम्बद्ध होने का दायित्व अपने ऊपर लेने के लिए तैयार नहीं हूं और यदि मैं सदन में मौजूद रहूंगा तो वह दायित्व मुझ पर भी मान लिया जाएगा।

फिरोजशाह मेहता ने गोखले का यह वक्तव्य पसन्द नहीं किया। मेहता के कथनानुसार वह वक्तव्य अनावश्यक था और सरकार उसकी अधिकारिणी नहीं थी। वस्तुतः वह तो इस तरह के सदाचरण के सभी अधिकार खो बैठी थी। परन्तु गोखले का दृष्टिकोण इससे भिन्न था। उनका मंत्रवाक्य संभवतः यह था कि आरम्भ से अंत तक युद्ध करो और पराजित होने पर भी मैदान न छोडो। सहकारी ऋण बैंक और भूमि ग्राम बैंकों के बारे में गोखले ने जो सुझाव दिए थे वे इतने बुद्धिमत्तापूर्ण थे कि सरकार ने आगे चल कर उन्हें मान लिया। देर से ही सही यह उनकी विजय तो थी ही।

गोखले जिस अल्प अवधि में बम्बई विधान परिषद् के सदस्य रहे उस समय वैधानिक निहाई पर रखे जाने वाली तीसरी समस्या का संबंध डिस्ट्रिक्ट म्यूनिसिपल अधिनियम के संशोधन के साथ था। जिस समय वह विधेयक सदन में रखा गया उस समय गोखले परिषद् के सदस्य नहीं थे, परन्तु उक्त विधेयक के प्रवर समिति के सामने आने के समय वह चुने जा चुके थे और उस समिति में भी नियुक्त किए जा चुके थे। इन संगठनों में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत का दृढ़तापूर्वक विरोध

करते हुए, उन्होंने जो मार्ग अपनाया उसका उल्लेख समीचीन है। उनका कहना था कि यह सत्य होने पर भी कि देश के विभिन्न वर्गों में परस्पर अन्तर है, विधानांगों द्वारा उक्त अंतरों को मान्यता नहीं दी जानी चाहिए। उनके मतानुसार स्थानीय स्वशासन में ऐसी कोई वस्तु नहीं थी, जिसमें किसी एक वर्ग के साथ दूसरे वर्ग के हितों के टकराव का समावेश हो। फिर भी गोखले के तर्क निरर्थक ही सिद्ध हुए। साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र प्रथा ने देश में कानून का रूप ले लिया, जिसके आगे चल कर भयंकर परिणाम निकले। गोखले का वह बुद्धिमत्तापूर्ण सुझाव यदि केवल स्वशासी संस्थाओं के संबंध में ही नहीं, उनसे वृहत्तर संगठनों के संदर्भ में भी स्वीकार कर लिया जाता तो देश के लिए यह कितने अधिक सौभाग्य की बात होती।

गोखले एक असामान्य विधायक सिद्ध हुए, क्योंकि उनमें तीन असाधारण गुणों का मेल था। वे गुण थे—सूक्ष्म विश्लेपण, आनन्दप्रद अभिव्यक्ति और एक ऐसा ढंग, जो आत्मप्रदर्शन से सर्वथा मुक्त था। चालाकी से कोई बात मनवा लेने की कोशिश उन्होंने कभी नहीं की। उन्होंने जो कुछ कहा उस पर ईमानदारी की छाप बराबर लगी रही और वह पददलित जन समुदाय का हित साधन करने की अंतःप्रेरणा से उद्भूत रहा। उनके शब्द उनके हृदय की अनुभूतियों को ही वाणी प्रदान करते थे। नशाबंदी करने के लिए और अकाल पीड़ितों के हित साधन के लिए उन्होंने आग्रहपूर्वक जो कुछ कहा वह उनकी लोक-कल्याण कामना से ही उत्प्रेरित था। सरकार ने मादक पेयों की बिक्री की छूट दे दी थी। साधनहीन निर्धन व्यक्ति इस घातक बुराई के शिकार होते जा रहे थे। गोखले का वास्तव में यह विश्वास था कि निर्धनों का वह विनाश रोकने के लिए सरकार को पूर्ण नशाबंदी के सिद्धान्त का पालन करना चाहिए। वह 1897 में ही इंग्लण्ड में जब वह वेल्वी आयोग के सामने साक्ष्य देने गए थे एक मदिरा निषेध सम्मेलन में अपना यह विचार व्यक्त कर चुके थे। उन्होंने कहा था — मैं आरम्भ में ही यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैं व्यक्तिगत रूप से नशाबन्दी का समर्थक हूं और मेरा विश्वास है कि पूर्ण नशाबंदी वास्तव में भारतीय जनता की भावनाओं के अनुकूल है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी, उस समय तथा आगे चल कर नशाबन्दी का पक्षपोषण किया। यहां यह उल्लेख अप्रासंगिक नहीं है कि

गोखले, तिलक गाधीजी और अन्य अनेक महापुरुष नशाबन्दी के प्रबल पक्षपापक रहे है।

गोखले का कहना था कि इस मामले मे सरकार की निष्क्रियता का कारण यह था कि उसे मद्यपान स प्राप्त होन वाले राजस्व मे दिलचस्पी थी। यह कमी दूर करने के लिए उन्होन दो प्रत्यक्ष सुझाव रखे—एक तो यह कि राजस्व अधिकारियो को ही लाइसस देने वाले अधिकारी भी नही बनाया जाना चाहिए और दूसरे, लाइसेंसो की नीलामी का तरीका बन्द करा दिया जाना चाहिए। वह इस तर्क स सहमत नही थे कि मादक पेयो के दाम बढा देन से उनका उपयोग कम हो सकता है इसका परिणाम तो यही हो सकता था कि गरीबो की जेब से और भी अधिक रुपया निकल जाए।

जिन दिनो गोखले बम्बई विधान परिषद के सदस्य थे, उस समय वह फर्गुसन कालेज मे अध्यापन काय भी करते रहे। उन्होन 1902 मे सेवा निवृत्ति के समय ही दीर्घावकाश ग्रहण किया। परिषद की सदस्यता कालेज मे उनके काय के लिए बाधक न रही, उसने तो उन्हे कालेज के कायकलापो का विस्तार करने मे सहायता ही पहुचाई। दक्कन एजुकेशन सोसाइटी के कुछ आजीवन सदस्य विधानागो के सदस्य बने और यह सरणी आज तक विद्यमान है।

गोखले अपने कायकलापो को दो क्षेत्रो तक ही सीमित नही रख सकते थे। अन्य क्षेत्रो मे भी उनकी आवश्यकता थी। जनता विश्वविद्यालय और नगरपालिका—सभी को तो उनकी सेवाओ की अपेक्षा थी। समय बीतने और गोखले के सच्चे स्वरूप स अवगत हो जाने पर स्वय सरकार भी उन्हे अपने लिए अपरिहार्य मानने लगी। अवसर के अनुकूल वह अपने को उच्चतर बनाते रहे। सावजनिक जीवन मे व्यक्ति के चरित्र विकास मे कुछ ऐसी वस्तु होती है, जिसका प्रभाव बहुत अधिक होता है और गोखले ने जो कुछ भी किया उसमे उनकी लक्ष्य निष्ठा और उनके पावन चरित्र की छाप स्पष्ट रूप से अकित देखी जा सकती है।

11 इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल मे

जनवरी 1901 मे रानडे का देहावसान हो गया। गोखले मानो अनाथ हो गए क्योकि रानडे उनके लिए स्वामी-तुल्य ही नही, पितृतुल्य भी थे। उनके देहान्त की दुखद घटना के एक ही दिन पहले गोखले ने फिरोजशाह मेहता को एक पत्र लिख कर यह प्रार्थना की थी कि उन्हे सर्वोच्च विधान परिषद् मे भाग लेने का अवसर मिलना चाहिए। उन्होने कहा कि वह फर्गुसन कालेज से सेवानिवृत्त होने वाले है और वह अपना शेष जीवन भारत और इग्लण्ड मे राजनतिक काय म लगाना चाहते है। उनकी पत्नी का देहान्त हो चुका था। वह 125 रुपए मासिक की थोडी सी आय सुनिश्चित कर चुके थे और कालेज से उन्हे पेंशन के रूप मे 30 रुपए प्रतिमास मिलने की भी व्यवस्था था। उनकी उत्कष्ट आकाक्षा थी कि वह अपने को देश के लिए उपयोगी बना सकें। मेहता की प्रतिभा और उन्हे प्राप्त अद्वितीय स्थिति की सराहना करते हुए उन्होने लिखा था—"मै विनयपूर्वक आपको विश्वास दिलाना चाहता हू कि मै केवल व्यक्तिगत यश-लाभ के लिए उस प्रतिष्ठाजनक स्थिति का आकाक्षी नही हू।

1897 के तूफान और उसके बाद की घटनाओ ने उन्हे आहत कर दिया था और इस बात से तो उन्हे मर्मान्तिक पीडा हुई थी कि मचरजी भावनागरी ने हाउस ग्राफ कामन्स में उन्हे 'तिरस्कारणीय कूटसाक्षी' कह कर उनकी भर्त्सना की। गोखले ने लिखा—जिस रात मैंने यह पढा, उसी समय मैने यह सकल्प कर लिया कि मैं इग्लैंड मे उस राजनतिक काम को आगे बढाने में अपना जीवन लगा दूगा, जिसे अनजाने में ही मैने गभीर क्षति पहुचा दी है।

उस युवा साथी और सुयोग्य सहयोगी के इस पत्र ने मेहता को द्रवित कर दिया और उसका अभीष्ट परिणाम भी हुआ। उक्त परिषद् की सदस्यता के आकाक्षी कुछ और लोग भी थे, परन्तु मेहता ने उन्हें इस बात के लिए तैयार कर लिया कि वे गोखले का निर्विरोध वह गौरव

पद प्राप्त कर लेन दें। 1902 के प्रारम्भ म छत्तीस वप की अवस्था में गाखले सर्वोच्च विधान परिषद् क सदस्य बन गए। इसके पश्चात एक क बाद एक तीन अवसरा पर उन्हें इसी प्रकार सवसम्मति म परिषद क सदस्य चुन जाने का श्रेय प्राप्त हुआ।

सर्वोच्च विधान परिषद के सदस्य क रूप मे यह चुनाव गाखल क जीवन का एक महत्वपूण माड सिद्ध हुआ। इसमें सदह नहा कि उन्हान आगे चल कर जिस सर्वेन्टस आफ इण्डिया सासायटी की स्थापना की वह उनके लिए एक ऐसा सुदृढ गढ बन सकती थी जहा स वह अनक महत्वपूण लडाइया लड सक्त थे परन्तु यह एक विवादास्पद बात ह कि क्या वह उक्त सासायटी क माध्यम स उतनी सफलता पा सकत थे, जितनी उन्होंने परिषद क मच स प्राप्त की।

महाराष्ट्र में उन दिना तीन प्रकार के लोग थ। एक प्रकार क प्रतिनिधि रानडे थे जो अपार विद्वता मधा और लाक कल्याण भावना रखन पर भी न परिषद में ही चमक पाए न सावजनिक मच पर। दूसरे वग क प्रतिनिधि थे तिलक जिनका सम्पूण जीवन तथा काय लोगा क साथ घनिष्ट रूप स सम्बद्ध रहा परन्तु तब भी एक सफल समदविद बनना उनक भाग्य में नही लिखा था। इसके विपरीत गाखल न शासको पर किए जाने वाले प्रहारा क लिए सावजनिक मच का सहारा लेन की कोशिश कभी नही की। प्रकृति न आदश गुण प्रदान करक माना विधान सस्था क लिए ही उनका सजन किया था।

1902 स 1911 तक की अवधि मे गोखल न बजट क सम्बन्ध म ग्यारह और अन्य विषया क सम्बन्ध म छत्तीस महत्वपूण भाषण दिए। वे भाषण अलग अलग अवसरा पर अलग अलग विषयो पर दिए गए। वस ता उन्हान सदा ही प्रवीणता का पूण परिचय दिया, परन्तु वित्तीय जटिलताआ तथा देश की अथव्यवस्था पर बोलत समय ता उनका उत्कृष्टतम रूप व्यक्त हुआ। उन भाषणा का अब तो केवल ऐतिहासिक महत्व रह गया है परन्तु उस समय सामयिकता के नाते भी उनम लोगो की गहरी दिलचस्पी थी। गाखले न जनता मे वाह-वाह पाने क लिए कभी कुछ नहीं कहा। पूरी तयारी और ईमानदारी ने उनके भाषणो को स्थाई महत्व की मूल्यवान कृतिया बना दिया है।

गाखले ने जिन विषयो पर भाषण दिए उनम से कुछ ये—सरकारी

11 इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में

जनवरी 1901 में रानडे का देहावसान हो गया। गोखले मानो अनाथ हो गए क्योंकि रानडे उनके लिए स्वामी-तुल्य ही नहीं, पितृतुल्य भी थे। उनके देहान्त की दुखद घटना के एक ही दिन पहले गोखले ने फ़िरोजशाह मेहता को एक पत्र लिख कर यह प्रार्थना की थी कि उन्हें सर्वोच्च विधान परिषद में भाग लेने का अवसर मिलना चाहिए। उन्होंने कहा कि वह फर्ग्युसन कालेज से सेवानिवृत्त होने वाले हैं और वह अपना शेष जीवन भारत और इंग्लैण्ड में राजनैतिक कार्य में लगाना चाहते हैं। उनकी पत्नी का देहान्त हो चुका था। वह 125 रुपए मासिक की थोड़ी-सी आय सुनिश्चित कर चुके थे और कालेज से उन्हें पेंशन के रूप में 30 रुपए प्रतिमास मिलने की भी व्यवस्था थी। उनकी उत्कृष्ट आकांक्षा थी कि वह अपने को देश के लिए उपयोगी बना सकें। मेहता की प्रतिभा और उन्हें प्राप्त अद्वितीय स्थिति की सराहना करते हुए उन्होंने लिखा था—मैं विनयपूर्वक आपको विश्वास दिलाना चाहता हूं कि मैं केवल व्यक्तिगत यश-लाभ के लिए उस प्रतिष्ठाजनक स्थिति का आकांक्षी नहीं हूं।

1897 के तूफान और उसके बाद की घटनाओं ने उन्हें आहत कर दिया था और इस बात से तो उन्हें मर्मान्तक पीड़ा हुई थी कि मंचेरजी भावनागरी ने हाउस आफ कामन्स में उन्हें 'तिरस्कारणीय कूटसाक्षी' कह कर उनकी भर्त्सना की। गोखले ने लिखा—जिस रात मैंने यह पढ़ा, उसी समय मैंने यह संकल्प कर लिया कि मैं इंग्लैण्ड में उस राजनैतिक काम को आगे बढ़ाने में अपना जीवन लगा दूंगा, जिसे अनजाने में ही मैंने गंभीर क्षति पहुंचा दी है।

उस युवा साथी और सुयोग्य सहयोगी के इस पत्र ने मेहता को द्रवित कर दिया और उसका अभीष्ट परिणाम भी हुआ। उक्त परिषद् की सदस्यता के आकांक्षी कुछ और लोग भी थे, परन्तु मेहता ने उन्हें इस बात के लिए तैयार कर लिया कि वे गोखले का निर्विरोध वह गौरव

पद प्राप्त कर लेन दे। 1902 के आरम्भ मे छत्तीस वप की अवस्था में गोखले सर्वोच्च विधान परिपद् क सदस्य बन गए। इसके पश्चात एक के बाद एक तीन अवसरा पर उन्हे इसी प्रकार सवसम्मति स परिपद के सदस्य चुन जाने का श्रेय प्राप्त हुआ।

सर्वोच्च विधान परिपद् के सदस्य के रूप मे यह चुनाव गोखले के जीवन का एक महत्वपूण मोड सिद्ध हुआ। इसमें सदेह नहा कि उहान आगे चल कर जिस सर्वेन्टस आफ इण्डिया सासायटी की स्थापना की वह उनके लिए एक ऐसा सुदृढ गढ बन सकती थी, जहा म वह अनक महत्वपूण लडाइया लड सक्त थे, परन्तु यह एक विवादास्पद बात है कि क्या वह उक्त सोसायटी के माध्यम से उतनी सफलता पा सक्त थे, जितनी उन्हान परिषद् के मच स प्राप्त की।

महाराष्ट्र मे उन दिना तीन प्रकार क लोग थे। एक प्रकार क प्रतिनिधि रानडे थे जो अपार विद्वता, मेधा और लोक कल्याण भावना रखन पर भा, न परिषद् में ही चमक पाए न सावजनिक मच पर। दूसरे वग क प्रतिनिधि थे तिलक, जिनका सम्पूण जीवन तथा काय लोगा के साथ घनिष्ट रूप स सम्बद्ध रहा परन्तु तब भी एक सफल समदविज्ञ बनना उनक भाग्य में नही लिखा था। इसके विपरीत, गाखल न शासको पर किए जान वाले प्रहारो क लिए सावजनिक मच का सहारा लेन की काशिश कभी नही की। प्रकृति न आदश गुण प्रदान करके माना विधान सदना क लिए ही उनका सृजन किया था।

1902 स 1911 तक की अवधि मे गोखले न बजट क सम्बन्ध मे ग्यारह और अन्य विषया के सम्बध में छत्तीस महत्वपूण भाषण दिए। वे भाषण अलग-अलग अवसरो पर अलग अलग विषयो पर दिए गए। वस तो उन्होन सदा ही प्रवीणता का पूण परिचय दिया, परन्तु वित्तीय जटिलताओ तथा देश की अथव्यवस्था पर बोलते समय ता उनका उत्कृष्टतम रूप व्यक्त हुआ। उन भाषणा का अब तो कवल ऐतिहासिक महत्व रह गया है परन्तु उस समय सामयिकता के नाते भी उनमे लोगो की गहरी दिलचस्पी थी। गाखले न जनता मे वाह वाह पान क लिए कभी कुछ नही कहा। पूरी तैयारी और ईमानदारी ने उनके भाषणो को स्थाई महत्व की मूल्यवान कृतिया बना दिया है।

गोखले न जिन विषयो पर भाषण दिए उनमे से कुछ थे—सरकारी

गापनीय बात अधिनियम, भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम, महत्त्वारा ऋण समिनिया अधिनियम राजद्राहात्मक सभाए अधिनियम, प्रेस विधेयक, ऋण मे कमी अथवा उसस बचाव रेला की वित्त व्यवस्था, सरकारी व्यय मे वद्धि सूता वस्त्र उत्पादन शुल्क, चीनी पर आयात शुल्क, नाक सवाए आय का करयोग्य निम्नतम रकम, सिविल विवाह विधयक करारबद्ध श्रमिक नई दिल्ली निमाण व्यय, अधिशेष और भारक्षित निधियां स्वण मुद्रा और प्राथमिक शिक्षा विधेयक। ये भाषण उनक अथक अध्ययन उदार दृष्टिकोण और ऐसी प्रत्येक वस्तु क प्रति उनकी स्थायी रुचि क प्रत्यक्ष प्रमाण ह जिसस देश क हित साधन में सहायता मिल सकती थी।

बजट के सम्बध म दिए गए अपन भाषणा मे उन्होंने जिन प्रसगा पर विशेष रूप स प्रकाश डाला वे थे नमक शुल्क, सनिक व्यय, मुद्रा अधिशेष सवाओं का भारतीयकरण और कराधान।

उनक भाषणा की प्रधान टेक यह थी कि भारत का उत्तरदायी शासन नहा दिया जा रहा हैं इस देश क वासियां को मूल अधिकारा स वचित रखा जा रहा है उन्ह न्याय उचित आचरण, नागरिक स्वाधीनता स वचित किया जा रहा है और भारत को आर्थिक तथा औद्योगिक प्रगति का अवसर नही दिया जा रहा है। उनका विचार था कि अग्रज पदाधिकारी उद्धत ह और उनका एकमात्र उद्देश्य है स्वय अपन देश क लाभ के लिए निर्धन भारत का शोषण। इसका परिणाम यह है कि देश निर्बल हो गया है और यहा के लोगा में कायरता और दासता पदा हो गई है। कोई भी सभ्य सरकार अपनी जनता को अशिक्षित, अथवा साक्षरता के मूल अधिकार से वचित नही रख सकती। भारत की आत्मा की हानि हो रही है उसक आत्मसम्मान को क्षति हो रही है और उसकी औद्योगिक दक्षता का क्षय हो रहा है तथा भारतीयो का क्रीतदासों के स्तर तक गिराया जा रहा है।

शासन तत्र के विरुद्ध युद्ध करत समय गोखल न वधानिक माग अपनाया। उनका प्रयास यह था कि तथ्यों तथा तर्कों को अपनी बात का आधार बनाया जाए और समझा-बुझा कर उन लोगा क विचार बदले जाए जिनका कुछ महत्व है। अग्रेजो की न्यायप्रियता और समुचित आचरणशीलता के प्रति उनकी अपनी निष्ठा इतनी अधिक थी कि वह

यह मानने के लिए तैयार नहीं थे कि भारत में अंग्रेज अधिकारियों को सुधार सकना संभव नहीं है। उन्होंने एक भगीरथ कार्य का बीड़ा उठाया था और दृढ़संकल्प अध्यवसाय तथा अविभक्त निष्ठापूर्वक वह कार्य किया भी। गोखले असाधारण आशावादी थे। भर्त्सना उन्हें हतोत्साह नहीं कर सकती थी लालच उन्हें पथभ्रष्ट नहीं कर सकता था प्रशंसा उन्हें कमजोर नहीं कर सकती थी।

भारत के बजट के बारे में दिया गया गोखले का प्रथम भाषण अपनी व्यापक दूरदर्शिता तथा तथ्यगत प्रवीणता दोनों के नाते उल्लेखनीय रहा। उसने एक ओर कराधान के बढ़ते हुए चक्र के कारण होने वाले अन्याय पर और दूसरी ओर लोगों की बढ़ती हुई गरीबी के बारे में उनकी जबदस्त चिन्ता पर प्रकाश डाला। लार्ड कर्जन की सरकार आत्म-तुष्ट थी, क्योंकि उस समय बजट में अधिशेष रहता था। गोखले ने यह स्पष्ट कर दिया कि वे अधिशेष आभासमात्र थे वास्तविक नहीं। पौण्डों में रुपए का विनिमय मूल्य 1894–95 में 13 1 पेंस था। 1895–96 में यह मूल्य 13 6 पेंस था, 1896–97 में 14 4 पेंस, 1897–98 में 15 3 पेंस। 1898–99 में यह मूल्य 16 पेंस पर स्थिर हो गया। गोखले ने कहा रुपए का विनिमय—मूल्य 13 पेंस से बढ़ कर 16 पेंस हो जाने अर्थात् इस प्रकार होने वाली 3 पेंस की वृद्धि का अर्थ है भारत सरकार को केवल गृह प्रभारों के मामले में ही चार-पांच करोड़ रुपये की बचत और मैं समझता हूं कि अकेला यह तथ्य ही पिछले चार-पांच वर्षों के अत्यधिक अधिशेषों की व्याख्या कर देने के लिए पर्याप्त है।

उन्होंने यह स्पष्ट कर दिखाया कि बजट के अधिशेषों के नाते जमा रकम सरकार को मिलती नहीं है केवल रुपये का मूल्य वृद्धि हो गई है। यह सब कहने में गोखले का उद्देश्य यह बताना था कि अधिशेष रहने पर भी सरकार अतिरिक्त कर लगा रही है। और उनका प्रयोग लोगों की दशा सुधारने के लिए न करके उन अधिशेषों की रकमों का दुरुपयोग किया जा रहा है।

अगले वर्ष बजट के अवसर पर अपने भाषण में यही प्रसंग फिर उठाते हुए गोखले ने कहा कि 1898 और 1903 के बीच सरकार को अधिशेषों में 22 करोड़ रुपये की बचत हुई है, परन्तु उसने उसी अवधि

में चालू राजस्व में से 11 करोड़ रुपये असाधारण प्रभारों पर खर्च किए हैं। गोखले का कहना था कि अधिशेष 33 करोड़ रुपए रहना चाहिए था। क्योंकि सरकार का यह सौभाग्य था कि उस अधिशेष प्राप्त थे। अतः गोखले का कथन था कि नमक शुल्क कम कर दिया जाए, आयकर से छूट की सीमा 500 से बढ़ा कर 1 000 रुपये कर दी जाए और सूती वस्त्र उत्पादन शुल्क समाप्त कर दिया जाए। उस वर्ष के बजट में नमक शुल्क तथा कुछ अन्य में कमी की भी गई, परन्तु सूती वस्त्र उत्पादन शुल्क में कोई फेरबदल नहीं हुआ। इन रियायतों के लिए वैसे तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा कुछ अन्य लोग भी दबाव डाल रहे थे, परन्तु उक्त तीन बातों में से यदि दो के विषय में सरकार झुक गई तो इसका श्रेय असंदिग्ध रूप से गोखले द्वारा उसके लिए किए जाने वाले सशक्त पक्षपोषण को ही दिया जाना चाहिए।

जहां तक सूती वस्त्र उत्पादन शुल्क का सम्बन्ध है भारत सरकार तो वास्तव में अंग्रेजी हितों की एक एजेंट मात्र थी। मैंचेस्टर और लंकाशायर के शेष भाग के सूती वस्त्र उद्योग के हित साधन के लिए उसने निर्बन्ध व्यापार नीति का समर्थन किया। इस पर भी भारतीय सूती वस्त्र कुछ बातों में बेहतर था। उस अच्छाई को समाप्त कर देने के विचार से सरकार ने सूती वस्त्र पर उत्पादन शुल्क लगा दिया और इस तरह वह इंग्लण्ड के सूती वस्त्र उद्योग को इस देश के उद्योग की समान स्थिति पर ले आई। भारतीय सूती वस्त्र उद्योग उस समय अपनी शैशवावस्था में ही था और उस समय किसी भी जनप्रिय सरकार का यही धर्म था कि वह उस नवोदित उद्योग की सहायता के लिए संरक्षणात्मक शुल्क लगा दे। उन दिनों भारत इंग्लण्ड में अनाज भेजता था। ब्रिटिश सरकार ने अनाज के अपने स्थानीय उत्पादन पर कोई उत्पादन शुल्क नहीं लगाया। अतः स्पष्टतः यह अन्याय की ही बात थी परन्तु इसके लिए अपील किससे की जाती?

गोखले ने 1903 के बजट भाषण में अन्य महत्वपूर्ण प्रसंगों उदाहरणार्थ, अत्यधिक सैनिक व्यय सिविल सेवाओं में भेदभाव और प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा का भी उल्लेख किया। अधिशेष की रकमें बढ़ते हुए सैनिक व्यय पर खर्च कर दी जाती थी। गोखले ने कहा भारतीय वित्त व्यवस्था में वास्तव में सैनिक दृष्टिकोण मुख्य रहता है और सरकार उस समय तक समुचित स्तर पर लोगों के भौतिक विकास अथवा नैतिक उत्पादन की दिशा में कोई सुव्यवस्थित अथवा शक्तिशाली कदम नहीं उठा सकती, जब तक हमारे राजस्व का विनियोजन सैनिक कामों के लिए वर्तमान स्तर पर जारी रहने की सम्भावना बनी है।

सरकार फिर भी यही प्रकट करने के लिए उत्कठित थी कि अंग्रेजी शासन के अधीन भारत आर्थिक दृष्टि से उन्नति कर रहा है। इस दावे का खण्डन करते समय तो गोखले का उत्कृष्टतम पक्ष सामने आया। उन्होंने तर्कपूर्ण ढग से यह स्पष्ट कर दिखाया कि भारत सरकार प्रत्येक बालक की शिक्षा पर केवल 8 पैसे खर्च कर रही है जबकि इंग्लैण्ड में प्रत्येक बालक पर 60 पैसे खर्च किए जाते है।

गोखले निरुत्तर कर देने वाले तर्क के प्रभाव को पूरी तरह मानते थे। वह जो रहस्योद्घाटन करते थे उससे लोग सामान्यत उलझन में पड़ जाते थे। सरकार को भी यह आभास हो गया था कि उसकी प्रतिष्ठा दिनादिन कम होती जा रही है। प्रतिवादी व्यक्ति यह प्रश्न कर सकता था— अगला कदम क्या हो? परन्तु गोखले सरकार के नैतिक दावा का खण्डन करके सन्तुष्ट थे। उन्होंने सीधी कारवाई या सरकार की अवज्ञा का प्रचार नहीं किया, सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा के प्रचार का काम आगे चल कर गोखले के शिष्य महात्मा गांधी ने अपने हाथ में लिया।

1904 के बजट मे गोखले को समीक्षात्मक विश्लेषण की अपनी असाधारण शक्तियों का प्रयोग कर दिखाने का बहुत कम अवसर मिला। उस वर्ष के बजट में 6 72 करोड रुपये का उल्लेखनीय अधिशेष दिखाया गया था, जिनमें से 2 65 करोड रुपये प्रांतीय सरकारों को विशेष अनुदान के रूप में दिए गए। भारतीय वित्त व्यवस्था के इतिहास में इतना अधिक [illegible] था। अत गोखले ने छह वर्ष की उस अवधि से पहले के समय [illegible] किया जब बजट सम्बन्धी स्थिति में सुधार हो गया था। पहले [illegible] वर्षों में [illegible] कर साढे सत्रह करोड रुपये का अधिशेष रहा था [illegible] करोड [illegible] का घाटा। परन्तु विगत छह वर्षों में 29 [illegible] हो। [illegible] वतन स्पष्टत विनिमय दर मे होने वाले [illegible] था। [illegible] मूल्य 13 पैसे से बढ कर 18 पैसे हो [illegible] में किए जाने वाले भुगतानों मे लगभग 5 [illegible] थी। [illegible] के कारण मिलने वाला राजस्व भी बढ [illegible] रुपये हो गया था। इस तरह 190 [illegible] में बचे थे और साढे तीन करोड [illegible] गया था। इसका कुल जोड [illegible] [illegible] मक शुल्क मे प्रति मन 8 आने [illegible]

कमी के कारण, कुल मिला कर लगभग दो करोड़ रुपये की कमी हो गई थी। फिर भी साढ़े छह करोड़ रुपये का अधिशेष रहा।

गोखले ने सरकार का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट किया कि रुपये का मूल्य वृद्धि के कारण उपभोग्य वस्तुओं की कीमतें बढ़ रही हैं। गोखले ने पिछले वर्ष की माग दोहराते हुए कहा कि सूती वस्त्र पर से उत्पादन शुल्क हटा दिया जाए और नमक शुल्क में प्रति मन 8 आने और कमी की जाए। उस वर्ष उन्होंने नई माग यह की कि बम्बई, मद्रास और उत्तर पश्चिम प्रान्त के भू-राजस्व में कमी की जाए। उन्होंने इस बात पर प्रकाश डाला कि भू-राजस्व उन लोगों के लिए किस तरह और अधिक सकट का कारण बन रहा है, जो पहले ही अकाल और अन्नाभाव के कारण पीड़ित है। अनिवार्य वस्तुओं की कीमतें लगातार बढ़ने से यह अनुमान लगाया जा सकता था कि उन वस्तुओं का उपयोग बढ़ रहा है, परन्तु यह भ्रम ही था। वास्तविक बात सम्भवतः यह थी कि कीमतें उन वस्तुओं की रसद कम होने के कारण बढ़ रही थी। एक बात और भी बढ़ रही थी। गोखले ने बताया कि इस बात का स्पष्ट प्रमाण प्राप्त है कि मद्यपान रूपी अभिशाप बराबर बढ़ता जा रहा है इसका प्रचार निम्न वर्गों और बर्बर आदिम जातियों में तो और भी अधिक हो रहा है, जो उनके विनाश और विपत्तियों का कारण बन रहा है। उनके मतानुसार इस रोग का इलाज था पूर्ण मद्यनिषेध। उस बजट भाषण में उन्होंने आयात तथा निर्यात नीति के उस प्रसग का भी उल्लेख किया, जिस पर उन्होंने परवर्ती वर्षों में और अधिक ध्यान दिया।

1905 में वाइसराय तो वही रहा, परन्तु वित्त विषयक सदस्य बदल गया था, क्योंकि एडवर्ड ला का स्थान एडवर्ड बेकर ने ले लिया था। उस वर्ष भी अधिशेष रहा। नए वित्त सदस्य ने अपने वित्तीय विवरण में सिद्धांतों की पकड़ और ब्यौरों की जिस पारगतता का परिचय दिया था गोखले ने उसके कारण उसकी बहुत सराहना की। गोखले ने उन्हें सूचित किया कि जनसाधारण को सरकार के इस फैसले पर सतोष है कि पौने चार करोड़ रुपए की उस अतिरिक्त आय का प्रयोग कर विषयक छूट देने प्रशासनिक सुधार करने तथा लोगों की सामान्य दशा सुधारने के लिए किया जाएगा। नमक शुल्क में 8 आना प्रति मन और कमी कर दी गई। गोखले तो वैसे इससे अधिक कमी कराना चाहते थे परन्तु इस कमी से भी वह असन्तुष्ट नहीं हुए। उस वर्ष सरकार ने अकाल सम्बन्धी उपकर लेना बंद कर दिया डाक दरों में कमी कर दी और

कम वेतन वाले पुलिस कर्मचारियो को अधिक वतन दिया। 35 लाख रुपये की रकम प्राथमिक शिक्षा और कृषि अनुसधान पर और अधिक खर्च करने के लिए, प्रातीय सरकारो का अनुदान के रूप मे दे दी गई। जिलो के स्थानीय मण्डलो को भी बीस लाख रुपए के अनुदान दिए गए।

अपने भाषण मे गोखले ने स्पष्ट कर दिया कि पिछले सात वर्षों में रुपये ढालने के कारण होने वाले साढे बारह करोड रुपये के लाभ के अतिरिक्त सरकार को अधिशेषो के रूप मे साढे बत्तीस करोड रुपये से अधिक की प्राप्ति हुई है। सरकार ने वह रकम एक स्वर्ण आरक्षित निधि की स्थापना के लिए अलग रख दी थी। गोखले का इस प्रकार की निधि की स्थापना मे तो कोई आपत्ति नही थी, परन्तु सैनिक अथवा अन्य खर्चो मे होने वाली वृद्धि उन्हें किसी प्रकार सह्य नहीं थी। उन्हे इस बात मे भी आपत्ति थी कि अधिशेषो की वह रकम उस ऋण की अदायगी के काम मे लाई जाए जो वर्ष मे औसत लगभग पाच करोड रुपए होता था। उनका कहना यह था कि उन अधिशेषो का प्रयोग लोगो के कल्याण के लिए किया जाना चाहिए ऋण मोचन के लिए नही। अपने इस तर्क का आधार उन्होने इस सिद्धान्त को बनाया कि चालू वर्ष के राजस्व का प्रयोग अनावर्ती व्ययो के लिए नही किया जाना चाहिए।

उन दिनो की सरकार ने राष्ट्रीय विकास से भिन्न कामो के लिए भी ऋण ले लिए थे। इन ऋणो का प्रधान कारण भारत मे तथा उससे बाहर किए जाने वाले सैनिक कार्यकलाप थे। इस दृष्टि से गोखले की आपत्ति सर्वथा उचित थी। परन्तु यह कहानी यही समाप्त नही होती। सरकार ने उस वर्ष के बजट मे 3 करोड 66 लाख रुपए के खर्च की व्यवस्था सेना के पुनर्गठन के लिए की थी। आगे के वर्षों में सेना के पुनर्गठन पर प्रति वर्ष 3 करोड रुपए खर्च होने की योजना थी। इस व्यय को अनावश्यक और अनुचित ठहराते समय गोखले अपने उत्कृष्टतम रूप में सामने आए। सरकार इस देश में अपना शासन सुदृढ करने के लिए सेना पर ही निर्भर थी। अत वह उसे यथासम्भव ज्यादा शक्तिशाली और अभेद्य बना लेना चाहती थी। अपने भाषण में गोखले ने यह संकेत भी दिया कि कुछ प्रातो में सरकार ने भू राजस्व इतना अधिक बढा दिया है कि यह लोगो के लिए असहनीय हो गया है।

अगला बजट पेश होने के समय वजन जा चुके थे और मिंटो इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के अध्यक्ष थे। 1906 के बजट में भी अधिशेष रहा। गोखले ने लोगों की दशा सुधारने के लिए सरकार को अनेक उपयोगी सुझाव दिए।

स्वयं वित्त सदस्य नमक शुल्क में कमी करने के पक्ष में हो गया और इस प्रकार वह गोखले की उस माग का समर्थक बन गया जो गोखले वर्षों से करते चले आ रहे थे। गोखले चाहते थे कि नमक शुल्क में और कमी करके उसे एक रुपया प्रति मन रहने दिया जाए, जैसा कि बर्मा में किया गया था। सरकार ने भूमि पर लगे कुछ उपकर और प्रान्तीय कामों के लिए जिला तथा स्थानीय मडलों की निधियों में से किए जाने वाले कुछ बटन भी बन्द कर दिए थे। गोखले ने सरकार को बता दिया कि लोग सरकार की इस उदारता से प्रसन्न हैं परन्तु वह इस पर रुके नहीं। वह जिला तथा स्थानीय मडलों के लिए और धन की माग बराबर करते रहे। इन मडलों को भू-राजस्व में से उपकर के रूप में प्रति रुपया एक आना मिलता था। परन्तु यह भी कोई निश्चित आय नहीं थी क्योंकि अकाल अथवा अन्य कारणों से भू-राजस्व में छूट दी जाने या उसे स्थगित कर दी जाने की स्थिति में जिला तथा स्थानीय मडलों को मामूली हिस्से से भी हाथ धोना पड़ जाता था। गोखले ने सुझाव दिया कि ऐसे अवसरों पर सरकार को चाहिए कि वह इस प्रकार होने वाली हानि की रकम अनुदानों के रूप में दे दे।

गोखले का एक और सुझाव स्वर्ण आरक्षित निधि के उपयोग के बारे में था। संचित वापिकी में उसके 2½ प्रतिशत पर निवेश करके और फिर उसी समय 3 प्रतिशत पर ऋण के रूप में ले लेने के बदले वह निधि उन कृषकों को क्यों न सुलभ कर दी जाए जो अधिक ब्याज दे सकते हैं?

गोखले ने एक बार फिर सैन्य पुनर्गठन योजना का उल्लेख किया। रूस का खतरा अब नहीं रहा था और आग्ल-जापानी गठबंधन पर हस्ताक्षर किए जा चुके थे। युद्ध का खतरा दूर हो चुका था और मध्य पूर्व, सुदूर पूर्व तथा स्वदेश में सभी मोर्चों पर पूर्ण शांति थी। अतः गोखले का यह प्रश्न पूर्णतः तर्कसंगत था कि अब भी आप सैन्य पुनर्गठन की योजना जारी रखना और उस पर तीन करोड़ रुपये खर्च करना क्या

चाहते हैं? और फिर यदि वह योजना पूरी की ही जानी है तो उस पर होने वाले खर्च का कुछ भार इंग्लैंड भी क्यों न उठाए? गोखले ने यद्यपि सम्पूर्ण सैन्य नीति की आलोचना इतने अधिकारपूर्वक की कि उस ओर गम्भीर रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए था, परन्तु उनका वह कथन अरण्यरोदन मात्र ही सिद्ध हुआ। सैन्य नीति के सम्बन्ध में उन्हें सबसे जबरदस्त आपत्ति यह थी कि सरकार भारतीय जनता पर विश्वास नहीं करती थी। किसी न किसी कारण पूरे के पूरे इलाके सैनिक सेवा से वंचित कर दिए गए थे और इस तरह लोगों में असंतोष पैदा हो गया था।

वेल्बी आयोग के सामने दिए गए अपने साक्ष्य में गोखले ने रेलों के निर्माण के बारे में सरकारी नीति की कड़ी आलोचना की थी। 1906 के बजट पर बोलते समय उन्होंने अपनी वह पुरानी शिकायत दोहराई। उन्होंने कहा—पिछले आठ वर्षों में सरकार को अधिशेषों के रूप में कम से कम 35 करोड रुपये मिले हैं और सरकार ने रेल निर्माण के लिए विशेष रूप से उधार ली गई रकमों के अतिरिक्त, वह सारा रुपया रेलों पर खर्च कर दिया है। गोखले ने यह उल्लेख किया कि ऐसे कामों के लिए रुपये की आवश्यकता है जिनका लोगों के कल्याण पर मूलभूत प्रभाव पडता है। उन्होंने प्रश्न किया—क्या रेलें ही सब कुछ हैं जन शिक्षा कुछ नहीं? सफाई की बेहतर व्यवस्था निरर्थक है?

उन्होंने अनेक सुझाव दिए—भूमि की सरकारी माँग में कमी, भूमि सुधार, कृषि विषयक ऋणग्रस्तता दूर करना, सिंचाई और वैज्ञानिक ढंग से खेती, औद्योगिक तथा तकनीकी शिक्षा का विस्तार, [illegible] शिक्षा और सफाई व्यवस्था में सुधार।

शिक्षा के क्षेत्र से राजनीति में प्रविष्टि [illegible] लिया—विशेषत प्राथमिक शिक्षा में उनकी अत्यधिक [illegible]। सरकार ने 1901 02 में प्राथमिक शिक्षा पर कुल मात्र [illegible] खर्च किए थे जबकि भारत भर के प्राथमिक विद्यालयों [illegible] तीस लाख रुपये मिले थे। गोखले ने [illegible] प्राथमिक शिक्षा तक के स्तर पर इस तरह की पूरी [illegible] नहीं [illegible] जा सकती।

अपने भाषण के अन्त में गोखले ने सरकार से दो बातों के लिए आग्रह किया—लोगों की दशा में सुधार और शिक्षित वर्गों का विरोध शमन।

1907 में गोखले को यह देखकर सन्तोष हुआ कि वह नमक शुल्क को घटाकर एक रुपया प्रति मन कर देने की, जो माग बराबर कर रहे थे, वह अन्ततोगत्वा मान ली गई है। इस सम्बन्ध में दिखाई जाने वाली अभद्रता उन्हें पसन्द नहीं थी। वित्त सदस्य ने अपने भाषण में कहा था कि नमक शुल्क सरकारी खर्च में निर्धन व्यक्तियों का एकमात्र अंशदान है। गोखले ने स्पष्ट कर दिया कि यह कथन ठीक नहीं है। भूराजस्व, मद्यपान से होने वाली आय, सूती माल पर उत्पादन शुल्क, स्टाम्प और रजिस्ट्री शुल्क और वन विषयक वसूलियां—ये सब शुल्क निर्धन व्यक्ति सरकार को देते हैं। केवल आयकर का भार निर्धनों को नहीं उठाना पड़ता।

अपने बजट भाषण में गोखले ने यह सुझाव दिया था कि रेलों के आय-व्यय का पूरा हिसाब अलग से दिखाया जाना चाहिए, केवल उनसे होने वाला लाभ ही नहीं। यह सुझाव मान लिया गया। गोखले यह भी चाहते थे कि सिंचाई कार्यों का हिसाब अलग से दिखाया जाए। ऐसा नहीं किया गया। गोखले अधिशेषों की रकम ऋण मोचन अथवा रेल निर्माण पर खर्च करने पर कभी सहमत नहीं हो सकते थे। उन्होंने सरकार को बता दिया था कि अनुत्पादक ऋण इतना कम था कि उसके लिए चिन्ता व्यर्थ थी। उस वर्ष के बजट का प्रधान प्रश्न था टकसाल से होने वाले लाभों का निपटान। सरकार ने इस सम्बन्ध में कोई निश्चय नहीं किया था। 1906 में वित्त सदस्य ने कहा था कि कभी न कभी रुपया को पौंड में परिवर्तित करना होगा। गोखले चाहते थे कि सरकार यह स्पष्ट घोषणा कर दे कि इस सम्बन्ध में उसका इरादा क्या है।

उस बजट में कुछ बातें ऐसी थीं, जिनका गोखले ने स्वागत किया। इनमें से एक थी सैन्य पुनर्गठन योजना पर होने वाले खर्च में 75 लाख रुपये की कमी, दूसरी थी अफीम के व्यापार की समाप्ति और तीसरी बात थी निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा के बारे में की गई घोषणा। सैनिक व्यय में कमी करके तो मानो गोखले की एक पुरानी माग ही पूरी कर दी गई थी। जहां तक अफीम से होने वाली प्राप्तियों का सम्बन्ध था,

गोखले का समग्रत इस विचार स हैं, घणा थी कि भारत च.न वाला के उपभाग क लिए ऐसी नशील, वस्तु का उत्पादन कर। उन्हान कहा— इस स्रोत स होने वाल राजस्व के स्मरणमात्र स मैं सदा हीं, अत्यन्त हीनता की भावना का अनुभव करता रहा हू क्याकि हमें यह आय वस्तुत चीनवासिया के पतन और नैतिक विनाश द्वारा ह, प्राप्त होत, है। इग्लैंड और भारत की सरकार दाना की आत्मा कभी-कभी, उन्हें इसके कारण कचोटन लगी थी। गोखले सरकार का यह समझान म समथ हा गए कि प्राथमिक शिक्षा पर और अधिक खच किया जाना चाहिए।

1908 के बजट अनुमाना मे भी अधिशेष दिखाया गया, यद्यपि वह अधिक नहीं था। नमक शुल्क म पहल ही काफी कमी का जा चुकी थ.। हा, उस वष की अथव्यवस्था को एक बात ऐस, अवश्य थी जिसने सरकार का मस्तिष्क इतना अधिक उद्वेलित कर दिया कि उस उसके लिए एक जाच समिति की स्थापना की आवश्यकता स्व.कार करनी पडी। कीमत बढ रही थी और जमा कि बहुत स लागो का विचार था सरकार उन्हें रोकने के लिए केवल दिखावटी कदम उठा रह, थी। गोखले ने मुद्रा नाति तथा आयात और निर्यात सम्बन्धी स्थिति सहित देश क, सम्पूण आर्थिक स्थिति का सिंहावलोकन किया। उनका विचार था कि कीमता में होने वाली सामान्य वद्धि आकस्मिक मुद्राधिक्य का अनिवाय परिणाम थ.। उन्होंने यह बात स्वीकार नहीं की कि व्यापार का विस्तार होने के कारण अतिरिक्त मुद्रा आवश्यक है। उन्होंने अपने इस कथन की पुष्टि में बहुत स आकडे प्रस्तुत किए कि जब-जब प्रचलित मुद्रा बढी है तब-तब कीमता मे वृद्धि हुई ह। परन्तु हानि इतनी ही नहीं रहती। निर्यात में कमी हा जाती है और आयात बढ जात ह। उनक कथनानुसार इसका एक और प्रभाव यह होता है कि जितना भी सोना सामान्यत मुद्रा क रूप मे प्रचलित होता है, वह देश स निकल जाता है। उत्पादन व्यय भी बढ जाता ह और स्वदेशी उद्योग विदेशी उद्योग के साथ प्रतियोगिता नहीं कर पात।

अगला वष अर्थात 1909 महत्वपूण परिवतनो का वष रहा। जान पडता था कि अधिशेष वाल बजटो का युग समाप्त हो रहा था। वह पुराने सविधान का भी अन्तिम वष था। 1910 स मिंटामार्ले सुधार लागू हो जाने थे।

गोखले का विचार था कि यद्यपि वित्त सदस्य गाइ फ्लीटवुड विलसन ने बजट में कुछ अधिशेष ही दिखाया है, पर वास्तव में वह वर्ष अत्यधिक घाटे का वर्ष ही है। वित्त सदस्य ने राजस्व के जो अनुमान लगाए थे वे अनिश्चित थे, क्योंकि वे अनुकूल वर्षा पर निर्भर थे। गोखले के विचार में वित्त सदस्य ने आशावादी दृष्टिकोण अपनाया था। उनका विचार था कि उस वर्ष साढे पांच करोड रुपये अर्थात उस समय तक अधिकतम रकम का घाटा होने वाला है। गोखले ने इस अभियोग का खण्डन किया कि वह घाटा छूटों का परिणाम है। यह सच है कि नमक शुल्क 2 रुपये 8 आने से घटा कर एक रुपया प्रति मन कर दिया गया था आयकर की सीमा 500 से बढ़ाकर 1,000 रुपये कर दी गई थी और कुछ क्षेत्रों में अकाल विषयक उपकर हटा दिए गए थे, परन्तु इन सभी छूटों के कारण कुल मिलाकर लगभग 40 लाख रुपयों की ही राहत दी गई थी। अतः यह बात सरलता से स्वीकार नहीं की जा सकती थी कि बजट में होने वाले घाटे उक्त राहतों के कारण हैं। गोखले ने इस घाटे का तथा कीमतों में होने वाली वृद्धि का अधिक सुसंगत निदान प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि सरकार ने चार वर्ष की अवधि के बाद सैन्य पुनर्गठन योजना पर होने वाला खर्च तो बंद कर दिया है, परन्तु वह इस सम्बन्ध में होने वाले स्थायी खर्च में पहले ही 15 लाख पौण्ड की वृद्धि कर चुकी है। जहां तक कीमतों की बात है वे तो तीन परिवर्तनशील तत्वों—मुद्रा, मांग और रसद—का फल होती हैं और मुद्रा बढने के कारण कीमतों में होने वाली वृद्धि को शेष दोनों में से किसी एक अथवा दोनों कारकों की सहायता से ठीक किया जा सकता है।

एक मजबूत आरक्षित निधि की स्थापना के बारे में गोखले ने कहा—जान पड़ता है कि इस सम्बन्ध में हमारे सामने एक धर्मसंकट उपस्थित है। यदि टकसालों में, इस समय की तरह, काम बंद रखा जाता है और नए रुपए नहीं ढाले जाते तो सिक्का ढलाई के कारण होने वाला लाभ समाप्त हो जाएगा और इस तरह स्वर्ण आरक्षित निधि में कोई वृद्धि न हो पाएगी। यदि नए रुपए ढाले जाते हैं तो मुझे इस बात की पूरी आशंका है कि कीमतें और भी बढ़ जाएंगी। परिणाम यह होगा कि आयात अधिक होने लगेंगे और निर्यात कम और इस तरह हमारे व्यापार सन्तुलन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। इस जटिल समस्या के

समाधान के लिए गोखले ने [illegible] हुए यह सुझाव दिया कि नए दावें डालना बन्द कर दिया जाए और उधार बन्द खाते के सिरे डाल जाए।

बजट के प्रस्तावों पर दिए गए अपने भाषणों में गोखले ने अपने को प्रायः राष्ट्रीय जीवन के आर्थिक पक्ष तक ही सीमित रखा। परन्तु 1909 में उन्होंने राजनीतिक मामलों का भी उल्लेख किया। पिछले दिसम्बर में दो बंगाली सज्जनों को 1818 के विनियम के अधीन निर्वासित कर दिया गया था। उन्होंने सरकार से अनुरोध किया कि वह उन्हें छोड़ दे। उन्होंने उस सुधार विधेयक का भी उल्लेख किया, जो उस समय तैयार किया जा रहा था। उसका सबसे अधिक विवादास्पद अंग यह था जिसमें मुसलमानों को विशेष प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था थी। इस सम्बन्ध में गोखले ने अपने विचार उस गोपनीय पत्र में व्यक्त कर दिए थे जो उन्होंने भारत मंत्री के नाम लिखा था। उन्होंने यह सुझाव दिया था कि कम से कम एक उल्लेखनीय संख्या में सदस्यों का चुनाव प्रादेशिक आधार पर कराया जाए, जिसमें मतदान करने के सभी अधिकारी व्यक्ति जाति अथवा सम्प्रदायगत भेदभाव के बिना समान रूप से भाग लें। इसके अतिरिक्त उन अल्पसंख्यकों के लिए अनुपूरक निर्वाचन कराए जाएँ जो संख्या की दृष्टि से अथवा किसी और कारण से इतने महत्वपूर्ण हों कि उन्हें विशेष प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता हो। ये अनुपूरक निर्वाचन केवल उन अल्पसंख्यकों तक ही सीमित कर दिए जाएँ।

अल्पसंख्यकों और प्रान्तों के लिए सदस्य संख्या का निर्धारण सम्बद्ध प्रान्तों की विशेष परिस्थितियों के आधार पर किया जाना था। भारत सरकार ने अपने पत्र में यह योजना सुझाई थी और गोखले इससे सहमत थे। उन्होंने कहा कि इस योजना की सबसे बड़ी खूबी यह थी कि इसमें एक सीमा तक सभी जातियों के संयुक्त कार्य की व्यवस्था थी और अल्पसंख्यकों को उनके अपने निर्वाचन क्षेत्र सुलभ करके उनके प्रति व्यवहारतः हो सकने वाले अन्याय पर रोक लगा दी गई थी। गोखले मानते थे कि हमारा लक्ष्य सभी जातियों की एकता है। फिर भी, उन्होंने अल्पसंख्यकों के मन में उठ सकने वाले संदेहों के निवारण के विचार से अनुपूरक निर्वाचनों के विचार को उपयुक्त समझा।

सुधारों के बारे में इंग्लैण्ड में वार्ता करने के बाद जब गोखले

वहा से भारत लौटे तो उन्हे पता चला कि मुसलमान इसलिए उन सुधारो के विरोधी हो गए थे कि उन्हें लन्दन मे हुए एक 'हिन्दू षडयन्त्र' का परिणाम समझा जा रहा था। गोखले का नाम उस 'षडयन्त्र' के साथ जोड दिया गया था। गोखले ने एक वक्तव्य द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि उन्होने केवल भारत सरकार के विचार का समर्थन किया है और कुछ नही किया।

1909 के बजट मे जिस बात की आशका मात्र थी, वह उससे अगले वर्ष के बजट मे सत्य हो गई। राजस्व के स्रोत अनिश्चित हो गए और खर्च बढ गया। गोखले ने उस अवसर पर पिछले तीस वर्ष की इस देश की बजट विषयक स्थिति का सिंहावलोकन किया। 1898 से 1907 तक की अवधि मे गृह प्रभार विषयक प्रेषणा में होने वाली बचतो, अफीम से मिलने वाले राजस्व में वृद्धि, देश के सामान्य राजस्व मे विस्तार और रेलो से होने वाली आय मे वृद्धि के कारण बजटो मे अधिशेष रहे थे। लोगो को दी जाने वाली छूटें नगण्य थीं। दूसरी ओर, सैनिक तथा असैनिक व्यय सभी सीमाए लाघ कर चिंता का विषय बन गया था। गोखले ने सुझाव दिया कि घाटा कम करने के लिए छटनी कर दी जाए। उन्होने इस बात पर जोर दिया कि खर्च कम करने के लिए जब तक कठोर कदम नही उठाए जाएगे तब तक भविष्य अधकारमय रहेगा। उन्होंने सरकार को चेतावनी दे दी कि अफीम विषयक आय में उल्लेखनीय कमी हो गई है और अन्ततोगत्वा यह आमदनी सर्वथा समाप्त हो जाएगी।

1911 मे गोखले बजट के अवसर पर सदा की भाति व्यापक-विस्तृत रीति से नहीं बोल पाए, क्योकि उन्हे इसके लिए केवल बीस मिनट का समय दिया गया था। उन्हें केवल दो प्रश्नो—बर्मा की वित्त व्यवस्था और प्रातो तथा इम्पीरियल कौंसिल के बीच के वित्तीय सम्बन्धो का उल्लेख करके ही सतुष्ट रहना पडा। बर्मा विषयक प्रश्न का हमारे प्रस्तुत विवेचन से सम्बन्ध नही है। बर्मा उस समय भारत का ही एक प्रात था। उन दिनो प्रातो का अस्तित्व तो नाममात्र के लिए था। उन्हे कोई वास्तविक अधिकार प्राप्त नही थे। प्रातो और केन्द्रीय सरकार के बीच सघर्ष बना रहता था। केन्द्रीय सरकार को कर लगाने का अधिकार था, प्रात इस अधिकार से वचित थे। स्वय केन्द्रीय सरकार भी

उनके उक्त भाषण का एक अंश इस प्रकार है—श्रीमन, शोक से पराभूत होकर और इस नगर की अनवरत श्री-समृद्धि के लिए मनुज सम्भव प्रत्येक शुभकामना की हार्दिक अभिव्यक्ति करते हुए हम इस नगर से विदा हो रहे हैं। हमें दृढ़ विश्वास है कि महान अतीत वाले इस महानगर का भविष्य उससे भी महत्तर होगा।

इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में गोखले ने जो एतिहासिक कार्य किया, उसके समुचित सुफल के रूप में उन्हें विरोध पक्ष के नेता की गौरवमयी उपाधि की उपलब्धि हुई।

उनके उक्त भाषण का एक अंश इस प्रकार है—श्रीमन् शोक से पराभूत होकर और इस नगर की अनवरत श्री-समृद्धि के लिए मनुज सम्भव प्रत्येक शुभकामना की हार्दिक अभिव्यक्ति करते हुए हम इस नगर से विदा हो रहे हैं। हमें दृढ़ विश्वास है कि महान अतीत वाले इस महानगर का भविष्य उससे भी महत्तर होगा।

इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में गोखले ने जो ऐतिहासिक कार्य किया, उसके समुचित सुफल के रूप में उन्हें 'विरोध पक्ष के नेता' की गौरवमयी उपाधि की उपलब्धि हुई।

उसका विरोध नहीं किया। उन्होंने सरकार से कहा कि उसकी अवधि तीन वर्ष तक सीमित कर दी जाए। उन्होंने कहा कि राजद्रोह के कारण दण्ड देने के लिए दण्ड संहिता ही काफी है और राजद्रोह को कुचलने के लिए सरकार के शस्त्रागार मे अन्य साधन भी सुलभ हैं। उन्होंने आगे कहा—हमारे समाचारपत्र प्रगति का एक प्रधान साधन रहे हैं। उन्होंने हमारी राष्ट्रीय चेतना को तीव्र किया है, देश मे न्याय और समानता के विचारों का प्रचार किया है, हमारी लोक भावना प्रबुद्ध की है और हमें सार्वजनिक कर्तव्य निभाने के उच्चतर प्रतिमान स्थापित करने के लिए प्रेरित किया है। अत समाचारपत्रों को अपना लक्ष्य बनाने वाला यह विधेयक अवांछनीय था।

गोखले ने प्रेस विधेयक के विरुद्ध मत नहीं दिया। फिरोजशाह मेहता उनसे इस कारण नाराज हो गए कि उन्होंने समाचारपत्रों का पक्षपोषण नहीं किया। परन्तु गोखले ने जो किया उसके पीछे एक ऐसी अन्तर्कथा छिपी है जो हमें सी० वाई० चिंतामणि से प्राप्त हुई है और जिसका समर्थन एस०पी० सिन्हा ने किया जिससे इस घटना पर प्रकाश पडता है।

1910 के क्रिसमस में गोखले कांग्रेस के उस अधिवेशन मे भाग लेने के लिए इलाहाबाद गए थे जिसकी अध्यक्षता विलियम वेडरबर्न ने की। चिंतामणि अपने पत्र 'लीडर' में प्रेस विधेयक पर जबरदस्त प्रहार कर चुके थे और उन्होंने गोखले से पूछा कि उन्होंने उक्त विधेयक का विरोध क्यों नहीं किया। गोखले ने कारण बता दिया और सी० वाई० चिंतामणि ने दोनों के बीच हुई वार्ता स्मृति के आधार पर अपने मित्रों के नाम भेजे गए पत्र में लिख दी।

उस समय गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद के सदस्य एस० पी० सिन्हा उक्त परिषद मे शामिल किए जाने वाले सर्वप्रथम भारतीय थे। उक्त सदस्यता को उस समय बहुत बडी बात और आगे की ओर बहुत बडा कदम समझा गया था। सिन्हा को विधि का विभाग सौंपा गया था, जो एक महत्वपूर्ण विभाग था। विधि सदस्य होने के नाते उनके सामने अपनी पसन्द और नापसन्द, दोनों प्रकार के विभिन्न विधेयक, परिषद में प्रस्तुत करने के लिए आते थे। इस तरह उनका नाम जिन विधेयकों के साथ जुड गया, प्रेस विधेयक उनमें से एक सर्वाधिक अप्रिय विधेयक रहा। सरकारी कर्मचारियों ने मूल रूप मे उस विधेयक का जो

प्रातीय सरकारे भी इसके विरुद्ध है। उन्होने कहा—एक अर्थ में समाचार पत्र भी सरकार की भांति, लोकहित के रक्षक होते हैं और किसी दमनात्मक कानून की सहायता से समाचारपत्रों की स्वाधीनता में बाधा डालने के किसी भी प्रयास का कुप्रभाव इन हितों पर पड़ना अनिवार्य है और इससे अन्ततोगत्वा स्वय सरकार की स्थिति पर भी असर हुए बिना नही रह सकता। यह तो वास्तव में समाचार पत्रों की स्वाधीनता पर प्रतिबन्ध लगा देने का प्रयास था।

नवम्बर 1907 में सरकार ने प्रवर समिति की वह रिपोर्ट पेश की, जिसमें ऐसी सभाओ पर रोक लगाने की अधिक अच्छी व्यवस्था की गई, जिनसे राजद्रोह की भावना फैलने या लोगो की सुख शांति में बाधा उत्पन्न होने की सभावना हो। विभाजन के फलस्वरूप बगाल तथा अन्य स्थानो पर होने वाली घटनाओ के कारण सरकार घबरा-सी गई थी और वह असामान्य अधिकारो द्वारा अपने हाथ मजबूत कर लेना चाहती थी। गोखले ने उस विधेयक का विरोध किया। उन्होने कहा कि उक्त रोग का इलाज मेल मिलाप है, दमन नही। सरकार उनके इन बुद्धिमत्ता पूर्ण शब्दो पर ध्यान देने के लिए तैयार नही थी। यह एक भयानक विधेयक है और इसके सुधार का एकमात्र उपाय यह है कि इसका परित्याग कर दिया जाए—भारत मे भी यह उसी प्रकार असफल सिद्ध होगा जैसे विश्व मे और सभी जगह हुआ है। अपने भाषण में गोखले ने बगालियो की अधिकतम सराहना की। उन्हें इस तरह बलपूर्वक कभी दबाया नही जा सकेगा अनेक बातो में सम्पूर्ण भारत में बगाली सबसे अधिक उल्लेखनीय लोग हैं। फिर भी परिषद में सरकारी सदस्यो की सख्या अधिक होने के कारण वह विधेयक पास हो ही गया।

1910 और 1911 में सरकार ने उक्त अधिनियम की अवधि बढाने के लिए विधेयक रखे। गोखले ने हर बार उनका विरोध किया। उनका तर्क था कि स्थिति बदल चुकी है और सुधारो के कारण यह और भी अच्छी हो जाएगी, अत इस अधिनियम के लिए आग्रह ठीक नही। उनके ये भाषण उन जैसे देशभक्त के सर्वथा अनुरूप थे परन्तु वे भैंस के आगे बीन बजाने जैसे ही सिद्ध हुए।

प्रेस विधेयक सुधारो के अन्तर्गत आने वाला पहला विधेयक था। गोखले ने उसे प्रस्तुत किए जाने पर खेद तो व्यक्त किया परन्तु

गोखले ने प्रेस विधेयक के विरुद्ध मत नहीं दिया। स्वभावतः महता उनसे इस कारण नाराज हो गए कि उन्होंने समाचारपत्रों का पक्षपोषण नहीं किया। परन्तु गोखले ने जो किया उसके पीछे एक ऐसी अन्तर्कथा छिपी है जो हमें सी० वाई० चिन्तामणि से प्राप्त हुई है और जिसका समर्थन एन० पी० सिन्हा ने किया जिससे इस घटना पर प्रकाश पड़ता है।

1910 के दिसम्बर में गोखले कांग्रेस के उस अधिवेशन में भाग लेने के लिए इलाहाबाद आए थे जिसकी अध्यक्षता विलियम वेडरबर्न ने की। चिन्तामणि अपने पत्र लीडर में प्रेस विधेयक पर जबरदस्त प्रहार कर चुके थे और उन्होंने गोखले से पूछा कि उन्होंने उक्त विधेयक का विरोध क्यों नहीं किया। गोखले ने कारण बता दिया और सी० वाई० चिन्तामणि ने दोनों के बीच हुई वार्ता, स्मृति के आधार पर अपने मित्रों के नाम भेजे गए पत्र में लिख दी।

उस समय गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद् के सदस्य एस० पी० सिन्हा उक्त परिषद् में शामिल किए जाने वाले सर्वप्रथम भारतीय थे। उक्त सदस्यता को उस समय बहुत बड़ी बात और आगे की ओर बहुत बड़ा कदम समझा गया था। सिन्हा को विधि का विभाग सौंपा गया था जो एक महत्वपूर्ण विभाग था। विधि सदस्य होने के नाते उनके सामने अपनी पसन्द और नापसन्द, दोनों प्रकार के विभिन्न विधेयक परिषद में प्रस्तुत करने के लिए आते थे। इस तरह उनका नाम जिन विधेयकों के साथ जुड़ गया, प्रेस विधेयक उनमें से एक सर्वाधिक अप्रिय विधेयक रहा। सरकारी पदाधिकारियों ने पूरे रूप में उस विधेयक का आ

मसौदा तैयार किया वह इतना कड़ा था कि उसके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ना सिन्हा की आत्मा ने स्वीकार नहीं किया। उनके विरोध के बावजूद सपरिषद गवर्नर जनरल ने उस पक्ष में मत का फैसला किया। श्री सिन्हा ने वायसराय मिंटो से कह दिया कि वह भारत मंत्री के पास तार द्वारा उनका त्यागपत्र भिजवा दें। मिंटो उलझन में पड़ गए और उन्होंने अपने निजी सचिव से कहा कि वह ऐसा कोई समझौता करा दें जिससे सिन्हा अपना त्यागपत्र वापस ले लें। उन्होंने अपने निजी सचिव को यह भी बता दिया कि माननीय गोपाल कृष्ण गोखले और लारेंस जेंकिन्स ही ऐसे दो व्यक्ति हैं जो उस स्थिति को सम्भाल सकते हैं अतः सचिव को चाहिए कि वह उनसे मिलें, सम्बद्ध कागजपत्र उनके सामने रखें और उनसे प्रार्थना करें कि वे इस सम्बन्ध में उसकी सहायता करें।

उधर मिंटो को यह डर था कि यदि कार्यकारी परिषद में नियुक्त किए जाने वाले सर्वप्रथम भारतीय ने एक वर्ष के भीतर ही त्यागपत्र दे दिया तो इससे इंग्लैण्ड में लोकमत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और इसके लिए उन्हें ही उत्तरदायी ठहराया जाएगा। अतः वह इस बात पर तुले थे कि विधेयक में कुछ ऐसा फेर-बदल कर दिया जाए जिससे वह अप्रिय स्थिति टल जाए। उन्होंने मार्ले को त्यागपत्र की सूचना दे दी और उन्हें यह भी बता दिया कि यदि वह त्यागपत्र वापस न लिया गया तो किसी और भारतीय को कार्यकारी परिषद में नियुक्त करने के विचार को कार्य रूप देने में भारत मंत्री को पचास वर्ष का समय भी लग सकता है।

गोखले और लारेंस जेंकिन्स में से किसी ने भी उस समय तक सिन्हा को त्यागपत्र वापस ले लेने का परामर्श देना स्वीकार न किया जब तक विधेयक में उल्लेखनीय संशोधन न हो जाए। वाइसराय इसके लिए सहमत हो गए। गोखले और सिन्हा संशोधनों पर विचार करने लगे। मूल विधेयक केवल भारतीय समाचारपत्रों पर लागू होना था संशोधन में इसे आंग्ल भारतीय पत्रों पर भी लागू कर दिया गया। मूल में यह व्यवस्था थी कि इस समय प्रचारित सभी समाचारपत्रों से जमानत मांगी जाए संशोधन द्वारा यह प्रस्ताव किया गया कि विधेयक जिस दिन पास हो उस दिन विद्यमान प्रेसों अथवा समाचारपत्रों से कोई जमानत न मांगी जाए। हां यदि वे बाद में ऐसा कुछ काम करें, जिससे विधेयक के किसी उपबन्ध के भागी बन जाएं तो उनसे जमानत मांगी जा

सकती है। मूल विधेयक में किसी तरह की राहत की व्यवस्था थी ही नहीं, संशोधन में अपील के अंतिम स्तर के रूप में समाचारपत्रों के लिए उच्च न्यायालयों के दरवाजे खोल दिए गए थे। विधेयक में किए जाने वाले ये निम्नतम सुधार थे।

गवर्नर जनरल इस शर्त पर उक्त वार्ता के फलस्वरूप कही जाने वाली कोई भी बात मानने को तैयार थे कि सिन्हा त्यागपत्र वापस लेने को तैयार हो जाए। सपरिषद् गवर्नर जनरल ने उन संशोधनों पर विचार किया। सदस्य कुपित हो गए परन्तु वाइसराय ने उक्त संशोधन मान लिए जाने पर बहुत जोर दिया। सदस्यों के सामने हार मान लेने के अतिरिक्त कोई और विकल्प न रहा और विधेयक पेश कर दिया गया।

जब विधेयक पेश किया गया तो (लार्ड) सिन्हा ने एक नई शर्त और लगा दी। शर्त यह थी कि उस विधेयक के समर्थन में गोखले उनका साथ देंगे। गोखले ने यह स्वीकार न किया और कहा कि वह तो एक निर्वाचित और गैर-सरकारी सदस्य हैं, अतः उनकी स्थिति कार्यकारी परिषद् के किसी सदस्य से सर्वथा भिन्न है।

वैसे तो सिन्हा को विधेयक की संशोधित धाराओं से कोई आपत्ति नहीं रही थी फिर भी वह यही अनुभव करते रहे कि इस तरह के विधेयक को सिद्धांततः भी मान कर वह कुछ अनुचित काम कर रहे हैं। अतः किसी और व्यक्ति के नैतिक समर्थन के बिना वह ऐसा कैसे कर सकते थे? गोखले ने उनकी बात मानना स्वीकार नहीं किया। गोखले ने सिन्हा को यह बात समझाने का प्रयास किया कि वाइसराय द्वारा इतना अनुग्रह किया जा चुकने के बाद उनके लिए त्यागपत्र देने की बात सोचना उचित नहीं है। इस पर सिन्हा ने कहा कि वे तटस्थ रहेंगे। गोखले ने उन्हें समझाया कि कार्यकारी परिषद का कोई सदस्य ऐसा नहीं कर सकता। अतः उन्हें चाहिए कि विधेयक का समर्थन करें और त्यागपत्र देने का विचार छोड़ दें। सिन्हा इसके लिए तैयार न हुए। गोखले ने एक और उपाय खोज निकाला। उन्होंने यह मान लिया कि वह उस विधेयक का न विरोध करेंगे न उसके विरुद्ध मत देंगे। प्रवर समिति अथवा परिषद् में उक्त विधेयक के सम्बन्ध में संशोधन पेश करने का अधिकार गोखले ने बनाए रखा। सिन्हा इससे संतुष्ट हो गए।

अब हम गोखले के व्यक्तित्व के एक महत्वपूर्ण पक्ष, देश के उत्थान

के साधन के रूप मे शिक्षा की शक्ति पर उनके विश्वास की चर्चा करेंगे। दिसम्बर 1903 मे जब विश्वविद्यालय विधेयक पेश किया गया उस समय माना गोखले का शिक्षाविद रूप प्रवृद्ध हो उठा। वह संशोधनात्मक विधेयक पेश करने में सरकार का विचार यह था कि विश्वविद्यालय और कालेज राजद्रोहात्मक गतिविधियो के अड्डे बन गए हैं अत उन पर पूर्ण नियन्त्रण आवश्यक है। शिक्षित वर्गों में असन्तोष बढता जा रहा था। ऊची-ऊची उपाधिया पा लेने वाले भारतीयो को भी विदेश से बुलाए जाने वाले यूरोपियनो के समान पद अथवा वेतन नही मिल पा रहे थे। अनेक सुयोग्य व्यक्तियो को रोजगार तक नही मिल पा रहे थे। ऐसे दुर्भाग्यशाली व्यक्ति भी कम नही थे, जो परीक्षाओ में उत्तीर्ण नहीं हो सके थे। इस प्रकार शिक्षित लोगो मे सर्वत्र असन्तोष का बोलबाला था। परिणाम यह हुआ कि उनमे से कुछ के मन में क्रान्तिकारी विचार उभरने लगे थे और इसीलिए सरकार चिन्ताग्रस्त होकर कठोर उपायो द्वारा विश्वविद्यालयो को अपने नियंत्रण में ले आने के लिए आतुर थी। विश्वविद्यालयो तथा कालेजो की सिंडीकेटो और सेनेटो को सरकारी रूप दिए जाने की योजना थी।

गोखले ने विधेयक का विरोध किया और उसके बारे में होने वाले वादविवाद मे विभिन्न अवसरो पर 6 भाषण दिए। उक्त विधेयक मे सवैधानिक पक्षो पर उन्होने पाच आपत्तिया उठाइ। उक्त विधेयक का आशय था वर्तमान सेनटो को बिल्कुल समाप्त कर देना और नई सेनेटो को नामजद करने में उनकी कोई आवाज बाकी न रहने देना। एक अन्य आपत्ति यह थी कि उस विधेयक में प्रोफेसरो द्वारा निर्वाचन के लिए कोई व्यवस्था नही थी। सेनटो का आकार बहुत छोटा कर दिया गया था। इसके अतिरिक्त, निर्वाचित सदस्यो की सख्या कम और सरकार द्वारा नामजद व्यक्तियो की सख्या बहुत अधिक कर दी गई थी। अन्तिम बात यह कि सदस्यो का कार्य काल पाच वर्ष कर दिया गया था। गोखले ने कहा कि उक्त अधिनियम का परिणाम यह होगा कि विश्वविद्यालयो की प्रबंध व्यवस्था से भारतीयो का सम्बन्ध विच्छेद हो जाएगा और पूरा प्रबन्ध यूरोपियन प्रोफेसरो के हाथ मे आ जाएगा। सरकार यही चाहती भी थी।

जबरदस्त विरोध के बावजूद विधेयक पास हो गया। विभिन्न

विश्वविद्यालयो के कुलपतियो ने अधिनियम के परिपालन के लिए अपेक्षित विज्ञप्तिया जारी कर दी। वे विज्ञप्तिया अवैध थी परतु सरकार ने उन्हें वैध बनाने के लिए एक विधेयक पेश किया। गोखले ने उस नए विधेयक का भी विरोध किया। उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया कि सरकार न्यायालय के अधिकारो और शक्तियो मे भी हस्तक्षेप करने लगी है। उन्होने सदाशयता और औचित्य का ही आग्रह किया था, परन्तु वह निष्फल रहा। गोखले और उन जैसे अन्य व्यक्तियो को यह देख कर बहुत खेद हुआ कि जिस सरकार की उदारता पर उन्हें विश्वास था वही शासिता पर अपना प्रभुत्व सुदृढ करने के लिए इस तरह के प्रतिगामी उपायो से काम लेने लगी है।

18 मार्च 1910 को गोखले ने इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल मे यह प्रस्ताव रखा—यह परिषद सिफारिश करती है कि पूरे देश मे प्राथमिक शिक्षा नि शुल्क और अनिवार्य बनाने की दिशा में अब कार्यारम्भ कर दिया जाना चाहिए और इस सम्बन्ध मे निश्चित सुझाव देने के लिए शीघ्र ही सरकारी और गैर-सरकारी सदस्यो का एक संयुक्त आयोग नियुक्त कर दिया जाना चाहिए। यह प्रस्ताव रखते समय गोखले ने एक जोरदार भाषण दिया जो अनुभूतिप्रवणता और तथ्य तथा तर्क संयोजन की दृष्टि से बहुत ही प्रभावपूर्ण था। उन्होने घोषणा की कि सरकार को चाहिए कि अन्य सभ्य देशो का अनुकरण करके लोगो को साक्षर बनाने का अपना दायित्व पूरा करे। उन्होने विश्व के प्रधान देशो के प्राथमिक शिक्षा के इतिहास का सिंहावलोकन करते हुए सरकार को सलाह दी कि उस जापानी ढग अपनाना चाहिए। उन्होने वे आकडे उद्धत किए जिनसे प्रकट होता था कि भारत मे शिक्षा के क्षेत्र मे कितनी लापरवाही है। उन्होने बताया कि पच्चीस वर्ष की अवधि मे प्राथमिक स्कूलो मे जाने वालो की संख्या का अनुपात केवल 1 2 प्रतिशत से बढ कर 1 9 प्रतिशत हुआ है। उक्त अवधि मे सार्वजनिक निधियो (प्रातीय म्यूनिसिपल और स्थानीय) मे से प्राथमिक शिक्षण पर किए जाने वाले व्यय मे केवल 57 लाख रुपए की वृद्धि हुई। 1910 मे इस नाम पर 93 लाख रुपए खर्च हुए। उसी अवधि मे भू राजस्व म 9 करोड रुपये की वृद्धि हुई और सैनिक व्यय 19 करोड से बढ कर 32 करोड रुपये तक जा पहुचा।

स्थिति में सुधार करने के लिए गोखले ने अनेक रचनात्मक सुझाव भी दिए। उन्होंने कहा कि स्कूल जाने वाले बच्चों का प्रतिशत चौगुना होना अनिवार्य है अत शिक्षा पर होने वाला व्यय भी चौगुना हो जाना चाहिए। गोखले ने सुझाव दिया कि इस खर्च का दो तिहाई भाग सरकार दे और बाकी स्थानीय निकाय वहन करें। इस तरह सरकार को केवल $2\frac{2}{3}$ करोड़ रुपए और खर्च करना होगा। गोखले ने कहा कि यह वृद्धि यदि बीस वर्ष में भी पूरी कर दी गई तो भी उन्हें संतोष होगा।

गोखले ने दूसरे सुझाव यह दिए कि 6 और 10 वर्ष के बीच की उम्र वाले लड़कों के लिए शिक्षा अनिवार्य कर दी जाए। अनिवार्यता का यह सिद्धांत उन इलाकों में लागू किया जाए जहां पुरुषों की जनसंख्या का 33 प्रतिशत भाग स्कूलों में जाता हो, व्यावहारिक कठिनाइयों के आधार पर लड़कियों को अनिवार्य शिक्षा से छूट दे दी जाए, जहां अनिवार्य शिक्षा लागू की जाए वहां वह निःशुल्क दी जाए और इस तरह होने वाला अतिरिक्त खर्च 2 और 1 के अनुपात में सरकार और स्थानीय निकाय आपस में बांट लें, गृह विभाग में एक अलग शिक्षा सचिव नियुक्त किया जाए और अंतिम बात यह कि हर साल काम की प्रगति के विवरण प्रकाशित किए जाएं। गोखले ने वे स्रोत भी बता दिए जहां से वह अतिरिक्त खर्च पूरा किया जा सकता था।

गोखले ने सरकार द्वारा यह भरोसा दिलाए जाने पर अपना यह प्रस्ताव वापस ले लिया कि सरकार इस प्रश्न पर बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार करेगी। परंतु वचन पूरा किए जाने के कोई संकेत दिखाई न पड़ने पर गोखले ने 16 मार्च, 1911 को एक और विधेयक रखा जिसमें करीब-करीब पिछले साल वाले प्रस्ताव ही दोहराए गए थे। अनिवार्य शिक्षा के अपने सुझाव का समर्थन करने के लिए गोखले ने ग्लैडस्टन के शब्द उद्धृत किए। ग्लैडस्टन ने कहा था—मैं समझता हूं देश के लिए यह कलंक और लज्जा की बात है कि जैसा कि हम समझते हैं, अपनी उन्नत सभ्यता के बीच और असन्दिग्ध रूप से हमारी अभूत धन-सम्पन्नता के बावजूद हम इस समय अनिवार्यता के सिद्धान्त पर विचार करने के लिए विवश होना पड़े।

अनिवार्यता के बिना अगर इंग्लैण्ड का काम नहीं चल सका तो भारत जैसे पिछड़े हुए देश में कैसे चल सकता था? भारत में प्राथमिक

शिक्षा के क्षेत्र मे

वष से भी अधिक ममय से स्वेच्छा के आधार पर प्राथमिक शिक्षा दी जाती रही थी परतु उसमे उससे कोई उल्लेखनीय प्रगति नही हो पाई। प्रत्येक 8 बच्चो मे से 7 अब भी निरक्षर थे प्रत्येक 5 गावो में 4 में अब भी कोई स्कूल न था।

गोखले समझते थे कि इस काम मे सरकार के सामने क्या व्यावहारिक कठिनाइया आएगी। अत इस अनिवायता को उन्होने उक्त परिस्थितियो में यथासम्भव स्वीकाय बनाने का प्रयत्न किया। उनका आग्रह ता यह था कि सरकार सिद्धात रूप से अनिवायता का सिद्धात स्वीकार कर ले। उस महामानव के शब्दो मे इस प्रकार उन लागो को प्रकाश की एक किरण, परिष्कार क एक स्पश और आशा की एक झलक की उपलब्धि हो जाएगी जिन्हे इन सभी वस्तुओ की बहुत अधिक आवश्यकता है। अपना भाषण उन्होने अग्रेजी का जो पद्याश कह कर ममाप्त किया, उसका हिंदी रूपातर है।

क्षितिज के पार क्या है, उसे देखने को म नही कहता हू
बढा हुआ एक कदम ही मेरे लिए काफी है।

गोखले ऐसे व्यक्ति नही थे, जो सरकार की ओर मे, यहा तक कि कुछ गैर-सरकारी सदस्यो की ओर से, विरोध किए जाने पर अपने लक्ष्य से विमुख हो जाते। 18 माच 1912 का उन्होंने यही प्रसग फिर उठाया और यह प्रस्ताव किया कि उक्त विधेयक एक प्रवर समिति को सौंप दिया जाए। गोखले ने वकील के तक कौशल, प्रोफेसर की शैक्षिक गरिमा और देशभक्त की लगन के साथ अपन मन्तव्य की स्थापना की, परन्तु उस वभव का देख पाने वाले नेत्र वहा कहा थे। विधेयक को परिषद् के सामन रख कर और उस पर विचारारम्भ करके ही गोखले ने अपने कतव्य की इतिश्री नही मान ली। उन्होने मद्रास और इलाहाबाद म सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसायटी के माध्यम से एलिमटरी एजूकेशन लीग की स्थापना करके अपनी लक्ष्य सिद्धि के लिए देश मे आदोलन जारी रखा।

आइए अब एक और प्रसग पर ध्यान दें। 27 फरवरी 1912 का गोखले न इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौसिल में एक प्रस्ताव रखा, जिसमे जिला मनाहकार परिषदो की स्थापना की सिफारिश की गई

स्थिति में सुधार करने के लिए गोखले ने अनेक रचनात्मक सुझाव भी दिए। उन्होंने कहा कि स्कूल जाने वाले बच्चों का प्रतिशत चौगुना होना अनिवार्य है, अतः शिक्षा पर होने वाला व्यय भी चौगुना हो जाना चाहिए। गोखले ने सुझाव दिया कि इस खर्च का दो तिहाई भाग सरकार दे और बाकी स्थानीय निकाय वहन करे। इस तरह सरकार को केवल $2\frac{2}{3}$ करोड़ रुपए और खर्च करना होगा। गोखले ने कहा कि यह वृद्धि यदि बीस वर्ष में भी पूरी कर दी गई तो भी उन्हें संतोष होगा।

गोखले ने दूसरे सुझाव यह दिए कि 6 और 10 वर्ष के बीच की उम्र वाले लड़कों के लिए शिक्षा अनिवार्य कर दी जाए। अनिवार्यता का यह सिद्धांत उन इलाकों में लागू किया जाए, जहां पुरुषों की जनसंख्या का 33 प्रतिशत भाग स्कूलों में जाता हो, व्यावहारिक कठिनाइयों के आधार पर लड़कियों को अनिवार्य शिक्षा से छूट दे दी जाए। जहां अनिवार्य शिक्षा लागू की जाए वहां वह निःशुल्क दी जाए और इस तरह होने वाला अतिरिक्त खर्च 2 और 1 के अनुपात में सरकार और स्थानीय निकाय आपस में बांट लें। गृह विभाग में एक अलग शिक्षा सचिव नियुक्त किया जाए और अंतिम बात यह कि हर साल काम की प्रगति के विवरण प्रकाशित किए जाएं। गोखले ने वे स्रोत भी बता दिए जहां से यह अतिरिक्त खर्च पूरा किया जा सकता था।

गोखले ने सरकार द्वारा यह भरोसा दिलाए जाने पर अपना यह प्रस्ताव वापस ले लिया कि सरकार इस प्रश्न पर बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार करेगी। परन्तु वचन पूरा किए जाने के कोई लक्षण दिखाई न पड़ने पर गोखले ने 16 मार्च 1911 को एक और विधेयक रखा जिसमें करीब-करीब पिछले साल वाले प्रस्ताव ही दोहराए गए थे। अनिवार्य शिक्षा के अपने सुझाव का समर्थन करने के लिए गोखले ने ग्लैडस्टोन के शब्द उद्धृत किए। ग्लैडस्टोन ने कहा था—"मैं समझता हूं देश के लिए यह कलंक और लज्जा की बात है कि जैसा कि हम समझते हैं अपनी उन्नत सभ्यता के बीच और असन्दिग्ध रूप में हमारी प्रभूत धन-सम्पत्ति के बावजूद हम इस समय अनिवार्यता के सिद्धान्त पर विचार करने के लिए विवश होना पड़े।

अनिवार्यता के बिना अगर इंग्लैण्ड का काम नहीं चल सका तो भारत जैसे पिछड़े हुए देश में कैसे चल सकता था? भारत में पचास

शिक्षा के क्षेत्र मे

वप से भी अधिव गमय से स्वेच्छा वे आधार पर प्राथमिव शिक्षा दी जान्ती रही थी, परन्तु उसमे उससे वाई उल्लेखनीय प्रगति नही हो पाई। प्रत्येक 8 वच्चो में मे 7 अव भी निरक्षर थे प्रत्येक 5 गावो मे 4 मे अव भी कोई स्कूल न था।

गोखले समझते थे वि इस वाम मे मरवार के सामन वया व्यावहारिव वठिनाइया आएगी। अत इस अनिवायता को उ हाने उक्त परिस्थितिया में यथासम्भव स्वीकाय वनान का प्रयत्न किया। उनवा आग्रह ता यह था वि सरवार सिद्धात रूप से अनिवायता वा सिद्धात स्वीकार वर ले। उम महामानव वे शब्दा मे इस प्रवार उन लोगा को प्रवाश वा एव विरण, परिष्वार व एव स्पश और आशा की एव झलक की उपलब्धि हो जाएगी, जिन्हे इन सभी वस्तुओ की बहुत अधिक आवश्यक्ता है। अपना भापण उन्होने अग्रेजी वा जो पद्याश कह वर ममाप्त किया उसवा हिन्दी रूपातर है।

क्षितिज वे पार क्या है, उसे देखन को मै नही वहता हू
वढा हुआ एव कदम ही मेरे लिए काफी है।

गोखले ऐमे व्यक्ति नही थे, जो सरकार की ओर से, यहा तक वि कुछ गैर-सरकारी सदस्या की ओर से, विरोध किए जाने पर अपने लक्ष्य से विमुख हो जाते। 18 माच 1912 को उन्होने यही प्रसग फिर उठाया और यह प्रस्ताव किया वि उक्त विधेयक एक प्रवर समिति को सौप दिया जाए। गोखले ने वकील के तक कौशल, प्रोफेसर की शैक्षिक गरिमा और देशभक्त की लगन के साथ अपने मन्तव्य की स्थापना की, परन्तु उस वभव को देख पाने वाले नेत्र वहा कहा थे। विधेयक को परिपद् के सामन रख कर और उस पर विचारारम्भ करके ही गोखले ने अपने कतव्य की इतिश्री नही मान ली। उन्हाने मद्रास और इलाहाबाद मे सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसायटी के माध्यम से एलिमेंटरी एजूकेशन लीग की स्थापना करके अपनी लक्ष्य सिद्धि के लिए देश मे आदोलन जारी रखा।

आइए अब एक और प्रसग पर ध्यान दे। 27 फरवरी 1912 को गोखले ने इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौसिल मे एक प्रस्ताव रखा जिसमे जिला मलाहकार परिषदो की स्थापना की सिफारिश की गई

थी। अपना प्रस्ताव रखते हुए गोखले ने यह इच्छा व्यक्त की कि जिला कलक्टर को एक गैर-सरकारी सलाहकार समिति की सेवाएं सुलभ होनी चाहिए, ताकि वह अविलम्ब कदम उठा सके। गोखले चाहते थे कि ग्राम पंचायतें फिर अस्तित्व में आ जाएं, स्थानीय और म्यूनिसिपल बोर्ड लोकप्रिय बनाए जाएं और उन्हें और अधिक साधन भी सुलभ कर दिए जाएं। इन संगठनों का लोकतंत्र रूप देने के बारे में तिलक और गोखले एकमत थे। इन सब बातों का कोई प्रत्यक्ष परिणाम तो सामने नहीं आया, परन्तु उनसे सरकार की विचार पद्धति पर प्रभाव अवश्य पड़ा।

प्रथम कोटि के संसद्विद के नाते गोखले का भारतीय जन जीवन में योगदान उन भाषणों से ज्ञात होता है जो उन्होंने विभिन्न तथा विश्व व्यापक विषयों पर परिषद में रह कर दिए। उन्होंने स्वयं अपनी रुचि और लक्ष्य के अनुरूप प्रसंगों पर भी भाषण दिए और सरकारी विधेयकों के बारे में विचार व्यक्त करने के अवसरों से भी पूरा लाभ उठाया। सिविल सेवा विषयक नियुक्तियों और परीक्षाओं के सम्बन्ध में किया जाने वाला अन्याय देश के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रसंग था और उन्होंने इस बात के लिए सरकार को क्षमा नहीं किया कि वह बाहर वालों के हित साधन के लिए इस देश वालों के साथ पक्षपात कर रही है।

गोखले अपने समय की इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के सबसे अधिक सक्रिय सदस्य थे। उनके अनेक सहयोगी उन्हें विरोधी पक्ष का नेता कह कर पुकारते थे और यह उचित भी था। फिर भी वह न तो सरकार के उन्मत्त विरोधी थे और न ही अन्ध समर्थक। जो कुछ बुरा था, उसके वह विरोधी थे और देश की प्रगति तथा कल्याण में सहायक हो सकने वाली प्रत्येक बात का समर्थन करते थे। सरकार ने जब 1904 में सहकारी ऋण समिति विधेयक पेश किया तो गोखले ने निःसंकोच उसका समर्थन किया। अपनी स्थिति की सहज सीमाओं से परिचित होने के कारण ही वह देश के लिए सन्तापप्रद रीति से अपना कार्य प्रभावशाली ढंग से सम्पन्न करने में समर्थ हो सके।

13 सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसाइटी

अब हम भारत का गाखले की विशिष्टतम न अर्थात सर्वेंटस आफ इण्डिया सोसाइटी का उल्लेख करेंगे। इस सस्था की स्थापना उनके इस विश्वास के परिणामस्वरूप हुई कि दश को ऐसे नि स्वाथ तथा योग्य कायकर्ता-वग की आवश्यकता है जो दशसेवा के लिए अपना जीवन समर्पित कर सके।

आजकल सावजनिक सेवा का जो अथ माना जाता है, उस अथ मे अंग्रेजी शासन से पहले भारत मे इसका अस्तित्व नही के बराबर था। ईसाई मिशनरियो ने शिक्षा विषयक काय आरम्भ करके और अस्पताल खोल कर इस दिशा मे मागदशन किया। उनकी इन गतिविधियो से बहुत अच्छा काम हुआ। फिर भी लाग यही अनुभव कर रहे थे कि वह सब काम उन लागो को धमान्तरित करने का बहाना मात्र है अत उन्होने शिक्षा और चिकित्सा विषयक सुविधाए सुलभ करने के लिए अपनी अलग सस्थाए स्थापित कर ली। वह काय आरम्भ हो जान पर भी सेवा भावना का विकास होना बाकी था। राजनीति के सम्बन्ध मे तो यह बात विशेष रूप से सत्य थी। भारतवासी सभी समस्याओ के उपयुक्त अध्ययन और पयाप्त जानकारी सहित राजनीति के क्षेत्र मे प्रविष्ट नहीं हो पाए थे। यह अवश्य है कि पददलित लोगो के उत्थान के प्रति सच्ची लगन पर आधारित सावजनिक काय की आवश्यकता का अनुभव धीरे धीरे किया जाने लगा था। दक्कन एजकेशन सोसायटी और पुणे की कुछ और सस्थाओ का जन्म इसी लगन के फलस्वरूप हुआ था। इस तरह उस दिशा मे प्रारम्भिक कदम तो उठा लिए गए जिन्हे कल्याण काय की सज्ञा दी जा सकती है तथापि राजनीति और अथशास्त्र के क्षेत्र में ऐसे सगठनो की आवश्यकता बनी रही जहा लागो को आजीवन सेवा काय की शिक्षा दी जा सके। सम्मेलनो अथवा लोगो को किसी एक मच पर एकत्र कर देने वाले आयोजनो से अधिक किसी वस्तु की आव-श्यकता का अनुभव अब होने लग गया था।

13 सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसाइटी

अब हम भारत का गोखले की विशिष्टतम देन अर्थात सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसाइटी का उल्लेख करेंगे। इस सस्था की स्थापना उनके इस विश्वास के परिणामस्वरूप हुई कि देश को ऐसे नि स्वार्थ तथा योग्य कार्यकर्ता-वर्ग की आवश्यकता है, जो देशसेवा के लिए, अपना जीवन समर्पित कर सकें।

आजकल सार्वजनिक सेवा का जो अर्थ माना जाता है, उस अर्थ में अंग्रेजी शासन से पहले भारत मे इसका अस्तित्व नही के बराबर था। ईसाई मिशनरियो ने शिक्षा विषयक कार्य आरम्भ करके और अस्पताल खोल कर इस दिशा म मार्गदर्शन किया। उनकी इन गतिविधियो से बहुत अच्छा काम हुआ। फिर भी लोग यही अनुभव कर रहे थे कि वह सब काम उन लोगो को धर्मान्तरित करने का बहाना मात्र है अत उन्होंने शिक्षा और चिकित्सा विषयक सुविधाए सुलभ करने के लिए अपनी अलग सस्थाए स्थापित कर ली। यह कार्य आरम्भ हो जाने पर भी सेवा भावना का विकास होना बाकी था। राजनीति के सम्बन्ध मे तो यह बात विशेष रूप से सत्य थी। भारतवासी सभी समस्याओ के उपयुक्त अध्ययन और पर्याप्त जानकारी सहित राजनीति के क्षेत्र म प्रविष्ट नही हो पाए थे। यह अवश्य है कि पददलित लोगो के उत्थान के प्रति सच्ची लगन पर आधारित सार्वजनिक कार्य की आवश्यकता का अनुभव धीरे धीरे किया जाने लगा था। दक्खन एजुकेशन सोसायटी और पुणे की कुछ और सस्थाओ का जन्म इसी लगन के फलस्वरूप हुआ था। इस तरह उस दिशा मे प्रारम्भिक कदम तो उठा लिए गए जिन्हे कल्याण कार्य की सज्ञा दी जा सकती है तथापि राजनीति और अर्थशास्त्र के क्षेत्र में ऐसे सगठनो की आवश्यकता बनी रही जहा लोगो को आजीवन सेवा कार्य की शिक्षा दी जा सके। सम्मेलनो अथवा लोगो को किसी एक मच पर एकत्र कर देने वाले आयोजनो से अधिक किसी वस्तु की आवश्यकता का अनुभव अब होने लग गया था।

12 जून, 1905 को शिवराम हरि साठे ने पुणे में सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसायटी का शिलान्यास किया। श्री साठे सार्वजनिक सभा में गोखले के एक पुराने सहयोगी थे। सदस्यों के पहले दल ने प्रभात वेला में फर्गुसन कालेज और सोसायटी के प्रधान कार्यालय के मध्य स्थित उभरी भूमि पर एकत्र होकर सेवा व्रत ग्रहण किया। गोखले के जीवन का वह सर्वाधिक पुण्य दिवस था उत्साह से ओतप्रोत थे। सबसे पहले गोखले ने व्रत ग्रहण किया और फिर उन्होंने नटेश अप्पाजी द्राविड़, अनन्त विनायक पटवर्धन और जी० के० देवधर को व्रत ग्रहण कराया। प्रत्येक सदस्य को सात संकल्प करने होते थे—वह अपने विचारों में स्वदेश को सदैव सर्वोच्च स्थान देगा और उसकी सेवा में वह अपने सर्वोत्कृष्ट गुण निछावर कर देगा; देश सेवा करते समय वह व्यक्तिगत लाभ की ओर उन्मुख नहीं होगा वह सभी भारतीयों को अपना भाई समझेगा और जाति अथवा समुदायगत भेदभाव किए बिना सभी के विकास के लिए काम करेगा, उसके लिए तथा उसके परिवार के लिए जो उन लोगों के लिए सोसायटी जो व्यवस्था कर पाएगी उसी से वह संतुष्ट रहेगा और अपने लिए अतिरिक्त कमाने में वह अपनी शक्ति का बिल्कुल उपयोग नहीं करेगा, वह पवित्र व्यक्तिगत जीवन बिताएगा किसी के साथ वह व्यक्तिगत झगड़ा नहीं करेगा और अंतिम बात यह कि वह सोसायटी के उद्देश्यों का सदैव ध्यान रखेगा और अधिकतम उत्साहपूर्वक उनके हितों का संरक्षण करेगा तथा ऐसा करते समय वह सोसायटी का काम आगे बढ़ाने के लिए सभी संभव कार्य करेगा और ऐसा कोई काम कभी नहीं करेगा जो सोसायटी के उद्देश्यों से मेल न खाता हो।

यह सोसायटी आरम्भ करने में गोखले का लक्ष्य था जगत साफ कर देने के बाद उस आधार शिला पर 'उन्हीं द्वारा तैयार करा महान कार्य' सम्पन्न करना। सोसायटी के ... प्रस्तावना में ... सम्बन्ध का भारत के हित साधन के ... विचार किया गया था। संविधान में ... पर जोर दिया गया था। उसमें कहा गया था। गोखले ... अभिप्राय है। ... अनुराग ... चाहिए कि उनका ... में और ... ना। ऐसा उ... मातृभू... ।

प्रत्येक अवसर पाकर प्रफुल्लित हो उठे, ऐसा निर्भीक हृदय, जो कठिनाई अथवा संकट उपस्थित होने पर अपने लक्ष्य से विमुख हो जाना अस्वीकार कर दे विधि के विधान के प्रति ऐसी बद्धमूल आस्था, जिसे कोई भी वस्तु डिगा न पाए—इन साधनों से सुसज्जित होकर कार्यकर्ता को अपने साधनपथ पर अग्रसर हो जाना चाहिए और भक्तिभाव से उस आनन्द का संधान करना चाहिए जो स्वदेश सेवा में अपने को मिटा देने में प्राप्त होता है।

यह अत्यन्त उच्च आदर्श है। गोखले स्वयं आध्यात्मिक साँचे में ढले हुए थे और वह अपनी 'सोसायटी' को भी उसी साँचे में ढालना चाहते थे। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि गांधीजी ने भी सर्वेंटस ग्राफ इंडिया सोसायटी से मिलते-जुलते उद्देश्यों की पूर्ति के लिए 'आश्रमों' की स्थापना की और उन्होंने स्वयं भी सोसायटी' का सदस्य बनना चाहा था। राजनीति के आध्यात्मीकरण के सम्बन्ध में कहे गए गोखले के मन्त्र वाक्य को उद्धृत करना गांधीजी को परम प्रिय था और उन्होंने इस मन्त्र को अपने दैनिक कार्यकलापों का भी संचालन सूत्र बना लिया था।

गोखले ने सोसायटी के संविधान और नियमावली को फिरोजशाह महता और प्रिंसिपल सेल्वी जैसे कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों के पास भेज दिया। पूना में एक सह-कालेज के प्रिंसिपल होने के अतिरिक्त सेल्वी फर्गुसन कालेज की प्रबन्धकारिणी के अध्यक्ष भी थे और गोखले के विशेष प्रशंसक थे। उन्होंने गोखले को बताया कि उस प्रलेख को गुप्त घोषित करना बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य नहीं है और सोसायटी में प्रवेश पाने की पहली शर्त एक अंग्रेज के लिए किसी ऐसी गुप्त समिति के नियम जैसी जान पड़ती है। गोखले ने वह नियम बदल दिया, क्योंकि उसकी अवांछनीय व्याख्या की जा सकती थी। मेहता ने इससे भिन्न आपत्ति प्रकट की। उन्होंने गोखले को बताया कि वह सोसायटी की स्थापना करके एक श्रेष्ठतर जाति की सृष्टि कर रहे हैं।

तब और आपत्तियाँ कुछ भी हों सर्वेंटस ग्राफ इण्डिया सोसायटी की स्थापना तत्कालीन भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी। इसने सिद्ध कर दिखाया कि गोखले सर्जनात्मक चिन्तक थे। गोखले के समस्त भाषण और ग्रन्थ तथा राजनैतिक कार्य यदि भुला भी दिए जाएं

तब भी जिस एक वस्तु की स्थिति इस राष्ट्र के इतिहास में अक्षुण्ण बना रहेगी, वह है 'सर्वेंट्स ग्राफ इण्डिया सोसाइटी' जिसकी स्थापना गोखले ने जनता की सेवा के लिए की और जो उससे कहीं अधिक प्रशंसा की अधिकारिणी है जितनी उसे प्राप्त हो सकी है।

सर्वेंट्स ग्राफ इण्डिया सोसाइटी एक ऐसे स्नातकोत्तर संस्थान के रूप में स्थापित की गई थी जहां प्रशिक्षण पाने वाले सदस्यों को सामाजिक प्रसंगों का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करना था, लोगों के सम्पर्क में आना था, दुखियों को धैर्य बंधाना था और सवैधानिक रीति से विदेशी शासन के विरुद्ध युद्ध करना था। यदि वे ऊंचे पदों पर थे और उन्हें बहुत अधिक वेतन मिलते थे तो उन्हें सोसाइटी के नियमों के अन्तर्गत निर्धारित निम्नतम रकम अपने लिए रख कर बाकी वेतन सोसायटी को समर्पित कर देने थे।

इस सोसाइटी की स्थापना इन आदर्शों के आधार पर होने के कारण इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि लगभग साठ वर्ष पहले अपनी स्थापना के समय से ही यह लगातार देश के लिए महान सेवाएं करती रही है। इसके सदस्य आदिवासियों की सेवा और मजदूर संघ आन्दोलन में अगुआ रहे हैं। विदेशों में भारतीयों, विशेषत श्रमिकों की दशा सुधारने में उन्होंने बहुत अधिक योग दिया है। बाढ़ों, अकालों, महामारियों तथा भूकपों से पीडित व्यक्तियों को मुख पहुंचाने वाले व्यक्तियों के रूप में उनका कार्य स्वर्णाक्षरों में अंकित है। शिक्षा मन्दिर के द्वार महिलाओं के लिए खोल देने में उन्होंने महान योगदान किया है। उन्होंने दलित वर्गों के उत्थान के लिए उद्यम किया है, सरकारी समितियां स्थापित की हैं और सेना के अन्य असख्य काम भी किए हैं। इस सोसायटी के प्रतिनिधि पुरुष—उदाहरणार्थ श्रीनिवास शास्त्री, ठक्कर बापा, एन० एम० जोशी, जी० के० देवधर, एस० जी० वजे, एच० एन० कुंजरू, कोदण्ड राव, के० जी० लिमये, वकील और ए० डी० मणि ऐसे व्यक्ति हैं जिन पर कोई देश समुचित गर्व कर सकता है।

पूने स्थित केन्द्रीय कार्यालय के अतिरिक्त बम्बई, नागपुर, मद्रास और इलाहाबाद में सोसाइटी की शाखाएं थीं। केन्द्रीय कार्यालय के भव्य भवन में अब 'गोखले स्कूल ग्राफ पालिटिक्स एण्ड इकनामिक्स' काम कर रहा है, जो देश के बौद्धिक जीवन का एक प्रमुख केन्द्र है।

धन की कमी गोखले के काम मे बाधक न रही। सर्वोच्च विधान परिषद् के सदस्य और अनिंद्य सच्चरित्रता वाले जन सेवक के रूप में उनकी ख्याति सर्वत्र फैल चुकी थी। अत आवश्यकतानुसार चाहे जितना रुपया एकत्र कर लेना उनके लिए कठिन न था। कुछ धनवानो ने उन्हे सोसाइटी के लिए ऐसे चेक दे दिए, जिन पर वह इच्छानुसार जितनी रकम चाहते लिख कर प्राप्त कर सकते थे। परन्तु गोखले लोगो की सदाशयता का दुरुपयोग करने वाले व्यक्ति नही थे। उन्हें तो मानो यही सिद्ध कर दिखाना था कि धन की कमी अच्छे काम मे बाधा नहीं डाल पाती।

इस सम्बन्ध मे यह उल्लेख अप्रासंगिक न होगा कि 1905 मे गोखले भी रानडे का स्मारक बनाने के लिए धन संग्रह कर रहे थे। इस काम के लिए लगभग एक लाख रुपया इकट्ठा हुआ। गोखले की आकांक्षा थी कि अर्थशास्त्रीय अध्ययन तथा औद्योगिक अनुसंधान के लिए 'रानडे इकनामिक इंस्टिट्यूट की स्थापना की जाए। यह शुभाकांक्षा साकार हुई। 1910 में उक्त इंस्टिट्यूट का उद्घाटन हो गया और आगे चल कर उसे पूणे विश्वविद्यालय ने अपने नियंत्रण में ले लिया।

सर्वेंटस आफ इण्डिया सोसाइटी की स्थापना का जनसाधारण ने सामान्यत और प्रसिद्ध व्यक्तियों ने विशेष रूप से बड़ा स्वागत किया। कुछ अधिकारियो को इसके भविष्य के बारे में शंका अवश्य थी। तात्कालिक वित्त सदस्य गाई फ्लीटवुड विल्सन* ने 2 सितम्बर, 1910 को शिमला से लिखा था —

उन्होंने तारीख को मैं कई घंटे तक गोखले और सर्वेंटस आफ इण्डिया सोसाइटी के सदस्यों के साथ रहा। कालेज की इमारत बहुत अच्छे ढंग की है पुस्तकालय बहुत उत्कृष्ट कोटि का है और जान पड़ता है कि सभी प्रबंध प्रत्येक दृष्टिकोण, यहां तक कि स्वच्छता के दृष्टिकोण से सोच विचार कर किए गए हैं। मैंने बहुत समय तक उन लोगों के साथ बातचीत की। गोखले के साथ भी मैंने बहुत देर तक बातचीत की, परन्तु न तो सोसाइटी के सदस्यों से और न स्वयं गोखले से ही मैं इस बात का कोई स्पष्ट चित्र पा सका कि वास्तव में इस सोसाइटी

*लेटर्स टु लॉर्ड पृष्ठ 75–76

का असल उद्देश्य क्या है। पूरी योजना कल्पना प्रधान जान पडती है और मेरा ख्याल है कि अंत में ये लोग आजीविका के लिए सरकारी या म्यूनिसिपल नौकरियां ढूंढते हुए दिखाई देंगे। वे बहुत उच्च शिक्षा प्राप्त हैं और इसमें संदेह की कोई बात नहीं है कि यदि उनकी उम्र न जाने कुछ अधिक है उनके मार्ग में बाधा न डाली तो वे बहुत ही उपयोगी जन सेवक बन सकेंगे।

कर्जन की भांति फर्नटवड विल्सन भी भारतीय मस्तिष्क को समझने में असमर्थ रहे। इसीलिए उन्होंने इतने अविवेकपूर्ण शब्द कह डाले। गोखले कोई स्वप्नद्रष्टा न थे वह तो प्रख्यात रूप से व्यवहार-शील आदर्शवादी थे। आदर्शों के बिना राष्ट्र विनष्ट हो जाता है और गोखले के रूप में भारतमाता को एक ऐसा सपुत्र प्राप्त था जिसमें केवल लक्ष्यगत उच्चता ही नहीं थी अपने आदर्शों को प्रत्यक्ष उपलब्धि में परिणत कर देने का सामर्थ्य भी था।

गोखले ने धर्म के विषय में बहुत कम कहा है परन्तु वह नास्तिक नहीं थे। वह अपनी सोसाइटी को धर्म निरपेक्ष कहलवाना पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने उसका सम्बन्ध मध्ययुगीन ईसाई धर्म धाराओं के साथ जोड लिया था। गोखले का धर्म मूलतः नैतिकता प्रधान तथा एकान्तिक था रूढिनिष्ठ अथवा सस्यात्मक नहीं। यह उल्लेखनीय बात है कि 1902 में गोखले ने 'दि इण्डियन सोशल रिफार्मर' के श्री के० नटराजन को नाम एक पत्र लिखा था जिसमें कहा था कि स्वामी विवेकानन्द के उद्देश्य तथा उनकी आकांक्षाओं ने गोखले का अपनी ओर आकृष्ट किया है। परवर्ती वर्षों में गोखले ने उन्हें बताया कि प्रेम रूप परमात्मा में उनकी आस्था हो गई है।

14 कांग्रेस के मन्त्री से अध्यक्ष तक

क्षमा याचना वाली घटना के बाद कांग्रेस में गोखले की साख को कुछ धक्का पहुंचा था। 1897 के अमरावती अधिवेशन में उन्हें न तो मंच पर प्रसिद्ध व्यक्तियों के साथ बैठने का स्थान दिया गया, न किसी प्रस्ताव पर बोलने अथवा कोई प्रस्ताव रखने के लिए ही कहा गया। जहां तक उनका सम्बन्ध है उन्होंने निश्चय कर लिया था कि यदि कांग्रेस उनकी आवश्यकता नहीं समझती तो वह अपने को उस पर थोपेंगे नहीं। अपने धैर्य और इरादे की दृढ़ता के बल पर उन्होंने परिस्थिति पर विजय पाई और 1904 में उन्हें कांग्रेस का मन्त्री चुना गया उसके उपरांत उनकी प्रगति का पथ सुनिश्चित और बिना बाधा का रहा।

कांग्रेस के उच्चाधिकारियों के दृष्टिकोण में होने वाले परिवर्तन का कारण सम्भवतः बंग भंग के फलस्वरूप उठने वाली आंधी में खोजा जा सकता है। भारत में और इंग्लैण्ड में भी सरकार तक गोखले की पहुंच थी और कांग्रेस नेताओं का विचार था कि उनकी विशिष्ट स्थिति उस गलत कदम को रोक देने में नहीं तो उसे कम से कम कर देने में अवश्य सहायक हो सकती है। एक अन्य कारण यह रहा होगा कि गरम दल वालों में एकता बनाए रखना आवश्यक था।

1904 के अंत में बम्बई में हुए, कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में विलियम वेडरबर्न ने यह प्रस्ताव रखा था कि इंग्लैण्ड में जहां अगले वर्ष आम चुनाव होने वाला था, लोकमत प्रबुद्ध करने के लिए भारत के सभी भागों से प्रतिनिधि भेजे जाने चाहिए। तिलक ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। केवल दो नेताओं—गोखले और लाला लाजपत राय ने उस उद्देश्य से यात्रा की। गोखले 16 सितम्बर 1905 को सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसाइटी की स्थापना के कुछ ही महीने बाद और लार्ड कर्जन द्वारा बंग भंग का अपना विचार पूरा किया जाने के कुछ ही दिन बाद भारत से रवाना हुए। वह पचास दिन तक इंग्लैण्ड में रहे। लाजपतराय पहले ही वहां पहुंच चुके थे। उन दोनों की योग्यताएं एक-

दूसरे की अनुपूरक थी । शक्तिशाली व्याख्याता होने के कारण लाजपतराय विशाल सभाओं में भाषण देते थे और गोखले ससदविज्ञो उदार दल के सदस्यों और विशिष्ट वर्गों के लोगों की बैठकों में बोला करते थे । गोखले पर उन दिनों काम का बहुत बोझ रहा, क्योंकि उन पचास दिनों में उन्हें पैंतालीस सभाओं में भाषण देना पड़ा और प्रतिदिन लगभग अठारह घंटे तक काम करना पड़ा । काम का यह भार इतना अधिक रहा कि उन्हें स्वदेश लौटते समय स्टीमर पर ही गले का आपरेशन कराना पड़ा ।

इस अवसर पर गोखले द्वारा दिए गए भाषणों का मतदान पर कितना प्रभाव पड़ा यह प्रश्न विवादास्पद भले ही हो परन्तु इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि उन्होंने भारत का पक्ष जोरदार ढंग से लोगों के सामने व्यक्त किया । उनके लिए यह सन्तोष की बात थी । कुछ ऐसे विशेष प्रसंग भी थे जिन्हें स्पष्ट करना आवश्यक था । उदाहरण के लिए कांग्रेस विलायती सूती कपड़े के बहिष्कार का विचार कर रही थी । गोखले यह बात जनसाधारण को ही नहीं मैंचेस्टर और लंकाशायर के मजदूरों को भी समझा देना चाहते थे । उन्होंने मचेस्टर में मजदूरों को यह स्पष्ट कर दिया था कि उन्हें रुष्ट होने का अधिकार तो है पर भारत में नहीं, क्योंकि वह स्वयं अन्यायग्रस्त हैं हाँ, उन लोगों पर कुपित होने का उन्हें पूरा अधिकार है जिन्होंने बंग भंग का अनुचित कार्य किया है। ऐसी दशा में निराश भारतीयों के प्रतिरोध का एकमात्र उपाय यही है कि वे विलायती माल खरीदना अस्वीकार कर दें । उनके भाषणों को बहुत लोगों ने सुना और सराहा । इतना अधिक समय बीत जाने पर भी हम वेडरबर्न तथा उन अन्य महानुभावों की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते, जिनके मन में ब्रिटिश मतदाताओं को शिक्षा देने का यह अनूठा विचार पैदा हुआ ।

इस बात का ध्यान रखने के साथ-साथ कि असावधानी के कारण भारत के पक्ष की कोई हानि न हो जाए गोखले को यह सन्तोष भी प्राप्त हुआ कि उन्होंने इंग्लैण्ड में कांग्रेस द्वारा प्रकाशित 'इण्डिया' नामक पत्रिका की भी सहायता की । उक्त पत्रिका में बराबर घाटा ही होता रहा था परन्तु गोखले उसके बहुत से नए ग्राहक बना लेने में सफल हुए ।

गोखले के सामने अत्यत कठिन काय था । कर्जन द्वारा किए गए बग भग ने देश की सोइ हुई राष्ट्र भावना को जगा दिया था। देश के नेताओ द्वारा किए गए आह्वान न बगाल को तो विशेष रूप म उदबुद्ध कर दिया था । उनके परिणामस्वरूप होने वाला ऐतिहासिक सघष सव विदित है । बगाल ने अग्रेजी शासन के विरुद्ध जिस वीर भावना का परिचय दिया उसने कर्जन को उत्तेजित कर दिया । वह उन बढती हुई राष्ट्रवादी शक्तियो को खण्डित कर दना चाहत थे । उद्देश्य यह था कि *सयुक्त मार्चे से मुसलमानो को अलग कर दिया जाए ।* पूर्वी बगाल मे मुसलमानो की सख्या अधिक थी । बाटो और शासन करो का यह अच्छा अवसर था और कूट-कौशल मे कर्जन अद्वितीय थे । बग भग का प्रत्यक्ष कारण तो यह बताया गया कि बगाल का आकार इतना बडा ह कि वह प्रशासनिक कामो मे कठिनाई पैदा करता है परन्तु वह विभाजन वास्तव म एक राजनैतिक चाल थी।

बगाल म भयकर उथल-पुथल मच गइ । विभाजन के प्रस्ताव के विरोध मे लगभग पाच सौ सभाए हुइ । वह प्रस्ताव रद्द कराने के लिए 60,000 व्यक्तियो के हस्ताक्षर सहित एक ज्ञापन इग्लैण्ड भेजा गया । भारत के तत्कालीन प्रधान सेनापति किचनर के साथ मतभेद हो जाने पर कर्जन ने त्यागपत्र देने का फैसला किया पर तु अपना पद छोडने स पहले वह विभाजन का काम पूरा कर देना चाहते थे । इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौसिल के शिमला अधिवेशन में, जिसम केवल सरकारी व्यक्ति भाग ले सकत थे, कर्जन ने अगस्त 1905 म वह विधेयक पास करा लिया और वह उसी वष अक्तूबर मे लागू किया जाना था । जनता के आक्रोश की सीमा न रही । उक्त अधिनियम के लागू होने का दिन सम्पूण बगाल मे शोक दिवस के रूप मे मनाया गया।

काग्रेस का वाराणसी अधिवेशन इस वातावरण म हुआ। देश के सभी भागो से बहुत अधिक सख्या म प्रतिनिधि उसम भाग लेने आए । प्रधान प्रश्न यही था कि उस सकटपण स्थिति म गोखले लोगो का किस तरह मागदशन करते ह ? गोखले का अध्यक्षीय भाषण काफी जोरदार और जानकारी भरा था। प्रिस आफ वेल्स और प्रिसेस तथा नए वायसराय मिटो का भारत म स्वागत करते हुए गोखले ने कर्जन के शासन काल का सिहावलोकन किया । उस शासन की तुलना उन्होन औरगजेब के

शासन के साथ की दोनों के नामन बहुत अधिक केन्द्रीकृत और अत्यधिक वैयक्तिक थे। वजन अनेक वालों में महान थे परन्तु सहानुभूतिपूर्ण दूरदृष्टि का अभाव होने के कारण वह भारतवासियों का समय पान में असमर्थ ही रहे। जैसा कि ग्लैडस्टोन कहा करते थे—'मानव प्रगति के एक साधन के रूप में स्वाधीनता के सिद्धान्त में उनकी कोई आस्था न थी। भारत में अंग्रेजी शासन की सुदृढ़ बनाने की उत्तान जबरदस्त कोशिशों का और वह भारतीयों के साथ मूक और पराधीन पशुओं का-सा बर्ताव करते रहे। गोखले ने कहा कि यदि लोगों को इसी तरह अपमानित किया जाना है और उन्हें ऐसे ही निःसहाय बनाते रहना है तो मैं यही कह सकता हूँ कि लोक हित में शासन तन्त्र के साथ किसी भी प्रकार सहयोग करने की आशा को अन्तिम नमस्कार है। गोखले के इन शब्दों में मानो वह भविष्यवाणी छिपी थी, जिसे असहयोग आन्दोलन का श्रीगणेश करते समय महात्मा गांधी ने सत्य सिद्ध कर दिखाया।

गोखले ने स्वदेशी आन्दोलन तथा बहिष्कार आन्दोलन का भी उल्लेख किया। बहिष्कार को वह एक ऐसा शस्त्र मानते थे जिसका प्रयोग और कोई चारा बाकी न रहने पर ही किया जाना चाहिए। शासितों की शिकायतों की ओर शासकों का ध्यान आकृष्ट करने का वह एक उपयोगी साधन था। वह इस विधिसम्मत हथियार मानते थे। इससे काम में लाने से पहले यह आवश्यक था कि सभी ओर किसी सामान्य संकट का अनुभव किया जाए और सभी व्यक्तिगत मतभेद दूर कर लिए जाएं। उन्होंने कहा था—परमोत्कृष्ट स्वदेशी में मातृभूमि के प्रति श्रद्धानुराग की जो भावना साकार है वह इतनी गहरी और इतनी तीव्र है कि उसके स्मरणमात्र से रोमांच हो जाता है और उसका स्पर्श तो व्यक्तिगत सीमाओं से बहुत ऊंचा उठा देता है।

स्वदेशी के इस आदर्श को व्यवहार में लाने के लिये आवश्यक विचारों की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए उन्होंने हथकरघा उद्योग का पुनरुत्थान करने और उसे आधुनिक रूप देने के महत्व पर बहुत जोर दिया जिससे किसानों को अतिरिक्त आय हो सकती है। राजनैतिक क्षेत्र का उल्लेख करते हुए उन्होंने भारत के लक्ष्यों तथा आकांक्षाओं पर प्रकाश डाला और शासन तन्त्र पर उन्होंने जम कर प्रहार किया। अपने भाषण के अन्तिम भाग में उन्होंने रानडे का एक कथन उद्धृत किया, जिसमें जीवन के नैतिक पक्ष पर बहुत अधिक जोर दिया गया था। रानडे ने कहा था

"मनुष्य की मेधा का मुक्त करके, उसके वक्तव्य के प्रतिमान उचे उठा कर उसकी शक्तिया का पूण विकास करके सम्पूण मानव का कायाकल्प कर दीजिए, उसे पवित्र कर दीजिए उसे पूण बना दीजिए।"
अपने भाषण का अत उन्होने अग्रेजी के जिस पद्यावतरण के साथ किया, उसका हिदी रूपातर इस प्रकार है

वही व्यक्ति तो मेरे युग का कणधार है
जो कहता है—
मन पूण प्राप्ति चाही थी
पर यौवन न अद्धाश दिखाया,
प्रभु पर भरोसा करो, पूण देख लो डरो नही—

अध्यक्षीय भाषण के अतिरिक्त प्रस्तावो पर विचार किया जाता था। बगाल ने अपमान की आग मे झुलसते उबलते उत्तप्त युवको का एक दल भेजा था। वे चाहते थे कि काग्रेस एक प्रस्ताव पास करे जिसमे प्रिस आफ वेल्स की भारत यात्रा का बहिष्कार किया जाए। एक अन्य प्रस्ताव पास करा कर वह विलायती माल का बहिष्कार कराना चाहते थे। नेताओ मे मतभेद था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी दोनो प्रस्तावो के विरुद्ध थे। तिलक ने प्रिस की यात्रा के बहिष्कार की बात तो बहुत पसन्द न की परन्तु विलायती माल के बहिष्कार विषयक प्रस्ताव के लिए उन्होने आग्रह किया। काग्रेस पहले ही प्रिस आफ वल्स को अधिवेशन मे भाग लेने का निमत्रण भेज चुकी थी, जो उन्होने स्वीकार नही किया था। काग्रेस उलझन मे थी—काग्रेस अध्यक्ष और भी अधिक चिन्तित थे। इस उलझन मे से कोई स्पष्ट माग बना लेने के लिए गोखले ने अपनी सम्पूण योग्यता तथा क्षमता से काम लिया। उन्होने रमेशचन्द्र दत्त के पास जाकर उनसे कहा कि वह कृपया सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को विलायती माल के बहिष्कार विषयक प्रस्ताव से सहमत हो जाने के लिए तयार कर ले। बनर्जी मान गए। अब तिलक और लाला लाजपतराय को मनाना बाकी था। उनके सशोधन विषय समिति मे अस्वीकृत हो चुके थे परन्तु उन्होने यह सूचित कर दिया था कि वे खुले अधिवेशन मे उन्हे फिर पेश करना चाहते है। गोखले ने व्यक्तिगत रूप से प्राथना करके लाजपतराय से अनुरोध किया कि वह प्रिस की यात्रा के बहिष्कार विषयक प्रस्ताव के लिए आग्रह न करें, क्योकि ऐसा करना शोभा नही देता। लाजपतराय ने बात मान ली।

अब तिलक बाकी रहे। तिलक को मनाने का काम गोखले ने लाजपतराय को सौंप दिया, क्योंकि वह काय उनके अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता था। एक कठिनाई और बाकी थी। बगाली युवको को कैसे मनाया जाए? गोखले का कहना था कि यदि तिलक और लाजपतराय एकमत हो गए तो वे बगाल के युवको का स्नय समझा लेगे। लाजपतराय ने तिलक को यह सुझाव दिया कि उन्हें उस समय अधिवेशन में अनुपस्थित रहना चाहिए जब वहा बहिष्कार प्रस्तावो पर विचार हो रहा हो अन्यथा उन्हें अपनी अतरात्मा के विरुद्ध आचरण करना पडेगा। उनके और गोखले के बीच एक समझौता यह भी हो गया था कि अध्यक्ष बहुमत से उस प्रस्ताव के पास होने की घोषणा करेगा सवसम्मति से पास होने की नहीं। तिलक ने यह सुझाव मान लिया।

अब केवल बगाल से आने वाले दल को सम्भालना बाकी था। लाजपतराय और तिलक ने उनके साथ बात की, परन्तु वे अपनी बात छोडने के लिए तयार न हुए। अत यह योजना बनी कि लाजपतराय उन लोगो को बहस में उलझाए रखें और उस अवधि में अधिवेशन में उस प्रस्ताव को निबटा दिया जाए। गोखले तिलक सुरेन्द्रनाथ बनर्जी लाजपतराय और रमेशचन्द्र दत्त द्वारा उद्भूत वह चाल कामयाब क्स न रहती। जहा तक दूसरे अर्थात विलायती माल के बहिष्कार विषयक प्रस्ताव का सम्बन्ध है, वह प्रत्यक्ष रूप से सामने न लाया जाकर परोक्ष रूप से स्वीकार कर लिया गया। उसके एक भाग में बग भग रद्द करने की माग थी और दूसरे में बगाल द्वारा आरम्भ किए गए बहिष्कार का अनुमोदन किया गया था।

कांग्रेस का वह अधिवेशन इस तरह समाप्त हुआ। परन्तु प्रत्यक्ष रूप से समझौता हो जाने पर भी प्रतिनिधि अपने मस्तिष्क पर कुछ भार लेकर ही विदा हुए होंगे, क्योंकि वे विलायती माल के बहिष्कार के रूप में सीधी कारवाई के पक्षपाती थे। वाराणसी अधिवेशन में इस प्रकार सकट के जो बीज बोए गए उनका फल 1907 के सूरत अधिवेशन में प्रकट हुआ।

15 कलकत्ता और सूरत

जिन पचास दिना म गाखले न इग्लड म रह कर भारत के पक्ष की पैरवी की उस अवधि म यहा वस्तुस्थिति म अवाछनीय परिवनन हो गया। दश म आतक्वाद ने सिर उठा लिया जिसस नताम्रा की उस पुरानी पीढी का खेद हुआ जिन्हे यह आशा थी कि ब्रिटेन कभी न कभी भारतीया के साथ वसा वर्ताव अवश्य करगा जैसा वह अपन लोगा क साथ करता है। वे ऐस प्रत्यक कदम का भारत क हिता क लिए घातक समझत थे जिसस दोना के बीच पराएपन की भावना बढन म सहायता मिलती थी। दूसरी ओर कजन ने, अपनी उद्धतता क कारण उन आतक्वादिया का मानो बल प्रदान कर दिया था, जा दश से विदशी शासन का अन्त करन क लिए कुछ भी कर डालन का तत्पर थे। यह स्थिति गरम दल क पक्ष म थी अत नरम दल वाला का वचार का रवया अपनाने क लिए विवश होना पडा।

इसम स्वय गोखले की स्थिति क्या थी? नरम दल वाला अथवा सयताचारिया म वह उग्रतम थे क्योकि उन्हान वहिष्कार क सिद्धान्त का समथन किया था और उधर गरम दल वाले अथवा अतिवादी न तो उन्ह अपना मानत थे और सत्य ता यह था कि न ही वह उस वग क कहलाना पसन्द ही करत थे।

1906 क कलकत्ता अधिवशन का समय निकट आता जा रहा था और गरम दल वाले अपनी उस उपलब्धि का खाना नही चाहते थे जा उन्ह वाराणसी म प्राप्त हा चुकी थी। वे समझत थे कि अध्यक्ष पद क लिए लाला लाजपतराय उपयुक्त व्यक्ति ह। इस विचार का दश क नवयुवका का हार्दिक समथन प्राप्त था। परन्तु इसा लिए पुरानी पीढी क नताम्रा का यह पसन्द न था। तिलक न जा स्वय गरम दल क थे दश म बढती शौय भावना का अभिनन्दन किया। उग्र राष्ट्र भावना क पल्लवन म महाराष्ट्र बगाल क साथ था। तिलक का सक्रिय सहयाग बगाल और महाराष्ट्र का बहुत निकट ले आया था। बगाल क गारव गात महाराष्ट्र

म सभी जगह गाए जाते थे और मराठा शासन तथा उसके अग्रपुरुष शिवाजी का उत्साहवद्धक इतिहास बगाल को प्रेरित पुलकित कर रहा था। अरविंद घोष और विपिनचन्द्र पाल महाराष्ट्र म वन्दनीय बन चुके थे, और तिलक बगाल म।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और फिरोजशाह मेहता ने लाला लाजपतराय का चुनाव पसन्द नहीं किया। उन्ह डर था कि लाला जी ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देंगे जिसस ब्रिटिश लोकमत के विचार अपने अनुकूल बनान म उनके द्वारा किया गया सारा परिश्रम और ब्रिटिश सरकार म भारत के शुभ-चिन्तको के प्रयास व्यथ हो जाए। अत लाला लाजपतराय का नाम छोड दिया गया।

जिस स्वागत समिति का नाम चुनन का अधिकार दिया गया था, उस पर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का नियन्त्रण था विपिनचन्द्र पाल का नहीं। यह आश्चय की बात है कि उस समय पूणत उद्वेलित बगाल कलकत्ता अधिवेशन के लिए एक गैर-नरम दलीय व्यक्ति को अध्यक्ष न बनवा सका। विपिनचन्द्र पाल न तिलक का नाम सुझाया परन्तु वह भी अस्वीकृत हो गया। स्वय नरम दल वालो को भी यह निश्चय नहीं था कि वे जिस व्यक्ति का नाम सुझाएगे वह चुन ही लिया जाएगा, उन्होने तार द्वारा दादाभाई नौरोजी स प्राथना की कि वह सकट की उस घडी म काग्रेस का परित्राण कर। गोखले उस समय लन्दन म थे। दादाभाई न वह तार गोखले को दिखाया। भारत के उस पूज्य पितामह न काग्रेस की रक्षा का निश्चय कर लिया। विपिनचन्द्र पाल ने जो अपने विरोधियो की चाल समझ गए थ तार द्वारा दादाभाई से यह कह दिया कि वह उस कष्ट-साध्य काय का भार स्वीकार न करे और उन्हे यह चेतावनी भी द दी कि यदि उन्होन काग्रेस का अध्यक्ष पद स्वीकार कर लिया तो उन्हे उसके अप्रिय परिणाम भोगने पडेंगे। उस महापुरुष के अडिग बने रहने पर वाद-विवाद शान्त हो गया और दोनो पक्षो न उनका चुनाव शिरोधाय कर लिया।

इस प्रकार पहली कठिनाई तो दूर हो गई परन्तु मैदान अभी जीता नहीं गया था। फिरोजशाह मेहता को यह पसन्द न था कि काग्रेस के इतिहास म बहिष्कार का नामोल्लेख मात्र भी हो। इस दिशा म उन्ह पूणत निराश ही रहना पडा। जसा कि उस समय के एक समाचारपत्र न

लिखा, दादाभाई ने भी उस अग्नि को शात करने के बदले उसमें आहुति डालने का ही काम किया। कलकत्ता के सुप्रसिद्ध विधिवेत्ता डा० रासबिहारी घोष स्वागत समिति के सभापति थे। अपने उद्घाटन भाषण म उन्होंने बगाल में किए गए सरकार के सभी कामों की निन्दा की। स्वदशी के बारे मे उन्होंने कहा—'इस जसे आन्दोलन को राजद्रोह कहना असत्य और मिथ्या अभियोग है। इग्लैण्ड की बुराइयो के बावजूद हम उस दश स प्यार करते हैं परन्तु उससे भी अधिक प्यार हम भारत मे करते ह। यदि इसका नाम राजद्रोह है तो म गवपूवक कह सकता हू कि हम राजद्रोही ह।"

अध्यक्ष ने तो उस अवसर को अविस्मरणीय ही बना दिया। भारत के इतिहास म पहली बार उन्होंने घोषणा की कि भारत का लक्ष्य स्वराज्य है। उन्होंने कहा—"पूरी बात एक शब्द म कही जा सकती है—स्वराज्य, अर्थात स्वराज्य यूनाइटेड किंगडम जैसा अथवा उपनिवेशो जसा। स्वशासन की दिशा में अविलम्ब काय आरम्भ कर दिया जाना चाहिए जो *अपने आप पूर्ण स्वशासन के रूप मे विकसित हो जाएगा। इसके लिए* केवल समय आ ही नही गया ह बहुत विलम्ब भी हो चुका है।"

दादाभाई वैसे तो कुछ त्याग करके भी स्वदशी के पूर्ण समथक थे पर उन्होने अपने भाषण मे बहिष्कार का उल्लेख नहीं किया। ब्रिटिश राजभक्ति तथा उनकी राजभक्तता पर से उनका विश्वास हटता जा रहा था और उन्हे यह दख कर प्रसन्नता थी कि पूरे देश मे राष्ट्रीयता की एक नई लहर फैलती जा रही थी। कलकत्ता अधिवेशन म एक ऐसा प्रस्ताव पास करना अनिवाय हो गया जिसमें बहिष्कार को कांग्रेस की लक्ष्य सिद्धि का एक साधन माना गया। इस सम्बन्ध मे वाद विवाद उठ खडा हुआ कि विलायती वस्तुओ का बहिष्कार केवल बगाल तक सीमित रखा जाए या उसे अखिल भारतीय स्तर पर चलाया जाए। गोखले और मालवीयजी पहले विकल्प के पक्ष में थे। विपिनचन्द्र पाल दूसरी सीमा पर थे क्योंकि वह चाहते थे कि पूरे देश मे केवल विलायती वस्तुओ का ही नही, सरकारी सस्थाओ का भी बहिष्कार किया जाए। गोखले इस दृष्टिकोण के विरोधी थे। यहा यह उल्लेख करना रोचक होगा कि गाधीजी ने असहयोग के दिनो मे जिन बातो का प्रचार और व्यवहार किया, उनका बीज उन्ही बीते दिनो म बोया जा चुका था।

1905 और 1906 के अधिवेशनों के बहिष्कार विषयक प्रस्ताव प्रत्यक्ष नहीं थे। 1905 के प्रस्तावों में कांग्रेस ने बंग भंग का विरोध किया और एक ऐसा खण्ड भी जोड़ दिया, जिसका साराश यह था कि लोगो को विरोध के तौर पर अथवा इसलिए विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आसरा लेने के लिए विवश होना पड़ा है क्योंकि संभवतः वही ऐसा एकमात्र संवैधानिक और प्रभावपूर्ण मार्ग उन्हे सुलभ है जिससे वे बंग भंग के निश्चय के विषय में भारत सरकार के अडिग बने रहने के प्रति ब्रिटिश जनता का ध्यान आकृष्ट कर सकते है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कांग्रेस के उक्त अधिवेशन में इस प्रश्न का एक विचार मात्र के रूप में व्यक्त करके छोड़ दिया गया था।

1906 के कांग्रेस अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया गया—इस कांग्रेस का विचार है कि बंगाल ने उस प्रांत के विभाजन के विरोधस्वरूप जो बहिष्कार आंदोलन आरम्भ किया वह विधिसम्मत था और है। इस अधिवेशन में भी यह नही बताया गया कि लोगों का कर्त्तव्य क्या है। 1907 के सूरत अधिवेशन में, दलगत विभेद के पश्चात बहिष्कार का नामोल्लेख मात्र भी छोड़ दिया गया।

कलकत्ता कांग्रेस में चार महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए जो स्वशासन बहिष्कार स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा के बारे में थे। वस्तुतः वे प्रस्ताव न होकर विचारों की अभिव्यक्ति ही थे। जहां तक स्वदेशी का सम्बन्ध है, वे वहां तक पहुंच पाए? देश के मिल मालिकों ने कांग्रेस के साथ सहयोग करने के बदले, अपने माल के दाम चढ़ा कर बहुत अधिक लाभ उठाने की ही कोशिश की।

बहुचर्चित बहिष्कार अंग्रेज हित साधना पर काफी अधिक प्रभाव डालने में असफल रहा। कुछ बड़े-बड़े नगरों में कभी-कभी विलायती कपड़ा की होली जला कर शासकों के विरुद्ध व्याप्त लोगों का रोष प्रदर्शित किया गया। कुछ कांग्रेसजनों ने स्वदेशी माल के ही उपयोग का व्रत लिया। जहां तक राष्ट्रीय स्कूलों की बात है उनकी संख्या तो उंगलियों पर गिनी जा सकती थी। स्वयं राष्ट्रीय शिक्षा के पक्षपोषक भी अपने बच्चों को उन स्कूलों में नहीं भेजते थे। इन प्रस्तावों का एक प्रभाव अवश्य स्वीकार करना पड़ता है—देश में राष्ट्र भावना फैलती जा रही थी और सरकार के प्रति विरोध बढ़ रहा था।

गोखले और नरम दल के दूसरे सदस्यों का विचार था कि लोगों के तैयार न होने के कारण सरकार के साथ प्रत्यक्ष रूप से संघर्ष करना कठिन था। अंग्रेजी सरकार की सदाशयता और उदारहृदयता पर से उनका विश्वास अभी पूरा नहीं उठा था।

अब सूरत कांग्रेस के लिए मैदान तैयार हो गया था। इससे पहले कि नेता सरकार के साथ लड़ाई में उलझते, स्वयं उन्हीं में परस्पर युद्ध होने की स्थिति पैदा हो गई थी। उधर सरकार भी चुप नहीं बैठी थी वह अपना दमन चक्र तीव्र करती जा रही थी। उस समय वायसराय लार्ड मिंटो के हाथ में थी और उन्होंने दमन शक्तियों को बहुत अधिक छूट दे रखी थी।

बंगाल पहले ही काबू से बाहर हो चुका था अब पंजाब की बारी आई। पंजाब के गवर्नर ने मार्ले के नाम पत्र लिखे, जिनमें उसने वहां इस तरह की स्थिति चित्रित की जिससे कोई भी व्यक्ति यह निष्कर्ष निकाल सकता था कि पंजाब में या तो गदर हो गया है या होने वाला है। इसमें सन्देह नहीं है कि पंजाब में कुछ घटनाएं घटित हो रही थीं। परन्तु वे उतनी चिन्ताजनक नहीं थीं। उक्त खलबली के परिणामस्वरूप लाला लाजपतराय और सरदार अजीत सिंह को गिरफ्तार करके 9 मई, 1907 को मांडले निर्वासित कर दिया गया। भारत में स्थिति संकटपूर्ण तो पहले ही थी, निष्कासन ने उसे और भी भयंकर बना दिया।

गोखले उस समय कांग्रेस द्वारा पास किए गए प्रस्तावों की व्याख्या करने और गरम दल वालों द्वारा जारी की जा रही व्याख्याओं का निवारण करने के विचार से उत्तर भारत का दौरा कर रहे थे। उनके भाषणों की बहुत सराहना हो रही थी। गोखले उस समय कांग्रेस के मंत्री थे और उन्हें बहुत काम करना पड़ रहा था। कांग्रेस संगठन को अविभक्त बनाए रखना था। उधर सरकार को इस बात के लिए तैयार किया जाना था कि वह 'सुधारों' का काम तेजी के साथ आगे बढ़ाए। सरकार की दमन नीति के कारण उत्पन्न जनता के रोष को भी सम्भालना था। उनके अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रखा जाना आवश्यक था। उन्हें तथा मेहता को कांग्रेस को घिसे पिटे रास्ते पर ही चलाने का भार भी सहना पड़ रहा था। काम बहुत ही कठिन था। यह सच है कि गोखले ने अपने आपको मेहताजी में पूर्णतया विलीन तो नहीं किया था, परन्तु उनके लिए

गया। परस्पर विरोधी पक्षों के दल वहां आ डटे। अरविन्द घोष और तिलक ने सूरत के विभिन्न भागों का दौरा करके वहां भाषण दिए विरोधियों ने भी ऐसा ही किया। धमकियों भय तथा आशंकाओं के कारण सूरत का वातावरण तनावपूर्ण हो गया।

अधिवेशन का दिन आया। पंडाल खचाखच भरा था और बाहर भी लोगों की भीड़ थी। समझौता कराने के प्रयास विफल हो चुके थे। नेता एक एक करके आए। किसी का जयजयकार हुआ किसी पर आवाज कसी गई—अनदेखा माना कोई भी न रहा। आरम्भ में अमंगलसूचक शान्ति व्याप्त थी। स्वागत समिति के सभापति को अपना भाषण पढ़ सुनाने की अनुमति मिल गई थी। उसके उपरान्त शांति भंग हो गई। नरम दल वालों के अग्रपुरुष सुरेन्द्रनाथ बनर्जी अध्यक्ष पद के लिए डा० घोष का नाम पेश करने के लिए उठे। उनके उठते ही पण्डाल शोर और चिल्लाहट से भर गया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की सिंहध्वनि भी उस कोलाहल में विलीन हो गई। दस मिनट तक पंडाल में कोहराम मचा रहा। यह संकट अप्रत्याशित था। गोखले और मेहता बहुत चिन्तित जान पड़ रहे थे। सभापति ने अधिवेशन स्थगित कर देने की घोषणा कर दी, ताकि मध्यस्थों को बातचीत चलाने के लिए समय मिल सके। दोनों पक्ष यह तो चाहते थे कि भद्दे दृश्य उपस्थित न हों, परन्तु सारभूत बातों पर समझौता करने के लिए तैयार न थे। राष्ट्रवादी दल रात भर यह कोशिश करता रहा कि वह नरम दल वालों को अपने पक्ष में कर ले या दोनों पक्षों के लिए स्वीकार्य कोई सूत्र खोज निकाले परन्तु वे लोग तिरस्कार के ही भाजन बने। अब व्यवस्थित ढंग से अधिवेशन का संचालन करने की समस्त आशा समाप्त हो गई।

अगले दिन अधिवेशन का आरम्भ दिखावटी सुगमता के वातावरण में हुआ। भाषण देते समय सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को रोका टोका न गया और उन्होंने अपना पिछले दिन का अधूरा भाषण पूरा कर लिया। उन्होंने डा० घोष का नाम पेश किया। और मोतीलाल नेहरू ने उसका समर्थन किया। उस पर मतदान हुआ। उसी समय पंडाल में अचानक उपद्रव-सा मच गया। कुछ लोग पक्ष में चिल्लाए कुछ विपक्ष में। सभापति ने जल्दी से डा० घोष को निर्वाचित घोषित कर दिया और डा० घोष ने अध्यक्ष का आसन ग्रहण कर लिया।

तिलक पहले ही एक सक्षिप्त टिप्पणी के रूप में यह सूचना दे चुके थे कि जब अध्यक्ष का नाम प्रस्तावित और समर्थित किया जाएगा, उस समय वह *कार्यस्थगन प्रस्ताव के रूप में एक रचनात्मक प्रस्ताव पेश* करेंगे। अपने इस निश्चय को कार्य रूप देने के लिए जैसे ही वह मच पर चढ़े, पडाल में अव्यवस्था फैल गई। कुर्सियां और जूते उछाले जाने लगे। तिलक अपने स्थान पर डटे रहे। गोखले इस भय से कि कहीं कोई उन पर प्रहार न कर बैठे दोनों बाहें फैला कर उन्हें बचाने के लिए उनके सामने आ खड़े हुए। पुलिस ने घटनास्थल पर पहुंच कर पडाल खाली कराया। उन अप्रिय घटनाओं का उत्तरदायित्व दोनों पक्ष एक-दूसरे पर डालने लगे। सत्य यह है कि न तो नरम दल वाले निर्दोष थे, न राष्ट्रवादी। दोनों दल अपनी ताकत आजमाना चाहते थे, परिणाम यह हुआ कि वह अधिवेशन ही कुछ मिनटों के अंदर बहुत ही अशोभन *रीति से समाप्त हो गया।*

उन सभी खेदजनक कारवाइयों में गोखले ने सर्वाधिक सुंदर ढंग से अपना काम किया। कांग्रेस के इतिहास में जो मोड़ आ रहा था, उसका उन्हें दुख था, परंतु वह यह निश्चय नहीं कर पाए थे कि उस वस्तुस्थिति पर विजय कैसे पाई जाए। तिलक से उन्हें व्यक्तिगत रूप से कोई घृणा नहीं थी और तिलक यह बात जानते भी थे। गोखले के विषय में अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि वह निष्क्रिय रहे।

उक्त परिस्थितियों के कारण अध्यक्षीय भाषण वास्तव में पढ़ा तो न जा सका था, परंतु वह समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ। उसमें राष्ट्रवादियों के विषय में अनेक आपत्तिजनक बातें कही गई थीं। प्रस्तावित समझौते की एक शर्त यह रखी गई थी कि वे बातें निकाल दी जाएंगी। समझौता न हो पाया था अतः वे शब्द भी नहीं निकाले गए।

अधिवेशन आरम्भ होने से पहले यदि प्रस्तावों के मसौदे प्रतिनिधियों के हाथों में पहुंच जाते तो इस सम्पूर्ण काण्ड से बचा जा सकता था। आखिरकार अध्यक्ष का महत्व गौण हो था। वह तो प्रतिनिधि कहा जाता था परन्तु प्रस्तावों का महत्व तो उससे कहीं अधिक था क्योंकि उनका उद्देश्य होता है लोगों के विचार व्यक्त करना और राष्ट्र का मार्गदर्शन करना।

सूरत में होने वाले उपयुक्त दलगत विभेद के बाद गोखले ने कांग्रेस के महामन्त्री के नाते एक विस्तृत वक्तव्य जारी किया। उसमें उन्होंने अधिवेशन का स्थान नागपुर से बदल कर सूरत कर देने के कारणों पर प्रकाश डाला। लाजपतराय की नामजदगी रद्द की जाने के बारे में वक्तव्य में यह कहा गया कि स्वागत समिति और यदि उनकी हार हो जाती तो उनकी देशभक्तिपूर्ण सेवाओं के लिए यह अपमान की बात होती। गोखले ने प्रस्तावों के मसौदे के इतिहास का भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया। मसौदे तैयार करने का भार कांग्रेस कार्यालय पर नहीं था। उन दिनों यह काम स्वागत समिति किया करती थी। क्योंकि यह काम उसके मन्त्री नहीं कर सकते थे अत यह काम गोखले को सौंप दिया गया था। गोखले को 15 दिसम्बर को आवश्यक कागजपत्र मिले। उन्होंने यह तो निश्चित कर लिया था कि प्रस्तावों के विषय क्या रहेंगे परन्तु वे उनके मूलपाठ 24 दिसम्बर तक भी तैयार नहीं कर पाए थे। गोखले ने यह उल्लेख किया कि कलकत्ता अधिवेशन के समय प्रस्ताव अंतिम क्षण तक तैयार नहीं हो पाए थे परन्तु उस विलम्ब के कारण किसी ने कोई आपत्ति नहीं की थी। फिर सूरत में इस सम्बन्ध में आपत्तियां क्यों उठाई गई? उन्होंने यह भी कहा कि स्वागत समिति द्वारा तैयार किए गए प्रस्ताव अन्तिम तो नहीं थे उन्हें बदला सुधारा या छोड़ा जा सकता था। इस सम्बन्ध में व्यर्थ उपद्रव मचा देने का आरोप उन्होंने तिलक पर लगाया। गोखले का कहना था कि कांग्रेस पर उन लोगों का नियन्त्रण होने और उक्त नियन्त्रण अपने हाथ में लेने में असमर्थ रहने के कारण तिलक कांग्रेस को बदनाम करना चाहते थे।

जहां तक स्वयं प्रस्तावों का सम्बन्ध था गोखले ने कहा था कि उन्होंने तिलक को यह बता दिया था कि सूरत अधिवेशन के लिए प्रस्ताव पास करते समय कलकत्ता अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्तावों को आधार बनाया गया है। उन्होंने बताया कि मुद्रित प्रस्तावों की एक प्रतिलिपि 24 दिसम्बर को तिलक को दिखा दी गई थी। मुख्य प्रस्ताव जो विवादास्पद था, स्वराज के बारे में था। उन्होंने यह भी बताया कि ऐसे कुछ शब्द प्रस्ताव में बदल दिए गए थे, जिन पर तिलक ने आपत्ति की थी। स्वदेशी के सम्बन्ध में 'कुछ त्याग करके भी' शब्द निकाल दिए गए थे परन्तु यह भूल लिखने में हो गई थी जिसे अविलम्ब ठीक कर दिया

गया था। गोखले ने कहा कि जहाँ तक बहिष्कार की बात है, उन्होंने उसे केवल सूती कपड़े तक सीमित रखा है क्योंकि पहले ही इस शब्द की व्याख्या बहुत विस्तृत रूप से करके लोग इसमें सरकारी संस्थाओं और शासन का बहिष्कार भी शामिल करने लग गए थे। उन विचित्र और विस्तृत व्याख्याओं से बचने के लिए उन्हें बहिष्कार को एक वस्तु विशेष के साथ जोड़ देना आवश्यक जान पड़ा। गोखले ने तिलक पर यह आरोप भी लगाया कि तिलक ने तो पहले से ही कांग्रेस अधिवेशन में अव्यवस्था पैदा करने का निश्चय कर लिया था।

दूसरी ओर तिलक ने एक विस्तृत वक्तव्य दिया जिसमें उन्होंने उन घटनाओं की अपने ढंग से व्याख्या कर दी और अपने कामों को उचित ठहराया।

उन अशोभन घटनाओं का उत्तरदायित्व चाहे जिस पर हो उनका परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस की एकता भंग हो गई और उस संस्था ने अपेक्षाकृत निष्क्रियता की अवधि में प्रवेश कर लिया। परस्पर विरोधी विचारधाराओं के दो वर्ग एक संगठन में बने नहीं रह सकते—सूरत में हुए अलगाव विभेद का यही महत्वपूर्ण निष्कर्ष था।

इस तूफान के बाद नरम दल वालों और राष्ट्रवादियों ने उसी दिन अर्थात 28 दिसम्बर को सूरत में अलग-अलग बैठकें कीं। नरम दल वालों ने एक संकल्प-पत्र तैयार कर रखा था, जिस पर 'कन्वेंशन' के रूप में आयोजित उस बैठक में भाग लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति को हस्ताक्षर करने थे। राष्ट्रवादियों और नरम दल वालों ने पहले ही अपने-अपने घोषणा पत्र प्रकाशित कर दिए थे। नरम दल वालों द्वारा घोषणा-पत्र में स्वदेशी, बहिष्कार अथवा राष्ट्रीय शिक्षा का उल्लेख नहीं किया गया था। उस पर रास बिहारी घोष, मेहता, गोखले, बनर्जी, वाचा तथा अन्य महानुभावों के हस्ताक्षर थे। दूसरे पक्ष द्वारा प्रचारित घोषणा-पत्र में उन विषयों का विशेष उल्लेख था जिन्हें नरम दल वालों ने छोड़ दिया था। उस पर तिलक, अरविन्द घोष तथा अन्य महानुभावों के हस्ताक्षर थे। लाजपतराय ने दोनों में से किसी भी घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किए थे। स्वराज्य की मांग दोनों घोषणापत्र [illegible] था, परन्तु नरम दल वालों के घोष [illegible] वक्तव्य और उत्तरदायित्व जोड़ [illegible]

की बैठक म एक-दूसरे पर कीचड उछालन के अतिरिक्त कोई विशेष काम न हो पाया। जब तक दोना पक्षा का मच एक था तब तक व अपने विचार व्यक्त करने म सयम से काम लेते रहे थे, परन्तु सयम का वह बधन टूट जान पर अब दोना दल अपनी बात खुल कर कहन लगे थे। इस विभेद से केवल सरकार को प्रसन्नता हुई। काग्रेस की उस दुबलता ने सरकार को बल प्रदान किया। उस वस्तुस्थिति के सम्बध म मार्ले ने मिटो का एक पत्र लिखा, जिसम गोखले के बारे म यह विचार प्रकट किया गया था—"पिछले बारह महीनो मे प्राय यह साचता रहा हू कि दल व्यवस्थापक के रूप म गोखले बच्चा ही है। वस्तुत नता बनने के आकाक्षी किसी भी राजनीतिज्ञ के लिए यह आवश्यक है कि वह झीकता कभी न हो जबकि गाखले सदैव झीकता रहता है।'

यह निणय इस बात का स्पष्ट द्योतक है कि गोखले की शक्ति के स्वरूप तथा उसके मूल रूप स्रोता से यह निर्णायक अनभिज्ञ था।

हम सूरत की घटनाओ के बार म किसी निणय पर पहुचने की जरूरत नही। यह सच होने पर भी काग्रेस पर नरम दल वालो का नियन्त्रण था, उस दल की शक्ति म इसस कोई वद्धि नही हुई। राष्ट्-वादिया की शक्ति इसलिए नही बढ पाई थी कि सरकार न उनके प्रति स्वेच्छाचारितापूण नीति का पालन किया। नरम दल वाले धैयपूवक सरकार स यह प्राथना करने के प्रयास म लगे रहे कि वह उन्हे कुछ न कुछ शक्ति सौप द। राष्ट्रवादिया न समझ लिया कि शक्ति दूसरा की कमजोरिया प्रकट कर देने म नही, स्वय अपने सगठन को सबल बनाने म निहित होती है। सूरत म हुई पराजय न स्पष्ट कर दिया कि नरम दल वाला को लोगा का समथन इसलिए नही मिल पाया कि व लोग वही काम न करने पर तुले थ जा जनता का सामान्यत प्रिय थे।

तिलक का गाखले स नाराज हान का वास्तव म कोई कारण नही था। वह जानत थे कि गोखले को कुछ काम अपनी इच्छा के विरुद्ध करने पडत थे। किसी दल विशेष क साथ गठबधन कर लेन पर उनक लिए उसका अनुशासन मानना अनिवाय हा गया था। गाखले के बार म अधिक स अधिक यही कहा जा सकता था कि वह अधिक आग्रहशील नही थे। गाखले चाहते थे कि सभी दला की शक्ति इकट्ठी कर ली

जाए, ताकि उसकी सहायता से सरकार से देश के लिए अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके। सूरत में हुए विभेद ने उनकी योजनाओं पर पानी फेर दिया था। उन्हें अनुभव हो रहा था कि सरकार अब किसी न किसी बहाने से उतना लाभ पहुचाने से भी पीछे हट जाएगी जितना वह अन्यथा दे देती।

अत 1907 और उसके बाद के वर्ष भारत के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण रहे। गोखले ने यह आवश्यक समझा कि वह इग्लैण्ड जाए और अपने मधुर तर्कसगत ढग से मार्ले को इस बात के लिए तैयार कर ले कि वह भारत में जो घटनाए हो चुकी हैं या हो रही हैं, उनके बावजूद सुधारो से सम्बन्धित अपनी योजनाओं का काम आगे बढाए।

16 सुधारों की कहानी

गांधीजी की तरह गोखले भी हृदय परिवर्तन के लिए समझाने बुझाने के तरीकों पर भरोसा रखते थे पर गांधीजी की तरह सीधी कार्रवाई का सहारा उन्होंने कभी नहीं लिया। इस तरह के नेता का काम काफी कठिन होता है।

गोखले यदि सरकारी कामों में सहयोग देते तो वह सरकार में किसी भी ऊंचे पद पर प्रतिष्ठित हो सकते थे। सी० आई० ई० (कम्पेनियन आफ दि इण्डियन एम्पायर) की उपाधि उन्होंने सम्भवतः इसीलिए स्वीकार की थी जिससे कि वह दिखा सकें कि सरकार के कोई चिरस्थायी विरोधी नहीं थे और ऐसा वातावरण तैयार हो जाए जिसमें उनकी बात सुनी जाए। अपने एक वार्षिक अधिवेशन का अध्यक्ष बना कर कांग्रेस उन्हें अधिकतम गौरव प्रदान कर चुकी थी। सरकार का भी उनके बिना काम नहीं चलता था, क्योंकि वह धीर और गम्भीर थे। जहां तक आस्था की बात है गोखले सयताचारी और उदारतावादी थे। उन्होंने जो मार्ग निर्धारित कर लिया था उससे उन्हें कोई विचलित नहीं कर सकता था। कुछ कांग्रेसी उन्हें अपनी भांति अतिवादी बनाना चाहते थे। दूसरी ओर सरकार यह चाहती थी कि वह धैर्यपूर्वक तथा सतत उसके साथ बने रहें। उन्होंने इन दोनों में से किसी के हाथों में अपने को न छोड़ा। वह तो उसी में संतुष्ट रहे कि स्वयं अपने प्रति तथा उस लक्ष्य के प्रति सच्चे बने रहें जिसको उन्होंने हार्दिक रूप से [illegible] किया। वह जानते थे कि इस समय देश में दो शक्तियां काम कर रही हैं—समय के साथ कदम मिला कर चलने में सरकार की [illegible] और अतिवादी अथवा गरम दल वालों की अधीरता।

आइए हम सूरत में हुए विभाजन के [illegible] की घटनाओं पर दृष्टि डालें। चुनाव के अनुसार [illegible] हो गई थी और ब्रिटेन में शासन सत्ता उदार [illegible] थी। राजनीति-दर्शनवेत्ता मार्ले भारत मन्त्री बन गए थे [illegible] भारत के वाइसराय

इस देश के उदारतावादी इसे भारत के हितसाधन की दिशा मे एक अच्छा सकेत समझ रहे थे। गोखले 14 अप्रैल, 1906 को तीसरी बार इग्लैण्ड के लिए रवाना हुए। बगाल के साथ किए गए अत्याचार का शमन करने और राजनैतिक सुधारो का जारदार ढग से पक्षपोषण करने की जरूरत थी। गोखले ने भारत-मन्त्री और उप भारत मन्त्री से भेंट की। उन्होने अनेक सावजनिक सभाओ म भी भाषण दिए। लिवरपूल में दिए गए एक भाषण मे उन्होंने अपने श्रोताओ के सामने यह दिल हिला देने वाले तथ्य उपस्थित किए कि दस वष की अवधि मे दो करोड व्यक्तियो को भूख के कारण प्राणो से हाथ धोना पडा, छ-सात करोड व्यक्ति जानते ही नही कि समुचित भाजन का अथ क्या हाता है और मत्युदर म निरन्तर वद्धि हा रही है। उन्होने उस अपरिमित हानि पर भी प्रकाश डाला, जो कजन के शासन काल म भारत को उठानी पडी।

पूर्वी बगाल का शासनाध्यक्ष वैम्पफाइल्ड फुलर अपनी सत्ता का प्रदशन और प्रयाग करने मे मानो सभी सीमाए पार कर गया था। उसन जुलूसा पर रोक लगा दी और छात्रा तथा अध्यापका को पुलिस की निगरानी मे रखा। इन कामा न लागा को उद्विग्न कर दिया। बारीसाल के प्रान्तीय सम्मेलन मे भाग लने के लिए जाते समय सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को, सम्मेलन के मनोनीत अध्यक्ष और प्रतिनिधिया सहित, इस अपराध मे गिरफ्तार कर लिया गया कि वे ऐसे जुलूस के रूप मे जा रहे थे जिसम 'वन्देमातरम्' के नारे लगाए जा रहे थे। उन पर 200 रुपये जुर्माना किया गया और यह कहने पर कि मेरे साथ अपमानजनक गति से बर्ताव किया गया है, जुर्माना और बढा दिया गया। यह अप्रल, 1906 का बात है। गाखल न गम्भीर रूप से यह मामला उठाया।

बगाल म आतक का शासन था। गिरफ्तार हाने अथवा पुलिस की निदयतापूण मार खाने के लिए तैयार हुए बिना कोई व्यक्ति वन्देमातरम्' का नारा नहीं लगा सकता था। कम आयु के छात्रो पर तो फुलर के शासन काल म तूफान ही उठा दिया गया था। गोखले ने माग की कि इस बात की जाच होनी चाहिए कि समाचारपत्रा म प्रकाशित रिपार्टें ठीक हैं या नही और यदि वे सत्य हैं ता अधिकारिया को उनकी स्वेच्छाचारिता के लिए दण्ड दियाजाएमाल और वाइसराय मिंटा

दोनों ही गोखले के पक्ष का औचित्य स्वीकार करते थे। फुलर से, अपने कुछ कामों का स्पष्टीकरण करने को कहा गया। सिराजगंज हाई स्कूल में कुछ लड़कों पर प्रत्यक्षतः 'वन्देमातरम्' के नारे लगाने अथवा ऐसे ही अहानिप्रद कामों के लिए दण्डनीय अभियोग चलाए गए थे। फुलर ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से कहा कि वह उस स्कूल तथा कुछ और स्कूलों की मान्यता वापस ले ले। भारत सरकार को बीच में पड़ना पड़ा, परन्तु फुलर सुनना कुछ नहीं चाहता था। उसने सरकार को यह उत्तर लिख भेजा कि विश्वविद्यालय को उसके आदेश का पालन करना ही होगा, नहीं तो वह त्यागपत्र दे देगा। इस धमकी का स्वागत हुआ और उसका त्यागपत्र स्वीकार कर लिया गया। फुलर यह नहीं समझता था कि सरकार उसे इस तरह उखाड़ फेंकेगी। मार्ले ने अपने 'रिकलेक्शन्स' में लिखा है कि फुलर सामान्य सरकारी काम करने लायक तो था, परन्तु मैं समझता हूं कि बंगाल की स्थिति संभालने की योग्यता उसमें इससे अधिक नहीं है जितनी योग्यता मुझमें इंजन चलाने की है। फुलर के सहयोगियों ने इस घटना से सबक सीखा और उन्होंने बंगाल में लोगों की भावनाओं को कुचलने का प्रयास नहीं किया। इस परिवर्तन का श्रेय गोखले के सशक्त हस्तक्षेप को दिया जा सकता है।

इंग्लैण्ड में गोखले को कुछ और काम भी करने थे—बंग भंग रद्द कराना था और इस तरह के अनुचित कामों की पुनरावृत्ति पर रोक लगवानी थी। मार्ले के मन में यह बात बैठा देने का भी उन्होंने भगीरथ प्रयास किया कि जब तक भारतीयों को काफी हद तक सत्ता नहीं सौंप दी जाएगी, तब तक असन्तोष बना रहेगा। गोखले ने मार्ले के साथ कई बार भेंट की। गोखले ने लिखा है कि वे मुलाकातें बहुत उत्साहवर्धक रहीं। अपनी एक भेंट में गोखले ने यह सुझाव दिया कि इस बात का पता लगाने के लिए एक शाही आयोग की नियुक्ति की जानी चाहिए कि उस समय लोगों का सरकार के साथ जितना सहयोग-सम्बन्ध था वह बदली हुई परिस्थितियों में काफी था या नहीं और यदि वह काफी नहीं था तो उसे बढ़ाने के लिए क्या कदम उठाए जाने चाहिए। शाही आयोग का यह सुझाव मूर्त रूप ग्रहण न कर सका, परन्तु मार्ले और मिंटो स्थिति का अध्ययन करते रहे। और वह अधिक तो नहीं, कुछ न कुछ करने के लिए आतुर अवश्य रहे।

कर्जन द्वारा किए गए बग भग के बाद भारत उद्विग्न हो गया और देश म क्रान्तिकारी तत्व जोर पकडने लगा। यह सौभाग्य की बात है कि उस समय इग्लैण्ड मे शासन-सत्ता उदार दल के हाथ मे आ गई थी। यह भी सौभाग्य की बात थी कि भारत के तत्कालीन प्रधान सेनापति किचनर के साथ मतभेद पैदा हो जाने के कारण कर्जन अपने पद से त्यागपत्र दे चुके थे। यदि कर्जन वाइसराय बने रहते तो कोई नही कह सकता कि भारतीय आदोलन क्या रूप ग्रहण न कर लेता। इस प्रकार गोखले और उन जैसे विचार रखने वाले अन्य नेताओ को सरकार को समझाने के लिए काफी अवसर मिल गया कि बल प्रयोग द्वारा उस रोग का इलाज नही हो सकता। मार्ले और मिंटो के पक्ष मे इतना तो मानना ही पडेगा कि उन्होंने कर्जन की गलत नीति का पालन नही किया और चुपचाप उसके विरुद्ध काम करते रहे। फुलर का त्यागपत्र स्वीकार कर लिया जाना इसका एक प्रमाण था।

1917 मे प्रकाशित, मार्ले कृत 'रिक्लेक्शन्स' से पता चल जाता है कि मार्ले का मस्तिष्क उस समय किस दिशा म काम कर रहा था। वह ऐसा कुछ काम कर देने के लिए, उत्कठित थे, जिससे राष्ट्रवादी तत्व की पूर्ण सतुष्टि भले ही न हो पाए, परन्तु लोगो के आक्रोश का शमन तो हो ही जाए।

गोखले ने 1906 मे मार्ले स कुल मिलाकर पाच बार भेंट की। अंतिम भेंट के बाद नरेश अप्पाजी द्रविड के नाम भेजे गए पत्र में गोखले ने लिखा था—"वह (मार्ले) ऐसे एकमात्र मित्र है (इस बात को मै सत्य से अधिक और कुछ नही मानता हू) जो उन अपराजेय कठिनाइयो के बावजूद रात दिन हमारे हितो के लिए युद्ध कर रहे है, जिनकी अपराजेयता को भारतीय समस्याओ की उनकी अपर्याप्त कम जानकारी ने और भी बढा दिया है। अत हम अपने वास्तविक शत्रुओ को छोडकर उन्हें अपना निशाना नही बनाना चाहिए।" 2 अगस्त को मार्ले न मिंटो को जो पत्र लिखा, वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है और यहा उसे उद्धृत करना समीचीन है—"कल पाचवी और अन्तिम बार गोखले के साथ मेरी बातचीत हुई। हमारे लिए इसम बहुत अधिक लाभ है कि उनके साथ हमारा मित्रभाव बना रहे। मुझे जो कुछ पता लग पाया है उसके आधार पर मेरा विश्वास है कि हाउस आफ कामन्स के भारतीय वर्ग पर उनका

सबसे अधिक सत्प्रभाव पडा है और उन्होने साहसपूर्वक उन लोगो के सामने मेरे भाषण को कल्याणप्रद ठहराया जो उसे अस्पष्ट, भयाक्रान्त, हलका और सारहीन मानते थे । उन में राजनीतिज्ञो की सी बुद्धि है, प्रशासनात्मक दायित्व का महत्व वह समझते हैं और उन में व्यवहार कुशलता है । उन्होने यह बात मुझसे नही छिपाई कि अन्तत उनकी आशा और योजना है—भारत को स्वशासी उपनिवेशो का स्तर प्रदान करना। मैंने उनसे अपना यह विश्वास छिपाया नही कि बहुत समय तक—हमारे अपने छोटे-से जीवन काल से कही अधिक समय तक—उनकी वह आशा स्वप्नमात्र ही बनी रहेगी। फिर मैंने उनसे कहा—तुम्हारी दशा मे तर्कसम्मत सुधार करने के लिए इस समय अभूतपूर्व सुअवसर है। इस समय आपको एक ऐसा वाइसराय प्राप्त है जो पूर्णत आपके प्रति मित्रतापूर्ण है। आपको एक ऐसा भारत मन्त्री प्राप्त है, जिसे मन्त्रिमण्डल, हाई कमिश्नर दोनो [illegible] के समाचारपत्रो और जनता के भी उन लोगो का विश्वास प्राप्त है, जो भारत के बारे मे कुछ सोचते विचारते है। अत्यन्त महत्त्वपूर्ण [illegible] सिविल सेवा वर्ग वाइसराय का साथ देगा। इससे अधिक [illegible] स्थिति और क्या हो सकती है? एक वस्तु ऐसी अवश्य है जो [illegible] बिगाड सकती है—वह वस्तु है तुम्हारे अपने साथियो की [illegible] अविवेकशीलता। पूर्वी बंगाल मे उठाया तूफान उन्होंने यदि [illegible] के लिए एक पग भी आगे बढाना कठिन ही नहीं [illegible] हो जाएगा। मैं आपसे वचनबद्ध होने के लिए नही कहता। [illegible] निर्धारित करने का आपको पूरा अधिकार है [illegible] यह भी जानता हूं कि आपकी कुछ अपनी कठिनाइयां हैं। [illegible] से यह निश्चय किया है कि प्रभाव[illegible] [illegible] प्रयास अवश्य कर देखेंगे। यदि आपके व्याख्याता और [illegible] पर [illegible] को निकम्मा बनाने मे ही जुटे रहें—[illegible] के लिए ही [illegible] रहते हैं—तो सारा खेल खतम हो जाएगा।"

द्रविड के नाम मैंने [illegible] उसने कहा [illegible] इस बात का यथासम्भव [illegible] कि [illegible] की अनुदारतापूर्ण [illegible] । उन्होंने [illegible] से मिल लेना और [illegible]

मेरी ओर से उनसे यह प्राथना करना कि वह हमारे अपने देश की खातिर समाचारपत्रो पर इस बात के लिए अपना पूरा प्रभाव डाले कि आरम्भ मे ही भारतीय पत्र यह ऐलान न कर दें कि मार्ले के प्रति उन्हें कोई विश्वास नही है। मार्ले की कटु आलोचना रोकने के लिए गोखले ने यथासम्भव अधिकतम प्रयास किया, परन्तु सारी स्थिति उन्ही के हाथ मे तो थी नही। फुलर के त्यागपत्र के साथ उसके कामो का अन्त नही हुआ था। उसने प्रभावशाली बगाल मे सामूहिक विभेद के बीज बो ही दिए थे।

मार्ले सचमुच यह मानते थे कि भारत के लिए औपनिवेशिक ढग का स्वशासन सपने की ही बात है। ऐसी दशा मे वह भारत के राष्ट्रवादियो की आखो मे श्रद्धा के पात्र कैसे बन सकते थे? वे लोग समझते थे कि सरल-स्पष्ट गोखले को सरकार के लक्ष्यो की सिद्धि के लिए साधन बनाया जा रहा था। अपने एक निर्वाचन क्षेत्र म दिए गए भाषण म मार्ले ने कहा था—"उन (भारतीयो) म से कुछ लोग मुझस नाराज है। क्यो? क्योकि मैं उन्हें आकाश का चाद लाकर नही दे सका हू। मेरे हाथ मे कोई चाद है ही नही और यदि होता तो भी मैं उन्हें वह चाद देता नही।"

यह निणय करना कठिन है कि मार्ले ने ये शब्द एक दाशनिक और साहित्यकार के नाते कहे थे अथवा एक प्रशासक के नाते।

जब गोखले सितम्बर, 1906 मे बम्बई पहुचे उस समय भारत म स्थिति दिन प्रतिदिन अधिकाधिक उद्वेगपूण होती जा रही थी और गोखले को कोई निश्चित आधारभूमि प्राप्त नही थी। अपनी समूची करनी और कथनी मे सरकार का विरोध करने वाले लोग जनता को प्रिय थे। काग्रेस नरम दल वालो और शेष लोगो के रूप मे होने वाले वगभेद के किनारे आ पहुची थी।

यह अनुभव किया जा रहा था कि 'सुधारो' का भाग्य अनिर्णीत है। उलझन मे डालने वाली एक और बात पैदा हो चुकी थी—यह सन्देह किया जाने लगा था कि शासनतन्त्र ने मुस्लिम नेताओ को इस बात के लिए प्रेरित किया है कि वे एक प्रतिनिधिमण्डल के रूप मे वाइसराय से मिलें और अपनी मागो के लिए आग्रह करे। आगा खा के नेतत्व में आने वाले मुसलमानो के एक प्रतिनिधिमण्डल से लार्ड मिटो ने अक्तूबर,

1906 म शिमला म भेट की। वे चाहते थे कि भारत को जो कुछ दिया जाए उसमे से एक अलग भाग उन्हें प्राप्त हो। पुनर बगाल मे यह खेल खेल चुका था, कर्जन ने बग भग द्वारा उस पर अपनी मोहर लगा दी थी और मिंटो न भी अपने पूर्वाधिकारियो का ही अनुगमन किया। उस अविवेकपूण कदम के परवर्ती वर्षों मे अप्रत्याशित फल सामने आए।

मार्ले और मिंटो के बीच इस सम्बन्ध में पत्राचार हो रहा था कि सुधारो का क्या रूप दिया जाए। जून, 1907 में, बजट पर भाषण करते समय मार्ले ने परिकल्पित याजना की मोटी रूपरेखा प्रस्तुत की। भारत सरकार में शक्ति के अतिकेन्द्रीकरण पर विचार करने के लिए उन्होने एक 'शाही आयोग' का प्रस्ताव रखा था, केन्द्र में भी और प्रान्तो में भी विधान परिषदो का विस्तार किया जाना था। प्रसिद्ध व्यक्तियो की एक सलाहकार परिषद् की स्थापना की जानी थी और भारत-मन्त्री की परिषद् में दो भारतीय मनोनीत किए जाने थे। उक्त परिषद म तत्काल के० जी० गुप्ता और सैयद हुसैन बिलग्रामी की नियुक्ति कर दी गई।

इस उद्घोषणा से भारत में कोई हर्षोल्लास पैदा नही हो पाया। नरम दल वाले यह आशा करते, उस शुष्क निसार वक्तव्य के फल स्वरूप शीघ्र ही कोई न कोई मूत वस्तु सामने आएगी। जनता का आक्रोश बढता जा रहा था, क्योकि सरकार प्रतिनिधि सगठनो, सेवाओ तथा अन्य क्षेत्रो में पथक प्रतिनिधित्व की माग को प्रोत्साहन दे रही थी।

रैम्जे मैकाडनल्ड* ने कहा है—'अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना 30 दिसम्बर, 1906 को हुई। इस लीग को जो राजनैतिक सफलताए मिली ह वे इतनी ताजी ह कि उनका विशेष रूप से उल्लेख अनावश्यक जान पडता है। वे सफलताए इतनी उल्लेखनीय रही है कि उनके कारण स्वभावत यह शका की जाने लगी है कि दुर्भाग्यपूण प्रभाव अपना काम कर रहे हैं और मुस्लिम नेताओ को कुछ आग्ल भारतीय अधिकारियो ने प्रेरित प्रोत्साहित किया है और यह कि उक्त अधिकारियो ने शिमला और लन्दन मे घृणा के पूर्व निश्चित विचारो का प्रचार करके

---

*दि अवेकनिंग आफ इडिया

करने की उनकी इच्छा नही थी और उन्होने अब जो कुछ लिख भेजा है उससे तो यह दूरी सवथा प्रकट हो जाती है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि गोखले को मिन्टो का विश्वास प्राप्त नही था, वह उन्हें दूसरे पक्ष के उनके अपने देशवासियो से बेहतर नही मानते थे।

सुधार अधिनियम पास कर दिया गया, परन्तु तत्सबधी नियम तथा विनियम बनाने का काम वाइसराय पर छोड दिया गया। गोखले ने स्वय अधिनियम के सम्बन्ध मे तो असतोष व्यक्त नही किया, परन्तु उक्त अधिनियम के वास्तविक परिपालन से गोखले तथा अन्य अनेक व्यक्तियो को बहुत असन्तोष हुआ। जो नियम विनियम बनाए गए उनके द्वारा मानो बाए हाथ से सब कुछ लौटा लिया गया जो दाए हाथ से दिया गया था। अत वास्तविक शत्रु लन्दन स्थित राजनीतिज्ञ न होकर भारत में स्थित शासन तन्त्र ही रहा। भारत सरकार स्वदेश स्थित अपने स्वामियो के उद्देश्यो को नाकारा बनाने की कला खूब जानती थी। निष्कासितो और राजनैतिक दण्डापराधियो को चुनाव लडने से रोक दिया गया। गोखले ने इस बात की शिकायत की और मिन्टो उन पर बरस पडे—"हम भारत मे जोखिम उठाने के लिए तैयार नही है और जन साधारण के दृष्टिकोण का प्रतिनिधि होने का दावा करने वाले किसी एक व्यक्ति, उदाहरणत गोखले के विचार भी, ईमानदारी के नाते उनकी सन्देहानुकूलता के बावजूद, महत्वहीन और भ्रमोत्पादक हैं।"

एक और सदर्भ म मिन्टो न लिखा था—"मुझे यह कहते खेद होता है कि यह शरारत है और धोखे में डालने के इरादे से यह लिखा गया है। गोखले बातचीत द्वारा मेरे सामने यह आशय प्रकट नही कर सकते थे। उनमे यही सबसे बुरी बात है कि उनकी निरपेक्ष सत्यनिष्ठा पर विश्वास नही किया जा सकता।'

निरपेक्ष सत्यनिष्ठा का प्रत्यक्षत आशय यह था कि सरकार जो कुछ दे उसे आख मूद कर स्वीकार कर लेना। गोखले उस मिट्टी के नही बने थे।

मिन्टो के पत्र का मार्ले ने जो उत्तर लिखा उसमे स्पष्ट हो जाता है कि उनके दृष्टिकोण मे विशेष अन्तर नही था। मार्ले ने लिखा था—"गोखले और उनके पत्रो का उल्लेख तीसरे किसी व्यक्ति के सामने गम्भीरता

मुसलमानो के प्रति विशेष कृपा भाव दिखा कर हिन्दू और मुसलमानो के बीच वैमनस्य के बीज बो दिए ह।"

केवल मैक्डानल्ड का ही नहीं मार्ले का भी यही विश्वास था कि पार्थक्य की यह भावना मिंटो ने ही पैदा की। मिंटो के नाम 6 दिसम्बर, 1909 को भेजे गए एक पत्र मे मार्ले न लिखा था—"आपके मुसलमानी झगडे में मै आपका अनुगमन ता नही करूगा, परन्तु मै आदरपूवक आपको यह स्मरण अवश्य करा दना चाहता हू कि मुसलमानो क अतिरिक्त अधिकारो के दावे के विषय में आपने पहले-पहल जो भाषण दिया उसी ने सवप्रथम यह मुस्लिम खरगाश पैदा किया। मुझे विश्वास हो गया है कि मेरा फैसला सही था।'

मध्यस्थ होन के नात गाखले के लिए यह बहुत कठिन समय था। मार्ले के हृदय में उनके प्रति कुछ आदर अवश्य था, परन्तु मिंटो के विषय मे क्या कहा जाता, जो उन्हें हिन्दू ही समझा करते थे? मिंटो क पत्रा स पता चलता ह कि गाखले के बारे में उनकी कोई बहुत अच्छी राय नही थी। इस सम्बन्ध म उन्होंने समय-समय पर जो विचार व्यक्त किए, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—'वह सतुलित मस्तिष्क वाले सलाहकार नही बन सकत।" (मिंटो न यह विचार उस समय प्रकट किया था जब भारत मत्री की परिषद् में एक सलाहकार के रूप म गाखले की नियुक्ति का प्रस्ताव रखा था।) अन्यत्र उन्होंने कहा था—"गाखले को मैं जितना देख पाया हू उतने वह मुझे अच्छे लगे हैं और मैं यह कहने का तैयार नही हू कि अपने दल की अधिकाश विचार-सामग्री के साथ उनकी सहानुभूति है, परन्तु वह भयकर उपकरणा का प्रयोग कर रहे है।"

मिंटो ने मार्ले का यह भी लिखा—मन यह ता एक पल के लिए भी नही सोचा था कि नरम दल वाले हमारे सुधारो का स्वागत करेंगे, परन्तु मुझे यह आशा नही थी कि गोखले इतना भद्दा खेल खेलेंगे। उनका यह कथन निरथक है कि शासन तन्त्र ने काग्रेस का दमन किया है और उन्हें तथा उनके साथिया का हटा कर अलग कर दिया। स्वय अपनी राजनैतिक ईमानदारी पर जोर देने के साथ-साथ यदि वह हमारी सदेच्छाओ का समझ पात और भारत सरकार की यथासम्भव सहायता करते तो इस तरह वह एक बहुत उच्चकोटि का काम कर सकत थे। इस दिशा म मने उनके साथ खुल कर बातचीत की परन्तु स्पष्ट था कि हमारी सहायता

करने की उनकी इच्छा नही थी और उन्होंने अब जो कुछ लिख भेजा है उससे तो यह दूरी सर्वथा प्रकट हो जाती है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि गोखले को मिंटो का विश्वास प्राप्त नही था, वह उन्हें दूसरे पक्ष के उनके अपने देशवासियो से बेहतर नही मानते थे।

सुधार अधिनियम पास कर दिया गया, परन्तु तत्सबधी नियम तथा विनियम बनाने का काम वाइसराय पर छोड दिया गया। गोखले ने स्वय अधिनियम के सम्बन्ध म तो असन्तोष व्यक्त नहीं किया, परन्तु उक्त अधिनियम के वास्तविक परिपालन से गोखले तथा अन्य अनेक व्यक्तियो को बहुत असन्तोष हुआ। जो नियम विनियम बनाए गए उनके द्वारा मानो बाए हाथ मे सब कुछ लौटा लिया गया जो दाए हाथ से दिया गया था। अत वास्तविक शत्रु लन्दन स्थित राजनीतिज्ञ न होकर भारत में स्थित शासन तन्त्र ही रहा। भारत सरकार स्वदेश स्थित अपने स्वामियो के उद्देश्यो को नाकारा बनाने की कला खूब जानती थी। निष्कासित और राजनैतिक दण्डापराधियो को चुनाव लडने से रोक दिया गया। गोखले ने इस बात की शिकायत की और मिंटो उन पर बरस पडे--"हम भारत मे जोखिम उठाने के लिए तैयार नही है और जन साधारण के दृष्टिकोण का प्रतिनिधि होने का दावा करने वाले किसी एक व्यक्ति, उदाहरणत गोखले के विचार भी, ईमानदारी के नाते उनकी मन्देहानुकूलता के बावजूद, महत्वहीन और भ्रमोत्पादक है।"

एक और सदर्भ मे मिंटो ने लिखा था--"मुझे यह कहते खेद होता है कि यह शरारत है और धोखे में डालने के इरादे से यह लिखा गया है। गोखले बातचीत द्वारा मेरे सामने यह आशय प्रकट नही कर सकते थे। उनमे यही सबसे बुरी बात है कि उनकी निरपक्ष सत्यनिष्ठा पर विश्वास नही किया जा सकता।"

निरपक्ष सत्यनिष्ठा का प्रत्यक्षत आशय यह था कि सरकार जो कुछ दे उसे आख मूद कर स्वीकार कर लेना। गोखले उस मिट्टी के नही बने थे।

मिंटो के पत्र का मार्ले ने जो उत्तर लिखा उससे स्पष्ट हो जाता है कि उनके दृष्टिकोण मे विशेष अन्तर नही था। मार्ले ने लिखा था—"गोखले और उनके पत्रो का उल्लेख तीसरे किसी व्यक्ति के सामने गम्भीरता-

पूवक अथवा शब्न्श न करने के लिए आपने मुझे जो चेतावनी दी, उस पर मुझे हँसी-सी आ रही है। क्या आप अभी तक यह नहीं देख पाए है कि मैं बहुत अधिक सतक और वहमी आदमी हू ? मेरी उद्दतता क्षमा करें—परन्तु वस्तुत मुझे तो 'स्काट' पैदा होना चाहिए था। मेरा वास्ता चाहे 'पारनेल' के साथ पडे, चाहे गोखले अथवा राजनैतिक नस्ल के किसी और आदमी के साथ, मेरी तो यह आदत है कि मैं उस समय तक उनके शब्दो को उनके अर्थों में ग्रहण नही करता, जब तक म उसके पीछे छिपी चाल का पता नही चला लेता।"

गोखले के बारे मे इन दोना महानुभावा के ऐसे विचार थे, परन्तु गोखले के लिए इस बात का कोई महत्व नही था। दूसर उनके विषय मे क्या कहत या विचार करते है, इसकी चिन्ता न करके वह तो अपने देश के हितो को ही सबसे अधिक प्राथमिकता देते थे। हा, शका-सन्देह की प्रवृत्ति और जनता की निधनता तथा वेदनाओ की शासको की ओर से की जाने वाली उपक्षा उन्हें उद्विग्न कर देती थी।

1909 का भारतीय सुधार अधिनियम लोकतन्त्री ढाचे के विषय मे भारत की आशाए पूरी न कर सका। सम्पूण सत्ता केन्द्र म केन्द्रीकत हो गई, विधानाग पर कार्यांग का प्रभुत्व हो गया। भारत के शासन का दायित्व अन्तत ब्रिटिश पार्लियामेंट पर हो गया और प्रान्तीय सरकारा पर भारत सरकार का सुदढ शासन हो गया। नए सुधारा से राजनिकाय म निर्वाचन के लिए अधिक क्षेत्र सुलभ हो गया, विधानाग मे प्रश्न करने की छूट मिल गई और प्रस्ताव पेश करने की अनुमति प्राप्त हो गई। परन्तु उनके साथ ही उक्त अधिनियम ने पथक निर्वाचन क्षेत्रो के दोषपूण सिद्धात को भी लागू कर दिया, जिसके कारण सरकार के ढाचे के बारे में कोई वास्तविक प्रगति न हो पाई। राजनयिक बन्दी जेलो मे पडे सडते रहे, दमन नीति उग्रतर कर दी गई और बग भग के रूप मे किए गए राजनैतिक अन्याय का निवारण नही किया गया। यह काम आगे चल कर जाज पचम और हार्डिंग द्वारा किए जाने के लिए छोड दिया गया। यह था उस समय का वातावरण जब इन बहुचर्चित सुधारो को लागू किया गया।

इस सम्पूण कायकलाप मे गोखले की स्थिति बहुत कठिन हो गई। 1908 मे वह चौथी बार बम्बई प्रेसीडेंसी ऐसोसिएशन की ओर से,

सुधार लागू किए जाने से पहले मार्ले से बातचीत और बहस करने तथा उन्हें समझाने-बुझाने के लिए इंग्लैंड गए।

अपने देश के लिए गोखले ने अनथक परिश्रम किया, परन्तु उस समय उस काम में सफलता पाना मानो उनके भाग्य में नहीं बदा था। अन्तत ऐसे कार्यों में विजयश्री वरण करती ही है—अन्य अनेक देशभक्तो की भांति गोखले यही सोच कर सन्तुष्ट थे।

17 सूरत के बाद

सूरत मे हुए विभेद के बाद काग्रेस पर नरम दल वालो का प्रभुत्व हो गया, परन्तु जनता उससे दूर हट गई। गरम दल के प्रसिद्ध सदस्य जेलो म बन्द थे, जो वाहर रह गए थे उन्हे ऐसे नए नेता प्राप्त नही थे जिनके अधीन वे अपनी शक्तिया सचित करके पुराने नेताओ को चुनौती देते। फिर भी वग भग के परिणामस्वरूप पैदा होने वाली शौर्य भावना समाप्त नही हुई थी और न ही उस पर नियन्त्रण हो पाया था। जहा तक सरकार का सम्बन्ध था, उसमे दूरदर्शिता और अपने ही प्रशासन तन्त्र म विश्वास का अभाव था। वर्षो से सरकार मामूली मागो का भी विरोध करती चली आ रही थी। लोक सेवाओ पर वास्तव मे शासक वर्ग का एकाधिपत्य था और भारतीयो को उनसे वचित रखा गया था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के शब्दो मे सिविल सेवाओ का इतिहास तोडे गए वायदो का अटूट इतिहास रहा है। जैसा कि डा० गौड ने कहा था कि विश्व विद्यालय अधिनियम ने ज्ञान के द्वारा पर सोने के ताले लगा दिए जिन्हें सोने की कुजियो से ही खोला जा सकता था। पुलिस आयोग ने विशेष पुलिस सेवाओ से भारतीयो को अलग रखा था। फौजदारी कानून सशोधन अधिनियम, राजद्रोहात्मक सभा अधिनियम, सरकारी गोपनीय तथ्य अधिनियम, प्रेस अधिनियम, और कुछ अन्य दमनात्मक अधिनियमो के कारण शासक और शासितो के पारस्परिक सम्बन्ध कटु हो गए थे। उनके बीच शत्रुता तेजी से बढ रही थी। वग भग ने उसे और भी तीव्र कर दिया। बगाल के युवको का सगठन करने के कारण नौ व्यक्तियो को देशनिकाला दे दिया गया। 1908 म उस प्रान्त के प्रमुख समाचारपत्रो का दमन किया गया और प्रसिद्ध नेताओ को जेल में बन्द कर दिया गया।

30 अप्रैल, 1908 को मुजफ्फरपुर म एक गाडी पर दो बम फेंके गए जिनसे अभीष्ट व्यक्ति अर्थात वहा के कुख्यात जिला जज किंग्सफोर्ड की बजाय दो महिलाओ की हत्या हुई। इन हत्याओ के अपराध

मे खुदीराम बोस को फांसी द दी गई । स्वामी विवेकानद के भाई भूपेद्रनाथ दत्त न खुले आम हिंसात्मक कार्य का प्रचार किया, जिसके कारण उस वीर को बहुत लम्बी सजा सुना दी गई । परतु बगाल के युवक सभी परिणाम सहने को तयार थे । महाराष्ट्र म तिलक एस० एम० पराजपे तथा अय व्यक्तियो को कारावास भेज दिया गया । भारतीय काग्रेस के इतिहासकार डा० पट्टाभि सीतारमैया के कथनानुसार शीघ्र ही राजद्रोह इस दश से गायब हो गया । वस्तुत उस आदोलन ने गुप्त रूप ग्रहण कर लिया था और बमो पिस्तौलो का बोलबाला हो रहा था । जनवरी 1909 म मदनलाल ढींगरा ने लन्दन म कर्जन वाइली की हत्या कर दी और 21 दिसम्बर 1909 को एक थियेटर म नासिक के कलक्टर जक्सन को मार डाला गया । सावरकर और उनके साथी गुप्त सस्थाओ का सगठन कर रहे थे । सरकार ने वह आदोलन कुचल डालने के लिए अविलम्ब कदम उठाए । राज-द्रोहात्मक सभा विधेयक पर हुए वादविवाद म गोखले ने सरकार को यह चेतावनी द दी कि युवक काबू के बाहर होते जा रहे हैं और उन्हे काबू मे न रख पाने का दोष बजुर्गों पर नहीं लगाया जा सकता ।

मार्ले मिंटो सुधारो की घोषणा 1908 मे की गई, परन्तु उससे तनाव कम नही हुआ । गोखले बराबर कहते रहे थे कि यदि सुधारो म विलम्ब हो जाए तो उनका महत्व आधा रह जाता है और उनकी शोभा बिल्कुल जाती रहती है । आरम्भ म सुधारो का काग्रेस ने हार्दिक स्वागत किया, परन्तु आगे चल कर उनके वास्तविक परिपालन ने निराशा को ही जन्म दिया । सुधारो के अनुसार सर्वोच्च विधान परिषद मे सरकारी बहुमत होना था । अतिरिक्त 60 स्थानो म से केवल 27 निर्वाचित स्थान थे और मुसलमानो तथा कुछ अय वर्गों को विशेष प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया था ।

1909 म काग्रेस अधिवेशन लाहौर म हुआ । मदन मोहन मालवीय ने अध्यक्षता की । सुधारो के विषय म उक्त अधिवेशन म चार प्रस्ताव पास किए गए । पहले म धर्म के आधार पर पृथक निर्वाचन क्षेत्र बनाए जाने का विरोध किया गया था । दूसरे प्रस्ताव द्वारा सरकार से यह अनुरोध किया गया था कि यू० पी० पजाब, पूर्वी बगाल, असम और बर्मा म कार्यकारी परिषद बनाई जाए । तीसरे म, पजाब म

विनियमा के असतोषप्रद स्वरूप पर प्रकाश डाला गया था और चौथे मे इस बात पर असतोष प्रकट किया गया था कि सी० पी० और बरार (तत्कालीन मध्य प्रात) के लिए परिषद की व्यवस्था नही थी ।

1910 और 1911 मे काग्रेस ने 1909 के प्रस्तावा पर आग्रह किया और पृथक निवाचन क्षेत्रा का सिद्धात जिला बार्डो और नगरपालिकाओ के मामले मे भी लागू किए जाने का विरोध किया । 1912 और 1913 म काग्रेस ने केद्र और प्राता म निवाचित बहुसख्यक सदस्या के लिए माग की। विचित्र बात यह रही कि उचित अधिवेशन मे ऐसी भी एक धारा पास कर दी गई जिसका आशय यह था कि अग्रेजी न जानन वाले व्यक्तियो को काग्रेस सदस्यता के अयाग्य माना जाना चाहिए । काग्रेस तब तक जनता के बीच नही पहुच पाई थी और काग्रेस के सभी नेता अग्रेजी जानन वाले व्यक्ति थे ।

'सुधार' और उनका असन्तापजनक स्वरूप परवर्ती वर्षो म काग्रेस के प्रस्तावा का प्रधान विषय बना रहा । किसी और दिशा म न नेतत्व किया गया, न साचा गया । उधर समग्रत दश का माना उस सब काम के साथ कोई सम्बध ही नही था जा ऊपर-ऊपर किया जा रहा था । शिक्षित बग म क्षाभ था, निधनताग्रस्त लोगा को प्रकाश की काई किरण दिखाई नही दे रही थी, उद्योग उपेक्षित थे और दश इसलिए दुखी था कि उसकी ओर ध्यान नही दिया जा रहा था ।

देश मे जागी नई भावना अपन प्रभाव डाल रही थी । छात्रा के विरुद्ध जारी किए गए निषेधक आदेशा का परिणाम यह हुआ कि स्कूला का बहिष्कार किया गया और दश के कुछ भागा, विशेषत बगाल मे राष्ट्रीय शिक्षा स्थाना की स्थापना हो गई । इन सस्थाना का नारा था राष्ट्रीय पद्धतिया, राष्ट्रीय नियन्त्रण और राष्ट्रीय लक्ष्य सकल्प स्वदेशी का प्रचार दूर दूर तक होता जा रहा था । हथकरघा उद्याग का पुनरुद्धार हो गया । 7 अगस्त, 1905 का बहिष्कार का झण्डा फहराया गया । ये आदालन सरकार को परास्त तो नही कर पाए परन्तु उन्होने सरकार के विरुद्ध एक नई भावना और अपनी लक्ष्य सिद्धि के लिए एक नया दष्टिकोण पैदा करने मे बहुत सहायता पहुचाई। विकट कठिनाइया के रहत भी राष्ट्रीय आदोलन जोर पकडता जा रहा था ।

मार्ले और मिटो जानते थे कि वह नवीन शौय भावना बग भग के

कारण थी । प्रश्न था कि उसका शमन कैसे किया जाए ? जन आन्दोलन के दवाव से झुक जाना वे नहीं चाहते थे । देश में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने का कोई मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था । उन्होंने दिल्ली में सम्राट के राज्याभिषेक समारोह से लाभ उठाने का निश्चय किया । 12 दिसम्बर, 1911 को सम्राट जार्ज पंचम ने यह उद्घोषणा की—

"हम हर्षपूर्वक अपनी प्रजा को यह सूचित करते हैं कि अपने मंत्रियों की सलाह पर और अपने सपरिषद गवर्नर जनरल से बातचीत करने के उपरान्त, यह निश्चय किया गया है कि कलकत्ता के स्थान पर दिल्ली को इस प्राचीन राजनगरी को भारत सरकार की राजधानी बना दिया जाए । और इस स्थानान्तरण के परिणामस्वरूप इसके साथ ही साथ, यथासम्भव जल्दी से जल्दी बंगाल की प्रेसीडेन्सी के लिए सपरिषद गवर्नर पद बिहार, छोटा नागपुर और उड़ीसा के इलाकों के प्रशासन के लिए एक नए सपरिषद लेफ्टिनेंट गवर्नर पद और असम के लिए एक चीफ कमिश्नर पद बना दिया जाए। हमारी हार्दिक आकांक्षा है कि ये परिवर्तन हमारे प्रिय प्रजाजनों की सुख-समृद्धि के सम्वर्द्धन में सहायक हों।"

इस तरह कर्जन का सपना तहस-नहस हुआ और लोगों को यह अनुभव हो गया कि सरकार अविवेकपूर्वक जो गलत काम कर डालती है उसे कृपा भाव के सहारे नहीं, शक्ति के सहारे ही ठीक कराया जा सकता है ।

नए वाइसराय हार्डिंग की सरकार सभी कड़ियों को छोड़कर और नए ढंग से कार्य आरम्भ करके अपनी गरिमा का परिचय दे सकती थी परन्तु वैसा होना मानो भाग्य में नहीं बदा था । आन्दोलनकर्त्ताओं को डराने धमकाने वाले सभी दमनात्मक अधिनियम बने रहे और खण्डित बंगाल के पुनः एक हो जाने पर भी सरकार और जनता के हृदय एक न हो पाए । हार्डिंग अपेक्षतया कुछ अधिक लोकप्रिय वाइसराय रहे परन्तु लोगों का आक्रोश शान्त नहीं हुआ था, इसका प्रमाण इस बात में मिल जाता है कि जिस समय हार्डिंग एक हाथी पर सवार होकर जुलूस के रूप में नई राजधानी दिल्ली में प्रवेश कर रहे थे उस समय उन्हें मार डालने का प्रयत्न किया गया । उन पर एक बम फेंका गया परन्तु वह बाल-बाल बच गए । इसके परिणामस्वरूप अविलम्ब समाचारपत्रों से सम्बन्धित कानूनों का परिपालन और भी कठोरता से किया जाने लगा और शासक तथा शासितों के आपसी सम्बन्ध सुधरने के बजाय और खराब हो गए ।

यह सब होने पर भी, कांग्रेस ने 1912 में एक प्रस्ताव पास करके उनकी जीवन रक्षा के लिए उन्हें बधाई दी और उन पर किए गए उक्त आक्रमण की भर्त्सना की।

देश में होने वाली इन युगान्तरकारी घटनाओं में गोखले तटस्थ दर्शकमात्र नहीं बने रहे। सदा की भांति उन्होंने समस्याओं के समाधान के विचार से मध्यस्थता करने का प्रयास किया, परन्तु सरकार उनकी बुद्धिमत्तापूर्ण उचित बातें सुनने के लिए तैयार नहीं थी।

आइए, फिर सुधारों के प्रसंग पर ध्यान दें। 1908 में मद्रास अधिवेशन में गोखले ने एक भाषण दिया, जिसमें सुधारों की अच्छाइयां और बुराइयों की रूपरेखा प्रस्तुत की गई थी। उक्त उद्घोषणा को कांग्रेस के प्रयत्नों की आंशिक फलप्राप्ति ठहराते हुए उन्होंने यह विचार व्यक्त किया कि सुधारों से यथासम्भव अधिकतम लाभ उठाना चाहिए। उनका विचार था कि सुधारों के कारण लोकप्रिय उत्तरदायित्व का आरम्भ हो रहा था अतः भारतवासियों को उन सुधारों से असंतुष्ट नहीं होना चाहिए। इस सम्बन्ध में उनके दृष्टिकोण को साररूप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—'और क्योंकि इनके कारण भारत सरकार पृष्ठभूमि में चली जाएगी और क्योंकि यह सरकारी बहुमत मुख्यतः एक सुरक्षित शक्ति है, अतः व्यवहारकुशल व्यक्ति होने के नाते हम इस योजना से सन्तुष्ट हो जाना चाहिए। जिस रूप में यह योजना हमारे समक्ष पेश है, उसी रूप में हमें इसे साभार अंगीकार कर लेना चाहिए, क्योंकि इसे पूर्णरूपेण ही स्वीकार या अस्वीकार किया जा सकता है।'

गोखले के मतानुसार सरकारी ढांचे के तीन स्तर थे। सुधारों में निम्नतर स्तर अर्थात् स्थानीय स्वशासी संगठनों का भार पूरी तरह जनता को सौंप दिया गया था। मध्य स्तर में प्रान्तीय सरकारों का समावेश था। ऊपर के स्तर में केन्द्रीय सरकार (विधानांग सहित) थी। उन्हें कानूनी तौर पर तो नहीं, परन्तु व्यवहारतः गैर-सरकारी बहुमत प्राप्त था। केन्द्रीय कार्यांग और भारतमन्त्री के प्राधिकार में तो कोई परिवर्तन नहीं किया गया, परन्तु कुछ भारतीयों को सदस्य अथवा सलाहकारों के रूप में नियुक्त कर लिया गया था। अवशिष्ट प्राधिकार का यह तथ्य गोखले अनिवार्य मानते थे। उनका कहना था कि सुधारों द्वारा लोगों को प्रशासन क्षमता अर्जित करने का एक सुन्दर सुयोग सुलभ हो रहा था।

उक्त सुधारा म अधिकारी तत्र का अन्त हो रहा था, अन्त वह अवसर गवा दना ठीक न था ।

निवाचना के साम्प्रदायिक पक्ष से गोखले विशेष उद्विग्न न हुए । मुसलमाना का यदि उनस सन्तुष्टि हो गई तो वह राष्ट्रीय कार्य-कलापा के सचालन म हार्दिक रूप म सहयोग देंगे । केवल इसी तरीके स पारस्परिक विश्वास पदा किया जा सकता था । मदनमोहन मालवीय न जब सुधार अधिनियम के अन्तगत बनाए गए विनियमा म किए जाने वाले परिवतना पर विचार करने के लिए एक समिति की नियुक्ति का एक प्रस्ताव 24 जनवरी, 1911 को सर्वोच्च विधान परिषद म पेश किया उस समय गोखले न उनस प्राथना की कि वह उक्त प्रस्ताव के लिए आग्रह न कर । मदनमोहन मालवीय स्पष्टत उक्त समिति द्वारा पृथक निर्वाचन क्षेत्रा के प्रश्न पर पुन विचार कराना चाहत थे । गोखले ने कहा कि यदि ऐसा प्रश्न यहा उठाया गया तो गोवध, हिन्दू-मुसलमाना के झगडे तथा ऐसे ही अन्य प्रश्न कोई और व्यक्ति किन्ही अन्य स्थला पर उठा सकत हैं। और इसका दुष्परिणाम यह होगा कि दोना जातिया का मधुर सौहाद-पूण सहयोग समाप्त हो जाएगा ।

रचनात्मक कार्या के प्रति गोखले की दिलचस्पी म न तो देश म व्याप्त उथल पुथल के कारण कमी आई न काग्रेस म व्याप्त निष्क्रियता के कारण । वह चाहत थे कि उनका प्रारम्भिक शिक्षा विधेयक पास हो जाए और दक्षिण अफ्रीका के भारतीया का प्रश्न हल कर दिया जाए । उन्होंने अन्य कामा की भी उपेक्षा तो नहीं की, परन्तु अधिक जोर स्थगित न की जा सकने वाली ठोस तथा वध बाता पर ही दिया । एक लोक सेवा आयोग की नियुक्ति और उसमे उनकी सदस्यता ऐसे ही उदाहरण ह । वह अपने स्वीकृत सिद्धान्ता के प्रति सच्चे थे, अपने प्रयत्नो म अविचल और आतक अथवा अनुकम्पा से अप्रभावित ।

उधर, बग भग रद्द कर दिया जाने के कारण आन्दोलन का वग शान्त हो गया था । फिर भी कुछ लोगा के अतिरिक्त अन्य सभी व्यक्तिया के मन म असंन्तोष विद्यमान था । काग्रेस कमजोर पडती जा रही थी, सघर्षकामी शक्तिया गुप्त रूप ग्रहण कर रही थी और जन सामान्य निश्चेष्ट होता जा रहा था । प्रथम विश्व युद्ध छिड जाने पर ही उस स्थिति मे परि-वतन आया ।

18 गोखले, गाधीजी और दक्षिणी अफ्रीका

मेरा विश्वास है कि यदि सभी भारतीय इस कानून के सामने आत्म समर्पण न करने के सम्बन्ध में अडिग बने रहें तो उन्हें लोगों का अत्यधिक आदर प्राप्त हो जाएगा और इससे ट्रासवाल स्थित भारतीयों के प्रश्न के प्रति भारत में भी सहानुभूति की भावना जाग उठेगी ।

—[ट्रासवाल के रजिस्ट्रेशन अधिनियम के सम्बन्ध में
30 अप्रल, 1907 को महात्मा गाधी का कथन]

अब हम गोखले के जीवन और कार्य के उस भाग पर प्रकाश डालेंगे जो उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में बसे भारतीय मूल के लोगों के हित-साधन में लगाया । इसी प्रसग में गाधीजी का उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ—एक ऐसा सम्बन्ध, जिसे गाधीजी इतना अधिक मूल्यवान समझते थे कि उन्होंने अपने आपको गोखले का शिष्य घोषित कर दिया ।

जहा तक गैर-यूरोपीय जातियों के लोगों का सम्बन्ध है, इस शताब्दी के आरम्भिक वर्षों तक भी अफ्रीका का दीर्घावधिक इतिहास करुणासिक्त ही बना रहा । अफ्रीकी महाद्वीप यूरोपीय राष्ट्रों का विशाल क्रीडा क्षेत्र था । वे स्वार्थ-साधक यही समझते रहे कि अफ्रीका के लोग तो ऐसे हीनतर जीवधारी हैं जिन्हें विधाता ने केवल उन्हीं के हित और लाभ के लिए पैदा किया है ।

दक्षिण अफ्रीका ने इतिहास के मच पर सत्रहवी शताब्दी में प्रवेश किया । दक्षिण अफ्रीका के अपेक्षतया दूरस्थ होने का प्रभाव उन गोरे लोगों की मनोवृत्ति पर पडा जो अफ्रीका के अन्य भागों में बसे अपने सजातीयों से कहीं अधिक झगडालू थे । इस भू भाग पर सबसे पहले आ बसने वालों के वशज अपने को अफ्रीकैडर कहा करते थे । 1795 में केप' (आशा अन्तरीप) पर ब्रिटेन का प्रभुत्व हो जाने के बाद उन लोगों का अग्रेज उपनिवेशकों के साथ सम्मिलन हुआ 'केप और 'नटाल के दो तटवर्ती उपनिवेशों में अग्रेज रह गए और 'अफ्रीकैडर' लोगों ने आगे

18 गोखले, गाधीजी औ

मेरा विश्वास है कि यदि सभी भारतीय ~
समपण न करने के सम्बध म अडिग बन
धिक आन्द प्राप्त हो जाएगा और इसस ट्रास
के प्रति भारत म भी सहानुभूति की भावना
—[ट्रासवाल के रजिस्ट्रेशन अधिनियम के र
30 अप्रल, 1907 को महात्मा गाधी द

अब हम गाखले के जीवन और काय क उ
जा उन्होन दक्षिण अफ्रीका म बस भारतीय मूर
म लगाया । इसी प्रसग म गाधीजी का उन
स्थापित हुआ—एक ऐसा सम्बध जिस गाधीजी
समझते थे कि उन्होन अपन आपको गाखल
दिया ।

जहा तक गर-यूरापीय जातिया क लागा का स
म आरम्भिक वर्षों तक भी अफ्रीका का दीर्घावधि
हा बना रहा । अफ्रीका महाद्वीप यूरापीय राष्ट्रा क
था । व स्वाथ-साधक यही समझते रहे कि अफ्रीन
हीनतर जीवधारी ह जिन्ह विधाता ने कवल उन्ही
के लिए पैदा किया ह ।

दक्षिण अफ्रीका न इतिहास के मच पर सत्रहवी
किया । दक्षिण अफ्रीका क अपक्षतया दूरस्थ हान क
लोगा की मनावत्ति पर पडा जा अफ्रीका के अय भा
मजातीया म कहीं अधिक बगडालू थे । इस भू भाग प
बसन वाला के वशज अपन का अफ्रीकडर कहा करत
'कप' (आशा अन्तरीप) पर ब्रिटेन का प्रभुत्व हा जान के
का अग्रेज उपनिवेशका क साथ सम्मिलन हुआ 'कप आर
दा तटवर्ती उपनिवेशा म अग्रेज रह गए और 'अफ्रीकडर ला

डरबन पहुचने पर गाधीजी ने देखा कि राजनतिक ढाचा तो बदल गया है, लेकिन भारतीयो के भाग्य में कोई परिवतन नही हुआ नई सरकार न चारो उपनिवेशो को एक करने का प्रयास किया । भारतीय विरोधी कानूनो की अवधि ही नही बढाई गई, उनका परिपालन अधिक सख्ती के साथ भी किया गया । भारतीयो के हितो के विरुद्ध अग्रेजी व्यापारियो के हितो की रक्षा अधिक सावधानी के साथ की जाती थी । भेदभाव किए बिना और भारतीयो को निम्नतर दर्जा दिए बिना ऐसा किस तरह किया जा सकता था ? एक अध्यादेश जारी करके प्रत्येक भारतीय के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया कि वह एशियाइयो के रजिस्ट्रार के पास अपना नाम दर्ज कराए और अपने पास उस रजिस्ट्रेशन का प्रमाणपत्र रखे ।

इस आक्रोशमूलक कदम के विरोध की भावना पूरे देश म फैल गई । गाधीजी न भारतीयो स कहा कि वे अपने प्रति सच्चे बने रहें । यदि उनकी आत्मा कहती है कि वह पाप है और उन्हे समग्रत उसका विरोध करना चाहिए तो उक्त विरोध ही उनकी सफलता का एकमात्र उपाय है । भारतीयो की सख्या बहुत अधिक नही थी और गाधीजी ने उन्हें यह सिखा दिया था कि शारीरिक कष्ट प्राप्त होने की दशा मे भी व हिंसापूर्ण कोई काम नही करेंगे ।

अपना नाम दर्ज कराने वालो की सख्या केवल 500 थी । इस प्रतिरोध से अधिकारियो का चिंतित हो उठना स्वाभाविक था और उन्होने समझौते का प्रयास किया । 30 जनवरी 1908 को गाधीजी और जे० सी० स्मट्स की बातचीत हुई । यह निश्चय किया गया कि अनिवाय रूप से नाम दर्ज कराने का अधिनियम वापस ले लिया जाए और भारतीय अपनी इच्छा स नाम दर्ज करा ने । कुछ लोगो न गाधीजी को समझाया कि वह चालाकी से बिछाए गए उस जाल म न फसे । परन्तु 'गाधीजी होने के कारण, गाधीजी भला ऐसा कैसे समझते ।

अनेक भारतीयो न स्वेच्छया अपना नाम दर्ज करा दिया परन्तु अधिनियम वापस नही लिया गया और स्मट्स न अपना वचन तोड दिया । इसस गाधीजी को और बल प्राप्त हुआ और उन्होने लोगो स कहा कि व अपने रजिस्ट्रेशन प्रमाण पत्र जला दें । बस, सत्याग्रह का श्रीगणेश हो गया और इसका समारम्भ हुआ दक्षिण अफ्रीका में ।

था जिनका उपयोग यूरोपियन करते थे । मनमाने कर अयोग्य ता व
थे ही । संक्षेप म यह कहा जा सकता है कि यदि मूलत भारत के सभी
व्यक्ति दक्षिण अफ्रीका से निकल जाते तो इससे यूरोपियनो को प्रसन्नता
ही होती । भारतीय इसके लिए तैयार न थे । दक्षिण अफ्रीका को वैभव
सम्पन्न बनाने के लिए उन्होंने अपना रक्त भी बहाया था पसीना भी
और आसू भी । अत उन्हे विशेषत ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिक होने
के नाते अपने परिश्रम के फल का उपभोग करने का कुछ अधिकार तो था ही ।
उस समय गाधीजी वहा मौजूद थे । वह भारतीयो को उदबुद्ध करके
यह अनुभूति दिला रहे थे कि जिस देश को उन्होंने अपना लिया है उसमे
समान व्यवहार प्राप्त करने का उन्हें अधिकार है । इस पूरे इतिहास पर
गाधीजी ने अपनी पुस्तक 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' मे
प्रकाश डाला है ।

दक्षिण अफ्रीका के इतिहास म 1899 का वर्ष बहुत महत्वपूर्ण था ।
उस समय अग्रेजो और बोअरो के बीच बोअर युद्ध हो रहा था । अग्रेजो
ने इस युद्ध का एक कारण यह ठहराया था कि दक्षिण अफ्रीका म भारतीयो
के साथ उचित बर्ताव नही हो रहा है । वास्तव म यह एक बहाना ही
था क्योंकि अफ्रीकन्डर भारतीयो के साथ जैसा बर्ताव कर रहे थे अग्रेजो
का भारतीयो के साथ उससे अच्छा व्यवहार नही था । युद्ध काल म गाधी-
जी ने अग्रेजो की सहायता के लिए एक 'एम्बुलेंस' कोर का सगठन किया ।
आरम्भ म तो उस कोर को मान्यता नही दी गई परन्तु जब बडे पैमाने
पर नर सहार होने लगा तो उक्त कोर की सेवाओ की आवश्यकता हुई
और गाधीजी ने अपने पूर्वनिश्चय के अनुसार ब्रिटिश साम्राज्य के प्रजाजन
के नाते सेवा की ।

युद्ध म अंग्रेजो की जीत हुई । गाधीजी ने सोचा कि दक्षिण अफ्रीका
म उनका काम पूरा हो गया । वह समझते थे कि अग्रेज अपने सह प्रजाजन
भारतीयो के साथ उचित और शिष्टतापूर्ण व्यवहार करेंगे । गाधीजी
बम्बई हाईकोर्ट म वकालत और गोखले के निर्देशन म रह कर सार्वजनिक
काम करना चाहते थे । परन्तु इससे पहले कि वह बम्बई म अपना वकालत
का कारोबार जमाते, उन्हे तार द्वारा यह समाचार प्राप्त हुआ कि अफ्रीका
म स्थिति और भी खराब होती जा रही है अत उन्हे अफ्रीका लौट
आना चाहिए ।

डरबन पहुंचने पर गांधीजी ने देखा कि राजनैतिक ढांचा तो बदल गया है लेकिन भारतीयों के भाग्य में कोई परिवर्तन नहीं हुआ नई सरकार ने चारों उपनिवेशों को एक करने का प्रयास किया । भारतीय विरोधी कानूनों की अवधि ही नहीं बढाई गई उनका परिपालन अधिक सख्ती के साथ भी किया गया । भारतीयों के हितों के विरुद्ध अंग्रेजी व्यापारियों के हितों की रक्षा अधिक सावधानी के साथ की जाती थी । भेदभाव किए बिना और भारतीयों को निम्नतर दर्जा दिए बिना ऐसा किस तरह किया जा सकता था ? एक अध्यादेश जारी करके प्रत्येक भारतीय के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया कि वह एशियाइयों के रजिस्ट्रार के पास अपना नाम दर्ज कराए और अपने पास उस रजिस्ट्रेशन का प्रमाणपत्र रखे ।

इस आत्मनाशमूलक कदम के विरोध की भावना पूरे देश में फैल गई । गांधीजी ने भारतीयों से कहा कि वे अपने प्रति सच्चे बने रहें । यदि उनकी आत्मा कहती है कि वह पाप है और उन्हें समग्रत उसका विरोध करना चाहिए तो उक्त विरोध ही उनकी सफलता का एकमात्र उपाय है । भारतीयों की संख्या बहुत अधिक नहीं थी और गांधीजी ने उन्हें यह सिखा दिया था कि शारीरिक कष्ट प्राप्त होने की दशा में भी वे हिंसापूर्ण कोई काम नहीं करेंगे ।

अपना नाम दर्ज कराने वालों की संख्या केवल 500 थी । इस प्रतिरोध से अधिकारियों का चिंतित हो उठना स्वाभाविक था और उन्होंने समझौते का प्रयास किया । 30 जनवरी 1908 को गांधीजी और जे० सी० स्मट्स की बातचीत हुई । यह निश्चय किया गया कि अनिवार्य रूप से नाम दर्ज कराने का अधिनियम वापस ले लिया जाए और भारतीय अपनी इच्छा से नाम दर्ज करा लें । कुछ लोगों ने गांधीजी को समझाया कि वह चालाकी से बिछाए गए उस जाल में न फंसें । परन्तु 'गांधीजी' होने के कारण, गांधीजी भला ऐसा कैसे समझते ।

अनेक भारतीयों ने स्वेच्छया अपना नाम दर्ज करा दिया परन्तु अधिनियम वापस नहीं लिया गया और स्मट्स ने अपना वचन तोड़ दिया । इससे गांधीजी को और बल प्राप्त हुआ और उन्होंने लोगों से कहा कि वे अपने रजिस्ट्रेशन प्रमाण पत्र जला दें । बस सत्याग्रह का श्रीगणेश हो गया और इसका समारम्भ हुआ दक्षिण अफ्रीका में ।

डर्बन पहुचन पर गांधीजी न देखा कि राजनतिक ढाचा तो बदल गया है लेकिन भारतीयो क भाग्य में कोई परिवतन नहीं हुआ नई सरकार न घोरा उपनिवेशो को एक करन का प्रयास किया । भारतीय विरोधी कानूनो की अवधि ही नहीं बढाई गई उनका परिपालन अधिक सख्ती क साथ भी किया गया । भारतीयो क हितो के विरुद्ध अग्रेजी व्यापारियो क हितो की रक्षा अधिक सावधानी क साथ की जाती थी । भेदभाव किए बिना और भारतीयो को निम्नतर दर्जा दिए बिना ऐसा किस तरह किया जा सकता था ? एक अध्यादेश जारी करके प्रत्येक भारतीय क लिए यह अनिवाय कर दिया गया कि वह एशियाइयो क रजिस्ट्रार के पास अपना नाम दज कराए और अपने पास उस रजिस्ट्रेशन का प्रमाणपत्र रखे ।

इस अपमानजनक कदम क विरोध की भावना पूर दश म फल गई । गांधीजी न भारतीयो स कहा कि व अपने प्रति सच्चे बने रहे । यदि उनकी आत्मा कहती है कि वह पाप है और उन्हे समग्रत उसका विरोध करना चाहिए तो उसका विरोध ही उनकी सफलता का एकमात्र उपाय है । भारतीयो की सख्या बहुत अधिक नहीं थी और गांधीजी न उन्हे यह सिखा दिया था कि शारीरिक कष्ट प्राप्त होन की दशा मे भी व हिंसापूर्ण कोई काम नहीं करेंगे ।

अपना नाम दज करान वाला की संख्या केवल 500 थी । इस प्रतिरोध स अधिकारियो का चिंतित हो उठना स्वाभाविक था और उन्होने समझौत का प्रयास किया । 30 जनवरी 1908 को गांधीजी और जे० सी० स्मटस की बातचीत हुई । यह निश्चय किया गया कि अनिवाय रूप से नाम दज करान का अधिनियम वापस ले लिया जाए और भारतीय अपनी इच्छा स नाम दज करा ल । कुछ लोगो न गांधीजी को समझाया कि वह चालाकी स बिछाए गए उस जाल म न फसे । परन्तु 'गांधीजी होन के कारण, गांधीजी भला एसा कस समझत ।

अनेक भारतीयो न स्वेच्छया अपना नाम दज करा दिया परन्तु अधिनियम वापस नहीं लिया गया और स्मटस न अपना वचन तोड दिया । इससे गांधीजी को और बल प्राप्त हुआ और उन्होने लोगो से कहा कि वे अपने रजिस्ट्रेशन प्रमाण पत्र जला दे । बस, सत्याग्रह का श्रीगणेश हो गया और इसका समारम्भ हुआ दक्षिण अफ्रीका मे ।

बोअर और अंग्रेज दक्षिण अफ्रीकी उपनिवेशों का एक संघ बना देने को आतुर थे। इससे उन्हें 'साम्राज्य' में उच्चतर स्तर मिल सकता था। इसके लिए उन्होंने ब्रिटिश मन्त्रिमंडल से मिलने के लिए एक शिष्टमंडल भेजा। उसमें भारतीय हितों के संरक्षण का ध्यान न रखे जाने के कारण भारतीय समाज ने अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए गांधीजी और सेठ हाजी हबीब को अपना प्रतिनिधि बना कर भेजा। लार्ड क्रियु और मार्ले ने सहानुभूतिपूर्वक उनकी बात सुनी परन्तु वह सब व्यर्थ ही रहा। गोरों के राजनैतिक कोलाहल में भारतीयों की धीमी आवाज लुप्त हो गई।

यद्यपि गांधीजी इंग्लैण्ड में अपनी लक्ष्य सिद्धि में सफल न हुए तथापि उनकी मातृभूमि और उसके नेताओं ने उनका परित्याग नहीं किया। गोखले उनकी सहायता के लिए उत्कण्ठित हो उठे। 1909 में लाहौर में हुए कांग्रेस अधिवेशन में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के बारे में एक प्रस्ताव रखा और उक्त अवसर पर एक अविस्मरणीय भाषण दिया। निष्क्रिय प्रतिरोध की चर्चा करते हुए गोखले ने कहा—निष्क्रिय प्रतिरोध आन्दोलन क्या है? अपनी प्रकृति में मूलतः आत्मरक्षात्मक है और इसमें नैतिक तथा आध्यात्मिक शस्त्रों की सहायता से युद्ध किया जाता है। निष्क्रिय प्रतिरोधी अपने शरीर पर कष्ट झेल कर अत्याचार का प्रतिरोध करता है। पशु बल का सामना वह आत्म बल से करता है मनुष्य के पशुत्व का मुकाबला वह मनुष्य के देवत्व द्वारा करता है। वह अत्याचार का सामना आत्मपीडन द्वारा शक्ति का मुकाबला आत्मविवेक द्वारा, अन्याय का प्रतिरोध आस्था द्वारा और अनाचार का विरोध सदाचार द्वारा करता है। जिन गोखले को गांधी जी पहले ही अपने गुरु के रूप में हृदयासन पर प्रतिष्ठित कर चुके थे उनके द्वारा की गई निष्क्रिय प्रतिरोध की यह भावभरी परिभाषा पढ़ कर गांधीजी पुलकित हो उठे होंगे।

गोखले ने उक्त अवसर पर गांधीजी के बारे में कहा था— मेरे जीवन का एक सौभाग्य यह है कि मैं गांधी को घनिष्ठता पूर्वक जानता हूं और मैं आपको यह बता देना चाहता हूं कि उनसे अधिक पवित्र उनसे अधिक भव्य उनसे अधिक वीर उनसे अधिक उच्च आत्मा वाला व्यक्ति कभी इस धरती पर विद्यमान नहीं रहा है। गांधी उन लोगों में से हैं जो स्वयं सरलसंगत जीवन व्यतीत करते हुए तथा अपने सहजीवियों और सत्य एवं न्याय के प्रति प्रेम के उच्चतम सिद्धान्तों के अनुरागी बने रह कर अपने दुर्बलतर

भारत्या की आत्मा को जादू के स्पर्श से छू कर उनमे नई ज्योति जगा देते है । वह एक ऐसे व्यक्ति है जिन्हे मनुष्यो मे एक मानव, अग्रपुरुषो मे एक महापुरुष और देश भक्तो मे एक स्वदेशानुरागी कह कर पुकारा जा सकता है और हम तो नि सकोच यहा तक कह सकते है कि उनके रूप मे भारतीय मानवत्व इस समय अपने शिखर पर जा पहुचा है । 'गोखले द्वारा अकित गाधीजी का यह चित्र कितना अनश्वर है कितना सच्चा ।

प्रश्न यह है कि क्या गोखले ने निष्क्रिय प्रतिरोध को लक्ष्य विशेष की सिद्धि का साधन मान लिया था या उन्होने उस नए शस्त्र के सम्बन्ध मे एक दार्शनिक की भाति अपने उदगारमात्र व्यक्त किए थे ? 1909 मे बम्बई की एक सभा मे भाषण करते हुए गोखले ने कहा था "इसमे सन्देह नही कि यह काम जो व्यक्ति सम्पन्न कर सकता है वह अनिवार्यत एक नैतिक शक्ति का प्रतीक है, उसका मूल्याकन हलके ढग से नही किया जाना चाहिए । मुझे विश्वास है कि हम सभी समझते है कि उपचार के और सभी तरीके व्यर्थ हो जाने पर निष्क्रिय प्रतिरोध का मार्ग अपना कर गाधी ने पूर्णत उचित काम किया है । मै निश्चयपूर्वक कह सकता हू कि यदि दुर्भाग्य से हममे से कोई व्यक्ति ट्रासवाल मे होता तो हम लोग गाधी के झण्डे के नीचे एकत्र होकर उनके साथ काम करने तथा इस महान लक्ष्य की सिद्धि मे कष्ट सहन करने मे गौरव का ही अनुभव करते । स्पष्ट है कि गोखले ने निष्क्रिय प्रतिरोध को केवल सिद्धान्त रूप मे ही स्वीकार नही किया था बल्कि उसके प्रयोग को भी वह गौरव का विषय मानते थे ।"

परन्तु इसका आशय यह नही है कि गाधीजी की प्रत्येक बात गोखले ने आख मूद कर स्वीकार कर ली । जब गाधीजी की गुजराती पुस्तक हिन्द स्वराज बम्बई सरकार ने जब्त कर ली और उसके उपरान्त उन्होने वह पुस्तक अग्रेजी मे प्रकाशित कर दी तो गोखले ने इस रचना अपरिपक्व और जल्दी मे किया गया काम माना कि उन्होने यहा तक भविष्यवाणी कर दी कि भारत मे एक वर्ष रहने के बाद गाधीजी स्वय उस पुस्तक को नष्ट कर देगे । यह भविष्यवाणी सत्य नही हुई । जहा तक गाधीजी का सम्बन्ध है वह तो उस पुस्तक को अपने दर्शन की आधारशिला ही मानते रहे । एक बात और भी है । गाधीजी को न तो गरम दल के तरीके पसन्द थे न नरम दल के क्योकि वह समझते थे कि उक्त दोनो दल अन्तत हिंसा

पर ही निभर ह । उपयुक्त प्रसग स स्पष्ट है कि यद्यपि कुछ आधार-भूत बाता क बार मे गोखले और गाधीजी एकमत नही थे, तथापि अधिक-तर बातो म वे एक-दूसर स सहमत थे तथा एक दूसरे का आदर करत थे ।

लाहौर काग्रेस म गोखले न दक्षिण अफ्रीका से सम्बधित प्रस्ताव के बारे म जो भाषण दिया उसका जादू का सा प्रभाव हुआ । लोगो ने गाधीजी का हार्दिक अभिनन्दन किया और दक्षिण अफ्रीका क सघष म सहायता के रूप मे उन पर सोन और नोटा की वर्षा कर दी गई । रतन टाटा न उस शौर्यपूर्ण काय के लिए जो कि वह उक्त सघष क सम्बध म कर रह थे गाधीजी को बधाई दी और पच्चीस हजार रुपये भी भेजे । निजाम हैदराबाद न ढाई हजार रुपये भेजे और आगा खा ने मुस्लिम लीग क अधि-वशन मे तीन हजार रुपया इकट्ठा करके वह रकम गाधीजी के पास भेज दी । वे रकमें जिस तरह खच की गइ उसका विस्तृत विवरण गाधीजी ने गोखले के पास लिख भेजा । वह समय-समय पर पत्रो द्वारा गोखले को सघष की प्रगति म भी अवगत करात रहे । उधर गाधीजी और उनके साथी अधिनियम की अवज्ञा कर रहे थे । इसके लिए उन्हे बार-बार बदी बनाया और छोडा जा रहा था ।

दक्षिण अफ्रीका के ऐतिहासिक सघष मे 1911 एक महत्वपूर्ण वष था । सघ सरकार ने कुछ चुक जाने की बात सोची । व लाग भारतीयो को प्रसन्न करना चाहत थे क्योकि जुलाइ, 1911 मे राज्याभिषेक समारोह होन वाला था । उससे पहले 25 फरवरी 1910 को गोखले न इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल मे यह प्रस्ताव रखा था कि नटाल भेजने क लिए ब्रिटिश भारत म की जान वाली करारबद्ध मजदूरो की भर्ती पर तत्काल रोक लगा दी जाए । भारत सरकार ने यह प्रस्ताव मान लिया और इसका जोरदार समथन किया । उसी वष अक्तूबर मे लाड एम्प्टहिल और दक्षिण अफ्रीकी समिति न यह आदोलन किया कि 1907 का वह निन्दनीय अधिनियम रद्द कर दिया जाए । जो मागे की गइ उनम यह भी कहा गया कि जातिगत अवरोध हटा दिया जाए और भारतीयो के उत्प्रवास को कम से कम करके केवल उच्च शिक्षित लोगो तक सीमित कर दिया जाए । उक्त परिस्थितियो मे दक्षिण अफ्रीकी सघ सरकार ने 11 फरवरी 1911 को एक विधेयक प्रकाशित किया जो वहा के भारतीयो

को संतुष्ट न कर पाया। गांधीजी ने 1907 का अधिनियम रद्द किए जाने का स्वागत करते हुए भी उक्त विधेयक के विरोध में ही लिखा। केवल ट्रांसवाल में भारतीयों तथा चीनियों का अपना कारोबार फिर आरम्भ कर लेने दिया गया। गांधीजी ने निष्क्रिय प्रतिरोध आन्दोलन रोक दिया।

इन सब बातों को गांधीजी की बहुत बड़ी उपलब्धि माना गया परन्तु वास्तव में ऐसा था नहीं। परिस्थितिवश दक्षिण अफ्रीकी अधिकारी कुछ झुक अवश्य गए थे पर वास्तव में उनकी मनोवृत्ति नहीं बदली थी। दक्षिण अफ्रीका स्थित भारतीयों ने राज्याभिषेक समारोह का बायकाट किया क्योंकि उन्हें समारोह में भाग लेने वाले यूरोपियन के समान स्तर का नहीं माना गया था।

राज्याभिषेक के उपरान्त दक्षिण अफ्रीकी संघ की संसद में एक नया उत्प्रवास विधेयक पेश किया गया। उसे छोड़ दिया गया परन्तु अस्थायी समझौते की अवधि एक वर्ष और बढ़ा दी गई। दक्षिण अफ्रीका की समस्या हल नहीं हुई थी। मसला अभी समाप्त नहीं हुआ था, वह केवल स्थगित हो गया था। इसके बाद काफी समय तक भी दक्षिण अफ्रीका स्थित भारतीयों को व्यवहार की समानता प्राप्त नहीं हो सकी।

गांधीजी बहुत समय से गोखले से प्रार्थना कर रहे थे कि वह दक्षिण अफ्रीका आकर भारतीयों की विपत्तियां यातनाएं अपनी आंखों से देखें। 1911 में जबकि गोखले इंग्लैंड में थे उन्होंने गांधीजी का वह निमन्त्रण स्वीकार कर लेने का निश्चय किया। गोखले ने भारत मन्त्री के साथ बातचीत की और उन्हें अपनी प्रस्तावित यात्रा की सूचना दे दी। सरकार ने उन्हें आवश्यक सुविधा और सहायता का आश्वासन दिया। दक्षिण अफ्रीकी संघ सरकार ने भी उस यात्रा का स्वागत किया।

गोखले की दक्षिण अफ्रीका यात्रा गांधीजी के जीवन की कोई साधारण घटना नहीं थी। राजनीति के अतिरिक्त भी गांधीजी के हृदय में गोखले के प्रति अत्यधिक श्रद्धाभाव था। 1896 में जब गांधीजी भारत आए थे उस समय वह अनेक नेताओं से मिले थे परन्तु उनमें से कोई भी उन्हें गोखले की भांति अपने में जकड़ नहीं पाया था। गोखले के मुख से सराहना का एक शब्द सुनकर उन्हें जितना उल्लास होता था उतना और किसी वस्तु से नहीं हो पाता था। गांधीजी गोखले को अपना गुरु कहते थे परन्तु यह उक्ति भी उनके पारस्परिक सम्बन्धों की अभिव्यक्ति अंशतः ही कर पाती थी।

अतः गोखले की दक्षिण अफ्रीका यात्रा गांधीजी के लिए अधिकतम रुप की बात थी। गांधीजी बहुत अरसे से यह योजना बना रहे थे कि गोखले का स्वागत किस तरह किया जाएगा। ऐसा करते समय उन्होंने गोखले के दुर्बल शरीर और स्वभावगत विशिष्टताओं के साथ-साथ ऐसी बातों पर भी प्रेमपूर्वक पूरी तरह ध्यान दिया था कि उन्हें मकान में ठहराया जाएगा उस मकान में क्या फर्नीचर रखा जाएगा आदि।

गोखले 22 अक्तूबर 1912 को केपटाउन पहुंचे। संघ सरकार ने उनका हार्दिक स्वागत किया और एक रेलवे सैलून उनके लिए सुलभ कर दिया। जान पड़ता था मानो कुछ समय के लिए जातिगत भेद भाव समाप्त हो गया और गोखले का स्वागत करने में गोरे लोग भारतीयों से होड़ लगाने लगे। पूरी यात्रा में गोखले के साथ रहने के लिए उप्रवास विभाग के श्री रोसमन को नियुक्त कर दिया गया था। सैकड़ों भारतीयों ने आभारपूर्ण हृदय से उनका अभिनन्दन किया। शानदार जुलूस निकाला गया जिसमें आगे-आगे पचास गाड़ियां थीं। सभी जगह बन्देमातरम के नारों में गोखले का स्वागत-सत्कार किया गया। वहां आयोजित एक विशाल सभा में सौम्यता स्निग्धता तथा स्नेह से भरा एक सहज और सशक्त भाषण देकर गोखले ने यूरोपियनों को मन्त्रमुग्ध कर दिया।

केपटाउन में अभिनन्दन हो जाने के उपरान्त गोखले को जोहान्सबर्ग जाना था। जोहान्सबर्ग सत्याग्रह संघर्ष का युद्ध स्थल था। वहां आयोजित भव्य स्वागत समारोह में यूरोपियनों ने काफी अधिक संख्या में भाग लिया और मेयर ने उस समारोह की अध्यक्षता की तथा अभिनन्दन पत्र पढ़ा। माननीय अतिथि के लिए अपनी कार सहज सुलभ करके भी मेयर ने अपनी सद्भावना का परिचय दिया। कारण स्पष्ट था। यूरोपियन जानते थे कि गोखले की उस यात्रा को ब्रिटिश सरकार का अनुमोदन प्राप्त है। गोखले के लिए नगर में एक विशेष कार्यालय खोल दिया गया जहां वह लोगों के साथ मुलाकात और बातचीत कर सकते थे। पूरी यात्रा में गांधीजी ने उनके साथ रह कर उनके सचिव के रूप में काम किया। गोखले को यूरोपियनों का दृष्टिकोण समझने का अवसर सुलभ करने के विचार से यूरोपियनों की एक अलग सभा भी की गई। उनके सम्मान में एक विशेष भोज का भी आयोजन किया गया, जिसमें निमंत्रित 400 महानुभावों में से 150 यूरोपियन थे। उनमें से अनेक यूरोपियनों के जीवन का सम्भवतः

वह ऐसा प्रथम अवसर था जब उन्होंने भारतीयों के साथ एक सार्वजनिक भोज में भाग लिया। उस अवसर पर गोखले ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भाषण दिया। जिसमें स्पष्टता और प्रभावोत्पादकता तो थी ही, दृढ़ता भी थी।

नगर में भारतीयों के लिए भी एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। यहां गोखले के सामने यह प्रश्न उपस्थित था कि भाषण किस भाषा में दिया जाए—अंग्रेजी में या हिंदी में? अंग्रेजी में बोलना अप्रासंगिक था और गोखले हिन्दी भली प्रकार जानते नहीं थे। गांधीजी ने सुझाव दिया कि उन्हें मराठी में बोलना चाहिए क्योंकि श्रोताओं में कुछ कोंकणी मुसलमान और महाराष्ट्रीय उपस्थित थे। गांधीजी ने यह प्रस्ताव भी किया कि वह स्वयं मराठी भाषण का हिंदी में अनुवाद कर देंगे। यह सुन कर गोखले ठहाका मार कर हंस पड़े। बोले—आपके हिन्दी ज्ञान की गहराई मैं जानता हूं और वह एक ऐसी उपलब्धि है जिसके लिए आपको जितनी बधाई दी जाए वह कम ही है पर अब आप मराठी का हिन्दी में अनुवाद करने चले हैं। जरा यह तो बताइए कि इतनी मराठी आपने कहां सीखी?

गांधीजी ने उत्तर दिया—जो बात आपने मेरी हिन्दुस्तानी के बारे में कही है वही मराठी की भी समझिए। मराठी का एक शब्द भी मैं बोल नहीं सकता। पर जिस विषय का मुझे ज्ञान है उस विषय पर आप मराठी में जो कुछ कहेंगे उसका भावार्थ मैं जरूर समझ जाऊंगा। इतना तो आप देख लेंगे कि मैं लोगों के सामने उसका गलत अर्थ न रखूंगा। गोखले ने गांधीजी की बात मान कर मराठी में भाषण दिया। [illegible] से लेकर जंजीबार तक की गई गोखले की पूरी यात्रा में गोखले के सभी मराठी भाषणों को गांधीजी ने हिन्दुस्तानी में अनूदित किया। अपने शिष्य के इस कृतित्व से गोखले को [illegible] हुआ। गांधीजी को इस बात का अपार हर्ष था कि [illegible] दक्षिण अफ्रीका में जहां भारतीय एक सामूहिक [illegible] रहे थे, उस काम के लिए किसी अभारतीय भाषा का सहारा नहीं लिया गया।

गोखले को नेटाल में [illegible] स्वीकार करना था। वहां [illegible] और [illegible] मिलना था और उनसे [illegible] था। [illegible]

कहा जा चुका है गोखले छोटी से छोटी बात में भी सही बने रहने का प्रयत्न करते थे। उन्होंने गाधीजी से कहा कि वह चारो उपनिवेशो के भारतीय मामलो का सार संक्षेप तैयार करके उन्हे दे दें। गोखले ने पूरी रात स्वय जाग कर तथा दूसरो को जगा कर प्रत्येक महत्वपूर्ण बात के सम्बन्ध में पूरा ब्यौरा प्राप्त कर लिए। इस तरह उन्होने अपने को उस बातचीत के लिए तैयार कर लिया जो 15 नवम्बर को आरम्भ हुई और दो घण्टे तक चली। वार्तालाप मित्रतापूर्ण वातावरण में हुआ। निश्चित रूप से वचन तो अधिक नही दिए गए हा आश्वासन अनेक दे दिए गए। वार्तालाप के बाद गोखले ने गाधीजी से कहा—आप साल भर के अन्दर ही भारत लौट आना। सब कुछ निश्चित कर दिया गया है। यह काला कानून रद्द कर दिया जाएगा। उत्प्रवास विषयक कानूनो में से अवरोध हटा दिया जाएगा। तीन पौण्ड का कर समाप्त हो जाएगा।

परन्तु गाधीजी गोखले जितने आशावान नही थे। दोनो जनरलो को यह गोखले की अपेक्षा अधिक भली प्रकार जानते थे। उन्होने गोखले से कहा—मेरे लिए इतना ही काफी है कि आपने मन्त्रियो से यह वचन ले लिया है। आपको दिया गया यह वचन हमारी मागो के औचित्य का प्रमाण है और इससे युद्ध अनिवार्य हो जाने की स्थिति में हमारा बल दुगुना हो जाएगा। जहा तक मेरे भारत लौटने की बात है मैं समझता हूं कि एक वर्ष के अन्दर ऐसा नही हो पाएगा। और वह समय आने में पहले और अनेक भारतीयों को भी कारावास भोगना पड़ेगा।

प्रिटोरिया जाने से पहले गोखले 2 से 4 नवम्बर तक गाधीजी द्वारा सस्थापित टाल्स्टाय फार्म में ठहरे। गाधीजी ने गोखले के व्यक्तिगत सचिव के रूप में ही नही उनके व्यक्तिगत सेवक के रूप में भी काम किया। उन्होने गोखले की शुश्रुषा की, उनके लिए भोजन तैयार किया और उनके स्कार्फ पर इस्तरी की जो उन्हें एक मूल्यवान उत्तराधिकार के रूप में रानडे से प्राप्त हुआ था। 'टालस्टाय फार्म'—वहा का वातावरण आश्रम वासियो का सरल जीवन वहा प्रशिक्षण पा रहे बालक और अन्य अनेक बातें—गोखले को बहुत भाया और उससे गाधीजी के प्रति उनके आदर भाव में भी वृद्धि हुई।

17 नवम्बर को गोखले ने दक्षिण अफ्रीका से प्रस्थान किया। गाधीजी और उनके एक सहयोगी केलनबेक जजीबार तक गोखले ...

जजीबार जाते समय अनेक बन्दरगाहों पर गोखले का उत्साहपूर्ण अभिनन्दन किया गया। गोखले चाहते थे कि गांधीजी भारत लौटकर स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व सम्भाल लें। इस प्रसंग में गांधीजी ने लिखा है—उन्होंने मेरे लिए भारत के सभी नेताओं के चरित्र का विश्लेषण कर दिया और उनका वह विश्लेषण इतना सही था कि मुझे उक्त विश्लेषण और उन नेताओं के प्रति किए गए अपने निजी अनुभव में प्राय कोई अन्तर नहीं दिखाई दिया। हम सम्मत थे गोखले की भविष्यवाणी सत्य होगी और दोनों एक वर्ष के अन्दर ही भारत लौट सकेंगे। परन्तु वास्तव में वैसा नहीं होना था।

गोखले के दक्षिण अफ्रीका से चले जाने पर दोनों जनरलों ने अपने वचन भंग कर दिए जो उन्होंने गोखले को दिए थे। स्थिति में किसी तरह का सुधार नहीं हुआ। उस स्थिति के सम्बन्ध में गांधीजी ने पहले ही जो धारणा बनाई थी वह ठीक निकली। पुरानी व्यवस्था जारी रही। गांधीजी ने इसे भारत का अपमान माना और गोखले को इससे अपार कष्ट पहुंचा।

गोखले के बम्बई पहुंचने पर फिरोजशाह मेहता और वाचा ने उस समझौते की निन्दा की, जो उन्होंने किया था और उसके लिए गोखले की कटु आलोचना भी की। उन्होंने कहा गोखले ने उचित नहीं किया कि तीन पौंड का कर समाप्त कराने के बदले वह दक्षिण अफ्रीका में उत्प्रवास पर रोक लगाने के लिए वचनबद्ध हो आए। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रजाजनों की गतिविधियों पर ऐसी रोक नहीं लगाई जा सकती थी। अत वे समझते थे कि गोखले और गांधीजी ने सौदा करके भारतीयों का आधारभूत अधिकार ही हाथ से निकाल दिया था। फिर भी, उसके बाद होने वाले कांग्रेस अधिवेशन में उस समझौते का अनुमोदन कर दिया गया जो गोखले ने दोनों जनरलों के साथ किया था।

गांधीजी का और दक्षिण अफ्रीका में किए गए उनके महान कार्यों की गोखले ने जो सराहना की, वह हमारी मूल्यवान निधि है। बम्बई पहुंचने के बाद एक सभा में उन्होंने कहा था— गांधीजी के वर्तमान रूप में घनिष्ट सम्पर्क में आ पाने वाले लोग ही उस व्यक्ति के आश्चर्यजनक व्यक्तित्व का अनुभव कर सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वे उन्हीं तत्वों से निर्मित हैं, जिनसे शूरवीरों और शहीदों का निर्माण होता है।] इतना ही नहीं, उनमें वह अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति भी विद्यमान है जो अपने आस-पास

वे लोगों को शूरवीर तथा शहीद बना सकती है—अपने सम्पूर्ण जीवन में मैं केवल दो ऐसे अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आया हूँ जिन्होंने मुझे आध्यात्मिक रूप से गांधीजी की भांति प्रभावित किया है—हमारे बुजुर्ग दादाभाई नौरोजी और मेरे स्वर्गीय गुरु रानाडे। गांधी ही वस्तुतः दक्षिण अफ्रीका में भारतीय संघर्ष सिद्धि के उन्नायक हैं। उस कार्य के प्रति उन्होंने अपने को पूर्णतः समर्पित कर दिया है। उनके विषय में सबसे अधिक उल्लेखनीय बात यह है कि इतना बड़ा संघर्ष अनवरत चलाने के उपरांत भी उनके मन में यूरोपियों के प्रति कोई कड़वाहट नहीं है और पूरी यात्रा में मेरे हृदय को इससे अधिक ठण्डक और कुछ देखकर प्राप्त नहीं हुई कि दक्षिण अफ्रीका का सारा का सारा यूरोपीय समाज गांधी का आदर करता है।

उधर दक्षिण अफ्रीका में कर हटा देने के लिए दिया गया वचन तो तोड़ा ही गया, एक अन्य घटना भी हो गई। सर्वोच्च न्यायालय ने एक बहुत ही अपमानजनक फैसला दिया। उसने अफ्रीका से बाहर रह कर किए गए विवाहों को वैध मानने से इंकार कर दिया और इस तरह भारत में विधिवत विवाहित पत्नियों को अफ्रीका की धरती पर पैर रखने से रोक दिया गया। एक मुसलमान की पत्नी को देश से बाहर निकल जाने का आदेश दिया गया। इससे चिंताजनक स्थिति पैदा हो गई। स्त्रियों ने निष्क्रिय प्रतिरोध का मार्ग अपनाया। वे बंदी होने के लिए निषिद्ध प्रदेश में प्रवेश करने लगीं। गांधीजी की पत्नी कस्तूरबा ने अस्वस्थ होने पर भी, उन स्त्रियों का साथ दिया।

परंतु मुख्य शिकायत तो उत्प्रवास कानून और प्रति व्यक्ति कर के बारे में थी। 1913 में गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में अपने जीवन का सबसे अविस्मरणीय आन्दोलन चलाया। उसका इतिहास रोमांचकारी घटनाओं और सर्वोच्च त्याग के उदाहरणों से भरा है। खानों में कोयला खोदने वालों ने हड़ताल कर दी। बहुत अधिक संख्या में दूसरे मजदूरों ने भी काम करना बन्द कर दिया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सत्याग्रहियों की संख्या कई हजार हो गई। 6 000 व्यक्तियों के भोजन की व्यवस्था आवश्यक हो गई। सत्याग्रह के लिए तैयार स्त्री-पुरुषों के लिए अन्य व्यक्तियों के साथ स्वयं गांधीजी भी भोजन तैयार करते थे।

उन लोगों को कब तक शिविर में रखा जाता? गांधीजी ने इस अहिंसक सेना को भारतीयों के लिए निषिद्ध इलाके में प्रविष्ट कराने के लिए एक यात्रा—एक ऐतिहासिक यात्रा—की योजना बनाई। इसके कारण गिरफ्तारियां हुईं, गोलियां बरसाई गईं और बहुत लोग मारे गए। स्थिति भयंकर रूप बनी जा रही थी। गांधीजी बाहर कैसे रह सकते थे? गांधीजी, कैलनबेक तथा पोलक की गिरफ्तारियां करके मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। सरकार को गवाहियां न मिल सकीं। सच्चे सत्याग्रही के नाते गांधीजी ने सरकार को सहायता देकर गवाहियां सुलभ कर दीं। कैलनबेक और पोलक के मुकदमे में वह भी एक गवाह बने। उन सबको भिन्न-भिन्न अवधि के लिए कारावास दे दिया गया।[3]

जब गांधीजी और उनके हजारों अनुयायी कारावास का जीवन बिता रहे थे उस समय गोखले सत्याग्रहियों को सभी संभव सहायता पहुंचाते रहे। भारत के वाइसराय और इसी देश के समाचारपत्रों ने दक्षिण अफ्रीका में यातनाएं सहने वालों के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त की। संघ द्वारा किए जा रहे निर्मम अत्याचारों की निंदा की गई। भारत मंत्री भी उदासीन न बने रह सके। उन्होंने संघ सरकार को अत्याचार रोक देने के लिए लिखा। संघ सरकार ने अपनी इज्जत बचाने के लिए न्यायमूर्ति सालोमन की अध्यक्षता में एक आयोग की नियुक्ति की। आयोग को उस नटाल भारतीय हड़ताल के कारणों का पता लगाना था जो उस झगड़े का एक अंग थी। वह झगड़ा कर के कारण था। आयोग ने गांधीजी की रिहाई की सिफारिश की और 18 दिसम्बर, 1913 को उन्हें छोड़ दिया गया। परन्तु गांधीजी उक्त आयोग की संरचना से इसलिए संतुष्ट नहीं थे क्योंकि उसमें किसी भारतीय की नियुक्ति नहीं की गई थी और इसीलिए उन्होंने आयोग के बहिष्कार का निश्चय किया।

निर्दोष मजदूरों पर गोली चलाए जाने से गांधीजी को बहुत दुख हुआ। उन्होंने तीन संकल्प किए कि जब तक कर हटा नहीं लिया जाएगा तब तक वह मजदूरों के लिबास में रहेंगे, नंगे सिर रहा करेंगे और दिन में केवल एक बार भोजन करेंगे। एक सभा में उन्होंने यह ऐलान भी कर दिया कि यदि भारतीयों की उचित शिकायतें दूर न की गईं तो वह पहली जनवरी, 1914 से निष्क्रिय प्रतिरोध आरम्भ कर देंगे। 1913

म भारतीय राष्ट्रीय काग्रस की बठक कराची म हुई जिसम एक प्रस्ताव पास करक दक्षिण अफ्रीका म किए जा रहे शौयपूण सघप के प्रति हार्दिक और कृतज्ञतापूण सराहना व्यक्त की गई।

गाखले समझ रहे थे कि आयाग की नियुक्ति हा जान म झगडा और नही बढेगा परन्तु वास्तव म ऐसा हुआ नही। गाधीजी और दूसर लोगा ने सकल्प कर लिया था कि वे आयाग क सामन गवाही नही देगे और प्रस्तावित यात्रा करेंगे। गाधीजी के ध्रुव निश्चय ने गोखले का अत्यन्त उद्विग्न कर दिया। उन्हाने तात्कालिक वाइसराय हार्डिग के साथ बातचीत की। मद्रास मे एक भाषण दत समय उन्हान दक्षिण अफ्रीका के कष्ण प्रसगा पर प्रकाश डाला। उन्हाने कहा कि दक्षिण अफ्रीका सघ सरकार की कारवाई ने स्वय उन्ह भी क्षुब्ध कर दिया है। उन्ह बताया गया कि भारतीय विद्राह क बाद इतना भयकर आदालन और काई नही हुआ। उन्हाने दक्षिण अफ्रीका सघ सरकार स एक ऐसी समिति नियुक्त करन के लिए कहा जिसमें भारतीय हितो को समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो और जा इस पूरे प्रश्न पर विचार कर। उस समय हार्डिग द्वारा दिए गए एक भाषण ने इग्लण्ड म ही नही स्वय दक्षिण अफ्रीका सघ म हलचल मचा दी। जनरल बोथा और जनरल स्मटस ने हार्डिग का भारत स वापस बुला लिए जाने का आग्रह किया, परन्तु हार्डिग अपने शब्दा पर अडिग बने रहे। उन्ह भारत के वाइसराय के पद स हटाकर वापस बुला लिए जाने के प्रश्न पर ब्रिटिश मत्रिमण्डल में गम्भीरतापूवक विचार हुआ परन्तु इसे काय रूप नही दिया गया क्योंकि उससे भारत म गम्भीर स्थिति पैदा हो जाने की आशका थी।

हार्डिग द्वारा उठाए गए मजबूत कदम क कारण एक आयाग की नियुक्ति तो हो गई परन्तु उसम किसी भारतीय का शामिल नही किया गया। इससे गाधीजी का बहुत दुख हुआ। भारत की ओर स आयाग के सामने विचार व्यक्त करन के लिए हार्डिग न बजामिन राबटसन को नियुक्त कर दिया।

गाखले का विचार था कि गाधीजी को सघप चलाने का विचार बिलकुल छोड दना चाहिए परन्तु गाधीजी ऐसा नही सोच रहे थ। एक सौ पौण्ड खच करक उन्हान गाखले क पास एक समुद्री तार भजा जिसम उन्होने अपन द्वारा अपनाई गई कायपद्धति की व्याख्या की।

गोखले रोगग्रस्त तो थे ही, उस तार ने उन्हें और भी अस्वस्थ कर दिया। उनका प्रमेह बहुत बढ़ गया और इससे उनके हृदय पर भी प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त गोखले अन्य चिंताओं और उत्तरदायित्वों से भी ग्रस्त थे। वह लोक सेवा आयोग के सदस्य भी थे। शास्त्री का कथन है—मुझे याद है कि उस संकट काल में वह अपने हृदय को दाहिने हाथ से थाम धुक-धुक कर चला करते थे। प्राय ऐसा जान पड़ता था कि वह अपनी चरम सीमा के अंतिम छोर पर आ पहुंचे हैं और हम उनकी ओर इस तरह देखा करते थे मानो वह दुखोत्पादक घटना सन्निकट हो। एक बार वह चिल्ला उठे कि वाइसराय बिलकुल ठीक कहते हैं। संकल्प करके अपने आपको बांध लेना ही गांधी को क्या पड़ी थी। यह राजनीति है और राजनीति का सार तत्व है समझौता।

गोखले गांधीजी से स्नेह करते थे और चाहते थे कि उनके कष्टों का अन्त हो जाए। परन्तु स्वयं गोखले के शब्दों में गांधीजी तो एक भिन्न वस्तु के ही बने थे। अपने संकल्प पालन के लिए गांधीजी ने गोखले से आशीर्वाद मांगा था। गोखले ने उक्त संकल्प से सहमत न होने पर भी गांधीजी को सहायता देना बंद नहीं किया था। भारतीय नरेशों द्वारा दिए उदारतापूर्वक अंशदानों के अतिरिक्त रेम्जे मैक्डानल्ड, बलटाइन चिरोल और मद्रास के कार्यकारी गवर्नर ने भी उक्त निधि के लिए रकमें भेजीं। संघ सरकार उस समय कठिनाइयों में पड़ी थी रेलों के यूरोपियन कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी थी। हड़ताल की स्थिति गंभीर हो गई और हड़ताल समाप्त करने के लिए सरकार ने मार्शल ला का ऐलान कर दिया। जनरल स्मट्स ने गांधीजी से प्रार्थना की कि वह सत्याग्रह रोक दें, आयोग के सामने अपना गवाही देने के लिए तैयार हो जाएं और उन्हें कुछ अवकाश दें। उन्हें परेशानी में पड़ा देख कर गांधीजी ने यह ऐलान कर दिया कि यात्रा नहीं की जाएगी। इस फैसले का बहुत अच्छा प्रभाव रहा और इससे वातावरण ही बदल गया। शिष्टाचार और शौर्य की इन स्वतः आरोपित सीमाओं से जनरल स्मट्स भी प्रसन्न हुए। इसके बाद गांधीजी ने पहली बार जनरल स्मट्स से भेंट की। कुछ और भेंट-वार्ताओं के पश्चात 21 जनवरी, 1914 को गांधी-स्मट्स समझौता हो गया।

जांच आयोग अपना काम कर रहा था। बेंजामिन रावटसन ने भारतीयों की सहायता करने के बदले उनसे दुर्व्यवहार किया और आयोग

के सामन साक्ष्य न दन क लिए उन्हें बुरा भला कहा। गाधीजी ग्रार
उनके ग्रनुयायियो न साक्ष्य नही दिया ग्रौर इसस ग्रायोग का काम ग्रौर
भी जल्दी पूरा हो गया। ग्रागे चलकर ग्रायोग की सिफारिशें मान ली
गई ग्रौर उन्हें भारतीय रिलीफ विधेयक म समाविष्ट कर लिया गया।
उस विधेयक म की गई मुख्य व्यवस्थाए थी तीन पौण्ड क कर की
समाप्ति भारत मे वैध मान जान वाले सभी विवाहो का दक्षिण अफ्रीका
म मान लिया जाना ग्रौर प्रमाणपत्रधारी के ग्रगूठे क निशान स युक्त
ग्रधिवास प्रमाणपत्र का सघ म प्रवश क लिए पर्याप्त प्रमाण मान लिया जाय। 26
जून 1914 को चौबीस के मुकाबले चौसठ मतो म वह विधेयक पास कर दिया गया।
1906 म 1914 तक किए गए लम्बे सघर्ष की समाप्ति इस
तरह हुई। गाधीजी गोखले स्मट्स ग्रौर हार्डिंग गाधीजी के जीवन
इतिहास क इस शानदार ग्रध्याय क प्रधान पात्र रहे। ग्रफ्रीका मे गाधीजी
का काम इस तरह पूरा हुग्रा ग्रौर उनके परिवार ने ग्रफ्रीका छोडने का
निश्चय किया भारत म एक ग्रौर ऐतिहासिक सग्राम म भाग लेने के लिए।
गाधीजी सीधे भारत नही लौटे। गोखले लन्दन में बीमार पडे
थे ग्रौर उन्होने गाधीजी स कहा था कि वह लदन होते हुए भारत लौटें।
गाधीजी न ग्रपन गुरु की ग्राज्ञा का पालन किया। वह 18 जुलाई 1914
को ग्रफ्रीका स रवाना हुए ग्रौर 2 ग्रगस्त को ग्रथात प्रथम विश्वयुद्ध
का ऐलान होने म दो दिन पहल लदन म वह गोखले स नही मिल
पाए क्योकि वह स्वास्थ्य लाभ क लिए वहा स पेरिस जा चुक थे।
उनके साथ सम्पर्क भी स्थापित नही किया जा सकता था क्योकि युद्ध
क कारण पेरिस ग्रौर लन्दन क बीच क सचार साधन नष्ट हो गए थे।
ग्रक्तूबर में गोखले लन्दन लौटे ग्रौर गाधीजी उनस मिले। उस समय दोनो
ही बीमार थ। गोखले हृदय रोग म पीडित थे ग्रौर गाधीजी प्लूरिसी
के प्रकोप म। दोनो एक-दूसरे की बीमारी क कारण चिंतित थे। बह
होन क कारण गोखले न ग्रपन हठी शिष्य को समझाया कि वह भोजन
विषयक परीक्षण न करे। गोखले न गाधीजी स इस बात के लिए ग्राग्रह किया
कि वह ग्रपन डाक्टर जीवराज मेहता की सलाह पर चलें। ग्रन्ततोगत्वा गाधीजी
डाक्टर की सलाह मानने को तैयार हो गए। लन्दन का कुहरेदार मौसम
गोखले को नहीं सुहाया ग्रौर वह भारत लौट आए। गाधीजी जनवरी 1915
म जब उस समय भारत लौटे जब उनके गुरु मृत्यु शैय्या पर पडे थे।

19 अन्तिम अवस्था

इंग्लैण्ड से प्रस्थान करके गोखले 20 नवम्बर 1914 को भारत पहुंचे। उनकी यह इंग्लैण्ड यात्रा जो सातवीं तथा अंतिम थी लोक सेवा आयोग की बैठकों के बारे में की गई थी जिसके वह सदस्य थे। उनका स्वास्थ्य इतना बिगड़ गया था कि इंग्लैण्ड के चिकित्सा विशेषज्ञों का विचार था कि वह तीन वर्ष से अधिक जीवित नहीं रह सकेंगे। इस ऐलान से वह अनुचित रूप से उद्विग्न नहीं हुए और सहज सन्तुलन पूर्वक अपना काम करते रहे।

भारत लौटने के बाद शीघ्र ही गांधीजी गोखले से मिलने पूना गए। समाचारपत्र प्रतिनिधियों के साथ हुई एक भेंट में उन्होंने कहा—जैसा कि गोखले ने सही ढंग से कह दिया है, बहुत समय से भारत से बाहर ही रहने के कारण मुझे अभी तो उन मामलों के बारे में कोई निश्चित धारणा बनाने का अधिकार ही नहीं है जो मूलतः भारतीय हैं और मैं यहां एक प्रेक्षक तथा अध्येता के नाते कुछ समय बिताना चाहता हूं। मैंने ऐसा करने का वचन दिया है और मुझे भरोसा है कि मैं अपना वचन पूरा करूंगा। इस प्रकार उन्होंने अपने इस निश्चय का संकेत दे दिया कि वह भारत में ही रहकर अपना शेष जीवन मातृभूमि की सेवा में लगाएंगे।

गोखले इस बात के लिए बहुत उत्कंठित थे कि गांधीजी सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी में शामिल हो जाएं। गांधीजी भी यह चाहते थे। परन्तु सोसाइटी के आजीवन सदस्य इसके लिए विशेष उत्सुक नहीं थे। उनका विचार यह था कि उनके आदर्श तथा काम करने के तरीके सोसाइटी से भिन्न हैं अतः उनका अविलम्ब सोसाइटी में शामिल हो जाना उचित नहीं है। गोखले ने गांधीजी को यह कह कर धैर्य बंधाया कि मुझे आशा है कि वे आपको स्वीकार कर लेंगे परन्तु यदि वे ऐसा न करें तब भी आपको एक पल के लिए भी यह विचार अपने मन में नहीं आने देना चाहिए कि उनके हृदय में आपके प्रति आदर अथवा

प्रेम का भाव नहीं है। वे इस भय से कोई जोखिम उठाने में सकोच कर रहे थे कि कहीं आपके प्रति उनके अत्यधिक आदर भाव में कमी न आ जाए। परन्तु आप औपचारिक रूप से सोसाइटी के सदस्य बनें या न बनें मैं तो आपको उसका एक सदस्य ही माना करूंगा। गांधीजी ने अंगीकार को ही वस्तुतः महत्वपूर्ण मानते थे।

गांधीजी जो फीनिक्स आश्रम के वासियों के साथ भारत लौटे थे यहां एक आश्रम खोलना चाहते थे। इस सम्बन्ध में गोखले ने एक उदारता पूर्ण प्रस्ताव उनके सामने रखा कि संस्थाओं के साथ की जाने वाली आपकी बातचीत का निष्कर्ष चाहे जो भी हो आश्रम का सारा खर्च मैं स्वयं उठाऊंगा और उस में अपना मानूंगा। उन्होंने अपने एक सहयोगी से कहा कि वह सोसाइटी के खाते में गांधीजी का हिसाब खोल लें और आश्रम के खर्च चुकाने अथवा सार्वजनिक काम के लिए उन्हें जितने रुपया की आवश्यकता हो वह उन्हें उसी हिसाब से दे दें। गोखले के इस अपरिमित प्रेम को देख कर ही गांधीजी ने उनकी तुलना गंगा के साथ की थी।

पुणे यात्रा के कुछ ही समय बाद गांधीजी शांतिनिकेतन गए। वहीं उन्हें गोखले के देहावसान का समाचार मिला। वह गोखले को अपना गुरु मानते थे पर वास्तव में गोखले उनके लिए गुरु से भी अधिक थे। गांधीजी के लिए गोखले मां भी थे पिता भी। एक शोकसभा में अपने हृदयानुभूति विषाद की अभिव्यक्ति उन्होंने इस तरह की—मैं एक सच्चे महामानव की खोज कर रहा था और पूरे भारत में मुझे ऐसा एक ही व्यक्ति मिला। वह महामानव थे गोखले। उनके शोक में गांधीजी ने एक वर्ष तक नंगे पैर रहने का निश्चय किया। वह अविलम्ब 22 फरवरी को पुणे पहुंचे। अब वह सोसाइटी में शामिल होने का सकल्प कर चुके थे। गोखले जब जीवित थे तब उन्होंने उनसे कहा था कि उन्हें सदस्य के रूप में प्रवेश पाने की आवश्यकता नहीं है। अब ऐसा करना उनका धर्म हो गया था।

उनकी सदस्यता के बारे में सोसाइटी में मतभेद था। सदस्यों में लम्बा वाद विवाद हुआ। उनकी फिर बैठक हुई और उन्होंने जो फैसला किया वह न तो गोखले की स्मृति के प्रति ही न्याय कर पाया न गांधीजी के अद्वितीय व्यक्तित्व के प्रति। उन्होंने कहा—कुछ मतभेद होने के कारण बहुत सोच विचार के बाद स्वयं गांधी की प्रार्थना पर और गोखले की

इच्छा के अनुरूप यह निश्चय किया गया है कि सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसाइटी में उनके प्रविष्ट होने के प्रश्न पर अन्तिम रूप से फसला हो जाने से पहले गाधीजी सोसाइटी के सविधान के नियम 17 के अधीन एक वर्ष तक पूरे देश का दौरा कर लें। इस प्रकार उनकी सदस्यता का फसला टाल दिया गया। गाधीजी को जब यह पता चला कि उनकी सदस्यता के बारे मे सदस्यो म तीव्र मतभेद है तो उन्होंने सदस्यता के लिए दिया गया आवेदन पत्र लौटा देना ही अधिक उचित समझा। उन्होने सोचा कि सोसाइटी तथा गोखले के प्रति निष्ठा व्यक्त करने का यही उपाय है। सोसाइटी के प्रधान श्रीनिवास शास्त्री को उन्होने लिख भेजा—सदस्यता के लिए भेजा गया आवेदन पत्र वापस लेकर म सोसाइटी का सच्चा सदस्य बन गया हू। उनके इस कथन का आशय यही था कि वह गोखले की मन भावना से पथक नही है।

गोखले का लोक सेवा आयोग विषयक काम उनके देहान्त के समय पूरा नही हुआ था। यह कहना असगत नही है कि स्वय आयोग की स्थापना ही काग्रेस द्वारा लगातार की जाने वाली इस माग के परिणामस्वरूप हुई थी कि नौकरियो के बारे मे भारतीयो तथा यूरोपियनो के बीच किए जा रहे भेदभाव का अन्त होना चाहिए। अपने वार्षिक बजट भाषणो मे भी गोखले इस बात पर जोर देते रहे थे कि भारतीयो के वैध अधिकार स्वीकार किए जाने चाहिए। वेल्बी आयोग के सामने भी उन्होने इस बात का विस्तारपूवक उल्लेख किया था कि उच्चतर नौकरियो से तो भारतीयो को वस्तुत बहिष्कृत ही माना जा रहा है। 17 मार्च, 1911 को एन० सुब्बाराव पतुलु ने इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल म एक प्रस्ताव रखा, जिसमे यह सिफारिश की गई थी कि देश के असैनिक प्रशासन मे भारतीयो के अधिक तथा उच्च स्थानो पर नियुक्तिया पाने के अधिकारो पर विचार करने के लिए सरकारी तथा गैर-सरकारी अधिकारियो के एक आयोग की नियुक्ति की जानी चाहिए। गोखले ने इस प्रस्ताव का जोरदार समर्थन किया था पर सरकार इसे स्वीकार करने की मन स्थिति में नहीं थी। अत वह इस सम्बन्ध में टालमटोल ही करती रही।

उस समय से कोई पच्चीस वर्ष पहले एक लोक सेवा आयोग की नियुक्ति हुई थी और रानाडे उसके एक सदस्य थे। उनसे आयोग की

सिफारिशों को स्वीकार करने में सरकार ने कोई आतुरता नहीं दिखलाई थी और उस दिशा में अधिक प्रगति न होने के कारण भारतीयों को बहुत निराशा हुई थी। अब सरकारी प्रवक्ता का कहना यह था कि उक्त आयोग की सिफारिशें यह पता लगाने के लिए स्थानीय सरकारों के पास भेजी जाएगी कि उन्हें किस सीमा तक कार्यरूप दिया जा सकता है। इस तरह तो मानो ऐसी किसी बात को व्यवहारतः अस्वीकार कर देने की पुरानी प्रथा का ही पालन किया गया जिसे सिद्धांततः अस्वीकार नहीं किया जा सकता था। परन्तु वह समय इस तरह के छल-प्रपंच के लिए उपयुक्त न था और सम्राट की यात्रा का समय निकट होने के कारण सरकार उस समय किसी प्रकार का आन्दोलन कराना नहीं चाहती थी।

प्रस्ताव पेश किए जाने के लगभग डेढ़ वर्ष बाद भारत में सरकारी सेवाओं के सम्बन्ध में जाँच-पड़ताल करने के लिए एक राजकीय आयोग की नियुक्ति का ऐलान किया गया। इस्लिंगटन उस आयोग के अध्यक्ष थे और उसके सदस्यों में तीन भारतीय—गोखले, एम० बी० चौबाल और अब्दुर्रहीम थे। ब्रिटिश सदस्यों में रैम्जे मैक्डानल्ड और वैलेंटाइन चिरोल शामिल थे। आयोग में सरकारी सदस्यों तथा उनके समर्थकों का निश्चित बहुमत था और भारतीय अल्पसंख्या में अर्थात 8 के मुकाबले में 3 थे। आयोग ने दिसम्बर 1912 में मद्रास में अपना काम शुरू किया और 14 अगस्त 1915 को अपनी रिपोर्ट दी। बड़े नगरों में जाकर साक्ष्य संग्रह का काम उसने 1913 के आरम्भ में शुरू किया। वह इंग्लैण्ड भी गया जहाँ जैसा कि पहले कहा जा चुका है गोखले चार महीने ठहरे थे। आयोग के सदस्य होने के नाते गोखले को बहुत कष्ट-साध्य काम करना पड़ा। पूरा शासन तंत्र उनके विरोध के लिए कटिबद्ध खड़ा था। आयोग को यह बताने के लिए साक्ष्य पर साक्ष्य दिए जा रहे थे कि भारत में योग्यता और सेवा का अभाव है, इसीलिए और अधिक भारतीयों की नियुक्ति नहीं की जा सकती। गोखले को अत्यंत दक्षता तथा धैर्यपूर्वक उन लोगों से साथ जिरह करनी पड़ी। रात में वह लिखित साक्ष्य का सूक्ष्म अध्ययन किया करते थे ताकि प्रतिकूल उक्तियों का खण्डन किया जा सके। इन सब कामों के लिए जितनी कष्ट साधना आवश्यक थी वह केवल गोखले ही कर सकते थे।

गोखले अपने जीवन काल में आयोग का काम पूरा हुआ न देख

वह प्रतिभा और चरित्र दोनों की दृष्टि से कितने अधिक महान थे।
सत्य तो यह है कि जब वह किसी बात पर बहस करते थे तो दूसरे को
उत्तर में कुछ कह पाना ही कठिन हो जाता था। तथ्यों के नाते उनमें
इतनी अधिक यथातथ्यता रहती थी और प्रसंगाधीन विषय से सम्बन्धित सभी
बातों पर उनका इतना अधिक प्रभुत्व होता था कि उनके ममी तर्कों का
सरलता से सामना कर लेना प्राय असम्भव ही रहता था।

इस्लिंगटन आयोग की न तो नियुक्ति गरिमापूर्वक हुई थी और
न उनकी सिफारिशों को ही तत्परतापूर्वक कार्य रूप दिया गया। देश
के प्रशासन में भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने से कहीं अधिक आयोग
का उद्देश्य सम्राट और सम्राज्ञी की भारत यात्रा के समय किसी प्रकार
के आंदोलन से बच रहना था। विश्वयुद्ध शुरू होते रहने के लगभग
एक वर्ष उपरांत प्रस्तुत होने वाली उस रिपोर्ट पर इस देश में अधिक
ध्यान नहीं दिया गया। ऐसी दशा में जिन भारतीयों ने यह विचार
व्यक्त किया था कि रिपोर्ट सरकारी अभिलेखागार में ही धूल चाटती
रहेगी उन्होंने विशेष गलती नहीं की थी।

दूसरी ओर स्वयं विश्वयुद्ध के कारण भारत के प्रति ब्रिटिश सरकार
के रवैये में कुछ परिवर्तन हुआ। सुरक्षात्मक काम प्रभावशाली ढंग से
करने के लिए यह अनिवार्य था कि शासकों को भारतीय जनता का सह-
योग प्राप्त हो। गोखले के सम्बन्ध में दिए गए भाषणों में मान्यवर
श्रीनिवास शास्त्री ने अत्यंत सजीव ढंग से एक घटना का वर्णन किया
है जिससे इस दिशा में बम्बई के गवर्नर विलिंगडन जिसे श्रीनिवास
शास्त्री ने, एक सच्चा उदारतावादी कह कर पुकारा है द्वारा किए गए
काम पर प्रकाश पड़ता है। विश्वयुद्ध का ऐलान होने के बाद शीघ्र
ही विलिंगडन ने यह अनुभव किया कि वह समय आ गया है जब
सरकार को अपनी ही इच्छा से उस दिशा में कोई उल्लेखनीय कदम उठाना
चाहिए। 1915 के आरम्भ में ही उन्होंने यह निष्कर्ष निकाल लिया था
कि अंग्रेज राजनीतिज्ञों को भारतीयों द्वारा राजनीतिक प्रगति के लिए
आग्रह किए जाने तक प्रतीक्षा नहीं करते रहना चाहिए। उनका विचार
था कि उन्हें इस दिशा में अपनी ओर से ही पहल करनी चाहिए।

गोखले उस समय जीवित थे। अतः इस सम्बन्ध में कुछ संकेत
प्राप्त करने के लिए विलिंगडन का ध्यान गोखले की ओर जाना स्वाभाविक

था कि कम-से-कम विलन सुधारों से भारत य सतुष्ट हो जाएगे। विलिंगडन का विचार था कि गोखले द्वारा तैयार की गई योजना को स्वय सरकार द्वारा बनाई गई योजना के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। सारा मामला बहुत ही गुप्त रखा जाना था। विलिंगडन ने इस काम के लिए गोखले को ही इसलिए चुना क्योंकि उनके विचारानुसार गोखले उन समस्याओं से अवगत थे जहा लेन देन हो सकता था। गोखले को अग्रेज राजनेताओं का विश्वास भी प्राप्त था, अत उनकी ओर से आने वाले किसी भी सुझाव पर गभीरतापूर्वक विचार होना स्वाभाविक था। बहुत सम्भव है कि इस सम्पूर्ण योजना में विलिंगडन से भी ऊचे किसी सत्ता ने उसे अपना मध्यस्थ बनाया हो। गोखले को यह जानने की तो विशेष उत्कण्ठा नहीं थी कि उक्त विचार मूलत किसके मस्तिष्क की उपज है, परन्तु उस बात का निश्चय किए बिना वह उस कठिन कार्य को अपने हाथ में लेने के लिए तैयार न थे कि उस योजना में समाविष्ट बातों के लिए भारत के प्रसिद्ध राजनेताओं का मतैक्यपूर्ण समर्थन प्राप्त हो जाएगा।

गोखले की यह चिंता उचित थी। यदि भारत में उनके समकक्ष या बुजुर्ग लोगों को यह पता लगता है कि वह योजना गोखले की देन है तो वे सम्भवत उसे बहुत ऊचे या बहुत नीचे कह कर अस्वीकार कर देते। अत गोखले का विलिंगडन को यह बता देना स्वाभाविक ही था कि वह इस सम्बन्ध में फिरोजशाह मेहता और आगा खा से सलाह करना चाहते हैं। विलिंगडन इसके लिए सहमत हो गए।

स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण गोखले बम्बई जाने में असमर्थ थे। उन दोनों का पुणे बुलाया जाना उन प्रतिष्ठित नेताओं की शान के प्रतिकूल समझा जाता। अन्तत उन्हें गोखले के साथ राजनैतिक महत्व के एक अत्यंत अपरिहार्य विषय पर बातचीत करने के लिए पुणे आने का बुलावा भेजा गया। परन्तु उक्त मीटिंग की तारीख निश्चित होने से पहले ही गोखले यह अनुभव करने लगे कि उनके जीवन के दिन समाप्त होने वाले हैं। गोखले के स्वास्थ्य की चिन्ताजनक स्थिति से अनवगत विलिंगडन ने उनके पास एक स्मरणपत्र भेजा। यह बृहस्पतिवार की बात है। शुक्रवार को गोखले का देहांत हो गया। जैसा कि श्रीनिवास शास्त्री ने कहा है—गोखले के पास जो शक्ति शेष रह गई थी उसे सबका

सचित करके गोखले ने पेंसिल से एक प्रारूप तैयार किया और उनके
हाथ का लिखा वह मसौदा अब सोसाइटी के पास मौजूद है।
गोखले के देहावसान के बाद प्रारूप की तीन नकल भेजी गईं—एक
विलिंगडन के पास दूसरी मेहता के पास और तीसरी आगा खाँ के पास।
वह एक गुप्त प्रलेख था जो अगस्त 1917 में उस समय प्रकाश
में आया जब माँटेगु ने सुधारों के विषय में अपनी घोषणा की। हिज
हाइनेस आगा खाँ ने वह प्रारूप इंग्लैण्ड में प्रकाशित किया और भारत
में उक्त प्रलेख को गोखले के राजनैतिक वसीयत और इच्छापत्र कह कर
पुकारा गया। श्रीनिवास शास्त्री उक्त प्रलेख को ऐसा नहीं मानते थे और
यह ठीक भी था। वह तो एक योजना का प्रारूप मात्र था, जिसमें यह
बताया गया था कि सरकार अपनी इच्छा से भारत को कम से कम क्या
दे सकती है। उक्त योजना में जो प्रस्ताव रखे गए थे उन्हें ब्रिटेन को
अविलम्ब और स्वेच्छया स्वीकार करना था ताकि भारत कम से कम
कुछ समय के लिए तो शांत रह सके क्योंकि युग की समाप्ति से भारत
के इतिहास का एक उज्ज्वलतर अध्याय खुल सकता था।

गोखले भारत के स्वराज के आकांक्षी थे। स्वराज से उनका
अभिप्राय था—भारत द्वारा राजनैतिक दृष्टि से उसके समान स्थिति की
प्राप्ति जो स्वशासी डोमिनियनों को प्राप्त है। उससे अधिक कुछ नहीं
ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के बाहर नहीं उसके अंदर ही रह कर। और अपना
यह लक्ष्य वह कैसे प्राप्त करना चाहते थे? विशुद्धतः संवैधानिक उपायों
द्वारा। श्रीनिवास शास्त्री* द्वारा की गई व्याख्या के अनुसार यह थी गोखले
की स्वराज विषयक संकल्पना। अतः इसे उनकी वसीयत और इच्छापत्र
तो माना ही जा सकता था। स्वराज हो चाहे उपनिवेशों के ढंग का
स्वशासन गोखले ने इस महत्वपूर्ण तथ्य से दृष्टि कभी नहीं हटाई
कि वह प्रगति शांतिपूर्ण तथा व्यवस्थित रीति से ही होनी चाहिए। यहाँ
यह स्मरण कराना अप्रासंगिक नहीं है कि 1930 तक गांधीजी भी
स्वराज की व्याख्या करते हुए उसे निःसंकोच 'डोमिनियन स्टेटस' कहा
करते थे। जैसे जैसे समय बदला और जब ब्रिटिश सरकार भारतीयों का
विश्वास खो बैठी तो गांधीजी को स्वराज की अपनी परिभाषा में भी

*श्रीनिवास शास्त्री, लाइफ आफ गोपाल कृष्ण गोखले, पृष्ठ 120

मशाधन करना पडा। नया लक्ष्य था पूर्ण स्वराज अथवा स्वाधीनता, परन्तु उसकी प्राप्ति के साधन अहिंसापूर्ण ही बने रहे।

अब हम गरम और नरम दलों के मतभेदों के सूत्र फिर पकड सकते हैं। सूरत में कांग्रेस में हुए विभेद के उपरांत तिलक को छ वर्ष का कारावास देकर माडले भेज दिया गया। कांग्रेस के सम्पूर्ण तन्त्र पर नरम दल वालों का निर्विघ्न नियंत्रण हो गया। इस प्रकार विरोध का अभाव हो जाने पर कांग्रेस अधिवेशन उत्तरोत्तर नीरस होते चले गए और उनके सम्बन्ध में देशव्यापी उत्साह अधिक न रहा। एक निष्प्राण राष्ट्रीय संगठन सरकार की निर्दय दमन नीति से उत्पन्न चुनौती का सामना कैसे कर सकता था? अब नरम दल के कुछ लोग यह अनुभव करने लगे कि कांग्रेस में पुन प्राण भरने के लिए उस गरम दल को कांग्रेस में ले आना आवश्यक है, जो उससे अलग हो गया है।

लोक भावना का सही अनुमान लगा कर गोखले ने अपने वरिष्ठ सहयोगियों को यह समझाने का विशेष प्रयास किया कि उन्हें परिस्थिति की गम्भीरता से अवगत होकर गरम दल वालों के साथ मिलकर काम करना चाहिए। अन्ततोगत्वा यह फैसला हुआ कि कांग्रेस छोड जाने वालों के सम्मानपूर्ण पुन प्रवेश के लिए कोई न कोई संधि सूत्र खोज निकालना चाहिए। समझाने के विचार से यह सोचा गया कि कांग्रेस के प्रतिनिधियों के लिए यह अनिवार्य न रखा जाए कि वे कांग्रेस इकाई द्वारा निर्वाचित हों। यदि वे कांग्रेस संविधान के प्रथम अनुच्छेद को स्वीकार करते हों तो उनका निर्वाचन सार्वजनिक संगठनों द्वारा भी किया जा सकता है भले ही वे संगठन कांग्रेस से सम्बद्ध हों या न हों। एक और व्यवस्था यह कर दी गई कि उक्त प्रतिनिधियों का चुनाव सार्वजनिक सभाओं में किया जा सकता है बशर्ते कि उन सभाओं का आयोजन उक्त संगठनों द्वारा किया गया हो।

इस संधि सूत्र के पीछे एक इतिहास छिपा था। सूरत में हुए विभेद के उपरांत भी अविभक्त कांग्रेस का समर्थन करने वाले लोकमान्य तिलक जून 1914 में जेल से रिहा कर दिए गए थे। अब उनका प्रभाव केवल महाराष्ट्र में ही नहीं, पूरे देश में बहुत बढ गया था। देश के नेतृत्व के लिए जनता उनकी ओर देखने लगी थी। जहां तक नरम दल वालों का सम्बन्ध था समय बीतने के साथ-साथ उनकी शक्ति में ह्रास होना

गया। गोखले बीमार थे और मदनमोहन मालवीय नरम दल द तर का म
नेतृत्व सम्भाल नहीं सकते थे। राजनीतिक दश के वस्तुस्थिति म विक्षुब्ध हो
गए थे और विश्वयुद्ध के समय वह अनिश्चिता में थे। श्रीनिवास शास्त्री आग
आना पसन्द ही न करते थे। एस० पी० सिन्हा [जो बाद म लार्ड बने] नई भावना
के साथ मेल नहीं खाते थे और उन्होंने राजनीति में दिलचस्पी लेना
छोड़ दिया था यद्यपि उन्हें 1915 में होने वाले कांग्रेस के बम्बई अधि
वेशन की अध्यक्षता करनी थी। मेहता 1909 में कांग्रेस के अध्यक्षता
अस्वीकार कर चुके थे और वह देश का नेतृत्व करने में समर्थ भी नहीं
थे। वाचा सुब्बाराव पंतुलु और मुधोलकर जैसे नरम रहे और उनमें
कांग्रेस के नेतृत्व की आशा नहीं की जा सकती थी। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
अपनी पारी खेल चुके थे और नई भावना के साथ उनका भी मेल
नहीं बैठता था। भारतीय रंगमंच पर गांधी जी ने अभी प्रवेश ही किया
था और वह यहाँ की राजनीति का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे।

अत नरम दल वाले संख्या में भी कम होते जा रहे थे और
महत्व में भी। ऐसी दशा में कांग्रेस का नेतृत्व उन लोगों के हाथ में
जाना स्वाभाविक था जिन पर तिलक का प्रभाव था। इसका पूर्वानुमान
गोखले ने लगा लिया था। उनके सामने दो विकल्प थे—कांग्रेस को
समाप्त हो जाने देना अथवा गरम दल वालों को शानशौकत के साथ
कांग्रेस में आने देना। गोखले ने दूसरा विकल्प पसन्द किया पर कुछ
लोगों का विचार है कि उन्होंने आगे चल कर अपना विचार बदल लिया।
आइए इस घटनाक्रम पर तनिक दृष्टि डाल लें।

उस समय तक श्रीमती बेसेंट राजनीति में प्रवेश कर चुकी थी
और वह कांग्रेस के विभिन्न वर्गों में एकता पैदा कर देना चाहती थी।
वह सुब्बाराव पंतुलु के साथ 7 दिसम्बर 1914 को पूना गई। वहाँ
नरम और गरम दल के नेता—गोखले और तिलक—मौजूद थे। सर्वेंट्स
आफ इण्डिया सोसाइटी में ठहर कर उन्होंने गोखले और तिलक के साथ
बातचीत की और उस वार्ता के फलस्वरूप वह संधि सूत्र तैयार किया
गया जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है।

इसी प्रकार श्रीमती बेसेंट एक ऐसा सूत्र खोज निकालने में समर्थ
हो गई जो दोनों वर्गों को स्वीकार्य हो सके। तिलक का एक वक्तव्य
और गोखले द्वारा तैयार किया गया एक प्रस्ताव साथ लेकर वह मेंगम

लौट गईं। वहां 1914 के अंत में कांग्रेस अधिवेशन होने वाला था उनका विचार था कि रास्ता साफ हो गया है और एकता जरूर हो जाएगी, परन्तु अभी ऐसा नहीं होना था।

श्रीमती बेसेंट के पूणे रवाना होने और गोखले द्वारा कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन के मनोनीत अध्यक्ष भूपेन्द्रनाथ बसु के नाम एक पत्र लिखे जाने के बीच की अवधि में क्या घटित हुआ यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कहा जाता है कि मेहता और वाचा ने समझौता प्रस्ताव पर असहमति प्रकट की थी।

फिरोजशाह मेहता ने ला अपने विचार गोखले तक पहुंचाने के लिए अपने एक सहयोगी डॉ० जा० दलवी को पूना भेजा था पर वह अस्वस्थ होने के कारण गोखले से न मिल सके और उन्होंने गोखले को 1 दिसम्बर 1914 को पत्र लिख दिया। उन्होंने लिखा—अविभक्त कांग्रेस के बारे में इस समय जो बातचीत चल रही है उस संदर्भ में फिरोजशाह मेहता ने मुझे यह काम सौंपा है कि मैं उनका यह सन्देश आप तक पहुंचा दूं 'मुझे इस सम्बन्ध में कुछ पता नहीं है। बहुत बड़ा षड्यंत्र रचा जा रहा है। अतः मैं गोखले से प्रार्थना करता हूं कि जब तक मैं व्यक्तिगत रूप से उनसे मिल कर इस विषय में बातचीत न कर लूं तब तक वह इस दिशा में किसी बात पर वचनबद्ध न हों।'

इस पत्र से स्पष्ट है कि मेहता यह चाहते थे कि इस सम्बन्ध में कुछ निश्चय होने से पहले उनसे उनकी बातचीत हो जाए। सम्भवतः गोखले यह समझते थे कि मेहता इस सीमा तक नहीं जाएंगे कि वह उनके द्वारा उठा लिए गए कदम को अस्वीकार कर दें। अब उनका विश्वास अस्थिर हो उठा। यदि गोखले के वश में होता तो वह अपने बढ़ाए हुए कदम पीछे नहीं हटाते, परन्तु मेहता को जिन्हें वह अपना नेता मानते थे वह विरोधी नहीं बनाना चाहते थे। उन्होंने भूपेन्द्रनाथ बसु के नाम एक गोपनीय पत्र लिखा। कांग्रेस अधिवेशन में बसु ने इस पत्र का उल्लेख तो किया परन्तु गोपनीय होने के कारण उसमें लिखी बातें प्रकट नहीं कीं। उन्होंने कांग्रेस को उक्त पत्र के आधार पर यह अवश्य बता दिया कि तिलक ने स्पष्ट रूप से अपना यह निश्चय व्यक्त कर दिया है कि उन्होंने यदि कांग्रेस में प्रवेश कर लिया तो वह सरकार का बहिष्कार करेंगे तथा अन्य प्रतिरोधात्मक उपाय अपनाएंगे। इस सूचना ने बम विस्फोट का कर दिया। श्रीमती बेसेंट ने अविलम्ब तिलक के पास

एक तार भेजा—संशोधन रखा गया। वाद विवाद स्थगित। विरोधी कहते हैं आप सरकार के बहिष्कार के समर्थक हैं। मैं कहता हूँ, यह गलत है। तार द्वारा बताएं कि सत्य क्या है। उत्तर का तार व्यय चुका दिया गया है।

तिलक ने उत्तर दिया—सरकार के बहिष्कार का समर्थन मैंने कभी नहीं किया। प्रसिद्ध राष्ट्रवादी नगरपालिकाओं तथा विधान परिषदों में काम करते रहे और कर रहे हैं और मैंने निजी तथा सार्वजनिक दोनों प्रकार से उनके इस काम का पूर्ण समर्थन किया है।

यह तार कांग्रेस की विषय समिति में पढ़ कर सुनाया गया। भूपेन्द्रनाथ वसु ने इस बात के लिए बार-बार खेद प्रकट किया कि उन्होंने तिलक पर वैसा होने का आरोप लगाया जैसे वह वास्तव में थे नहीं, इसके लिए उनकी जानकारी का प्रधान स्रोत था गोखले का पत्र। उस घटना का परिणाम यह हुआ कि समझौते का प्रश्न एक समिति को सौंप दिया गया जिसे अगले वर्ष कांग्रेस के सामने अपना प्रतिवेदन पेश करना था। 1915 में अधिवेशन बम्बई में हुआ और उसमें एक प्रस्ताव पास करके कांग्रेस के संविधान में ऐसे संशोधन कर दिए गए जिससे गरम दल के लोग इस संस्था में फिर प्रवेश कर सकें। 1916 में यह प्रस्ताव लागू हुआ और गरम दल वाले कांग्रेस में पुनः प्रविष्ट हो गए।

प्रश्न था कि उस विवादास्पद पत्र में वास्तव में क्या लिखा था और उस पत्र का फिर क्या हुआ? गरम दल वाले तब तक शान्त नहीं हो सकते थे जब तक वसु के नाम लिखे गए गोखले के गोपनीय पत्र को प्रकाशित न किया जाता। तिलक ने केसरी में प्रकाशित एक लेख में यह लिखा कि भूपेन्द्रनाथ वसु उस पत्र को अत्यधिक आपत्तिजनक समझते थे अतः उन्होंने गोखले से कहा कि वह उससे कुछ हल्के ढंग का पत्र लिख भेजें ताकि वह विषय समिति में पढ़ा जा सके। गोखले ने अपना पत्र प्रकाशित तो नहीं किया परन्तु तिलक से यह प्रार्थना अवश्य की कि वह चाहें तो उनसे मिल कर स्वयं वह पत्र देख लें अथवा अपने किसी विश्वासपात्र व्यक्ति को वहां भेज कर वह पत्र पढ़वा लें और यदि फिर भी वे लोग उस पत्र के प्रकाशन का आग्रह करेंगे तो वैसा कर दिया जाएगा। तिलक ने गोखले की यह प्रार्थना स्वीकार न की और वाद-विवाद बहुत समय तक तिलक और गोखले के समाचार पत्रों में चलता रहा।

फिरोजशाह मेहता के जीवनचरित लेखक एच० पी० मोदी ने उस पत्र पर प्रकाश डाला है। उसके प्रसगानुकूल अवतरण यहा उद्धृत किए जा रहे हैं। गोखले ने भूपेद्रनाथ बसु को लिखा था—तीन वर्ष पहले जब मदनमोहन मालवीय ने और मैंने कलकत्ता में यह आग्रह किया था कि प्रतिनिधि निर्वाचित करने का अधिकार उन सावजनिक सभाओ को दे दिया जाना चाहिए जो इस बात का निश्चय दिला सके कि उक्त सभाओ में भाग लेने वाले व्यक्ति अनुच्छेद 9 को स्वीकार करते हैं। उस समय हम यह समझते थे कि विभिन्न प्रातो के हमारे गरम दलीय साथी अपने तरीको की भूल का अनुभव कर चुके है और यह मानने लगे है कि देश की वतमान परिस्थितियो में केवल काग्रेस द्वारा अपनाए गए तरीको से ही राजनैतिक काम करना सभव है कि वे मौन भाव से काग्रेस में शामिल हो जाना तो चाहते हैं, परन्तु स्वाभिमान उनके माग में बाधक है क्योकि वे उन्ही लोगो के सामने निर्वाचन के लिए प्रार्थनापत्र नही पेश करना चाहते जिन्हे वे अपना प्रतिद्वंदी मानते हैं और यह कि उनके लिए उचित यह था कि हमें अपने नियमो की कठोरता में फिर शामिल हो जाना उतना अपमानजनक न रहे। 1907 के विभेद के कारण सावजनिक जीवन में पैदा हो जाने वाली खाई को पाटने का जल्दी से जल्दी अवसर ढूढ निकालने की अत्यधिक आवश्यकता ने भी हमें इस प्रकार के दृष्टिकोण के लिए विशेष रूप से प्रेरित किया ताकि देश की उन्नयोन्मुख पीढियो को उस विभेद से उत्पन्न घातक परम्परा में रह कर जीवन न बिताना पडे। वास्तव में पिछले सप्ताह तक इस सम्बन्ध में मेरा यही विचार था और मैं उन लोगो से सम्बन्ध विच्छेद किए बिना, जिन्हे मैंने अपना नेता माना है अथवा जिनके साथ रह कर मैंने विगत वर्षों में काम किया है—काग्रेस में और लोगो को भी इसी विचार का पोषक बना देने के लिए मैं यथाशक्ति अधिकतम प्रयत्न करने को तैयार था।

इस अवतरण का अतिम वाक्य बहुत महत्वपूर्ण है। गोखले उन लोगो से सम्बन्ध विच्छेद करने के लिए तैयार नही थे जिन्हे वह अपना नेता मान चुके थे और सम्बन्ध विच्छेद की सभावना पैदा हो ही जाने पर उन्होने गरम दल वालो से ही सम्बन्ध तोडना पसन्द किया, अपने नेताओ से नही।

पत्र के पिछले भाग से स्पष्ट है कि आरम्भ में दिखाई पडने वाली समझौते की सभावना समाप्त कैसे हो गई । गोखले ने आगे कहा था—तिलक ने सुब्बाराव को स्पष्ट तथा निभ्रांत शब्दावली में यह बता दिया था कि तथाकथित काग्रेस सिद्धात में निहित स्थिति को स्वीकार करने पर भी काग्रेस के उन वतमान तरीका के प्रति उनकी आस्था नहीं है जिनमें यथासम्भव सरकार के साथ सहयोग करने और आवश्यकतानुसार सरकार का विरोध करन की व्यवस्था है। उक्त तरीके का स्थान वह सवैधानिक सीमाओ मे रह कर सरकार का विशुद्धत विरोध करने के तरीके को देना चाहते थे। दूसरे शब्दो में वह प्रतिरोध की आयरिश पद्धति के पक्षपोषक थे। दूसरे जहा तक हमारा सम्बध है, हम देश के शासन तत्र —विधान परिषदो, म्यूनिसिपल और स्थानीय बार्डो लोक सेवाओ आदि में अधिक से अधिक भाग प्राप्त करन के लिए प्रयत्नशील हैं। दूसरी ओर, तिलक यहा सरकार के सामने और इग्लैण्ड में ब्रिटिश जनता के सामने एक ही अर्थात यह माग रखना चाहते ह कि भारत को स्वशासन की सुविधा दे दी जाए और वह सुविधा न मिलने तक वह अपने देशवासियो से यही आग्रह करना चाहते हैं कि वे लोक सेवाओ अथवा विधान परिषदो और स्थानीय तथा म्यूनिसिपल निकायो के साथ कोई सम्बध न रखें।

अब हम भूपेन्द्रनाथ बसु के नाम लिखे गए गोखले के दूसरे अर्थात कुछ हल्के पत्र का उल्लेख करेंगे जो बसु के कहने स लिखा गया था। 25 दिसम्बर 1914 को गोखले न उन्हें लिखा था—मेरी स्थिति सक्षेप में इस प्रकार है—काग्रेस से अलग हो जान वालो को फिर उसमें प्रविष्ट करा देने के लिए मैं किसी भी तकसगत काम के लिए तैयार हू, बशर्ते कि वे वतमान तरीको से काग्रेस के वतमान कायक्रम को पूरा करने में हमें सहयोग देन के लिए वापस आने को तैयार हो। दूसरी ओर यदि वे 1906 07 का वही सघष फिर आरम्भ करना चाहते हैं जिसका अन्त सूरत में होने वाले विभेद के रूप में सामन आया—जैसा कि तिलक न स्पष्ट रूप मे सुब्बाराव से कहा है—तो मैं ऐसे किसी परिवतन का निश्चित रूप से विरोधी हू जिससे उनके पुन प्रवेश में सुगमता हो।

तिलक ने इसलिए बुरा माना क्योकि उन्हें एक ऐसे रूप में चित्रित किया गया था जो यथाथ न था। उन्हें काग्रेस के सामने अपने विचार रखने का अवसर दिया जाना चाहिए था और प्रतिनिधि उनकी बात

स्वीकार या अस्वीकार कर सकते थे। उन्होंने इस तथ्य का विरोध किया कि उन्हें ऐसी बातों के कारण प्रविष्ट होने से रोका जा रहा था जिनका दूसरे लोग उन्हें पक्षपोषक समझते थे। इस प्रकार संधि का वह प्रस्ताव भ्रांति हठधर्मिता और पुराने पूर्वाग्रहों की चट्टान से टकरा कर चूर चूर हो गया।

अस्तु मद्रास अधिवेशन किसी प्रत्यक्ष निष्कर्ष के बिना ही समाप्त हो गया। अधिवेशन के बाद भी वाद विवाद अपने पूरे जोर पर रहा। दोनों पक्षों को यह खेद रहा कि खाई पाटी नहीं जा सकी। तिलक ने गोखले के नाम एक पत्र लिख कर यह कहा कि वह नरम दल वाला के जोरदार भाषणों की स्तुतिमात्र करने के लिए कांग्रेस में प्रवेश करना नहीं चाहते। उनके कुछ निजी विचार थे और आगे बढ़ने का एक निश्चित कार्यक्रम भी था। उधर गोखले ने जो रवैया अपनाया था, वह उसमें दृढ़ थे। वह दूसरे दल को कांग्रेस में इसीलिए प्रविष्ट कराना चाहते थे जिससे वह उस कार्यक्रम में सहयोग दे जिसका पालन उनका दल कर रहा था।

यहां एक संभावित भ्रम का निराकरण उचित जान पड़ता है। भूपेन्द्रनाथ बसु के नाम भेजा गया अपना वह ऐतिहासिक पत्र गोखले ने अपनी ही इच्छा से नहीं लिखा था। स्वयं बसु ने प्रसंगाधीन विषय पर अपने विचार व्यक्त करने के लिए उनसे कहा था। गोखले के पत्र में, सरकार का बहिष्कार जैसी कोई अभिव्यक्ति नहीं थी जिसका संबंध तिलक के साथ जोड़ा गया। वह टिप्पणी तो स्वयं बसु ने की थी। गोखले ने बसु के नाम 21 जनवरी, 1915 को जो पत्र लिखा उसका प्रसंगाधीन अंश यह है—"यह निश्चित बात है कि विशेष रूप से ऐसी दशा में तो आपको विषय समिति में मेरे उस पत्र का उल्लेख करना अथवा सदस्यों के सामने उसका तथाकथित सार संक्षेप प्रस्तुत करना ही नहीं चाहिए था जबकि मैंने, आपके ही कहने पर, दूसरा वह पत्र लिख भेजा था जो दूसरों के सामने पढ़ा जा सकता था और जिसमें स्वयं मैंने अपने उस लम्बे पत्र का सार संक्षेप प्रस्तुत कर दिया था। फिर यदि आपने ऐसा कर ही दिया था तब भी, मैं समझता हूं कि आपको अगले दिन, तिलक का वह तार मिल जाने पर, उनसे ऐसे शब्दों में क्षमायाचना नहीं करनी चाहिए थी जिनका आशय यह लगाया जा सकता हो कि

मैंने आपको धोखे में डाला। वह पूरा प्रसग खेदजनक रहा है और मैं समझता हू कि आपने मेरे साथ बहुत अनुचित बर्ताव किया, विशेष रूप से इसलिए कि मैंने अपना यह गोपनीय पत्र इच्छा से नही, आपके पत्र के उत्तर में लिखा था। सदस्यो के सामने मेरे पत्र का मूल आशय रखते समय आपने सरकार का बहिष्कार तथा अपनी ही ओर से ऐसी अन्य अभिव्यक्तिया कहीं जो मेरे पत्र में नहीं थी। अत यदि उन अभिव्यक्तियो के कारण आपने क्षमायाचना की तो मुझे उस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना है ।

भूपेन्द्रनाथ वसु ने 27 जनवरी 1915 को इस पत्र का उत्तर भेजा। उस उत्तर का सार सक्षेप में यह था कि गोखले द्वारा 15 दिसम्बर को लिखा गया गोपनीय पत्र वसु के मद्रास पहुचते ही सावजनिक सम्पत्ति बन गया। उन्होंने स्वीकार किया कि उन्होंने वह पत्र तीन व्यक्तियो को दिखाया था परन्तु मोतीलाल घोष को नही दिखाया। उन्होंने कहा कि उनकी स्मरण शक्ति अच्छी नही है और उन्हे यह याद नहीं कि उन्होंने नाम लेकर गोखले का उल्लेख किया। फिर भी उन्होंने यह स्वीकार किया कि गोपनीय पत्र का हवाला देना वास्तव में एक भूल थी। यदि वसु स्थिति का सामना अधिक अच्छी तरह करते तो मद्रास में ही भ्रान्ति का निराकरण हो सकता था।

सरकार सबसे अधिक सुखपूर्ण स्थिति में थी। यद्यपि विश्वयुद्ध जारी था तथापि उन्हें लोगो की पूरी सहायता और सदभावना प्राप्त थी। जनता का कोई भी वर्ग वह सहायता बद कर देने के लिए नही कह रहा था। यदि दोनो दल अपने पुराने पूर्वाग्रह छोड देते और आरम्भ से ही एक अविभक्त दल के रूप में काम करते तो सम्भवत भारत के वर्तमान इतिहास का रूप कुछ और ही होता।

20 अंतिम दिन

अन्त बहुत तजी से निकट चला आ रहा था। गोखले को इग्लैण्ड म ही चेतावनी दे दी गई थी कि वह अब अधिक समय तक जीवित नही रह सकेंगे। उनकी इच्छा थी कि शेष जीवन परिश्रमपूर्वक अपनी मातृभूमि पर रह कर ही व्यतीत कर। एक समय था जब उन्होने दार्शनिक बनना चाहा था और उन्होने अपने म समभाव धैर्यशीलता का विकास कर लिया था। वह मत्यु की बाट जोह रहे थे, रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीताजलि मे अकित दूल्हे की बाट देखती दुल्हन की भाति। गाखले न 'ध्यान' अथवा 'धारणा' का ग्रहण नही किया था, वह परमात्मा के साकार रूपा के उपासक नही थे और न ही उन्होने तीर्थयात्राए ही की थी। फिर भी उन्होने अपने दैनिक काय मे एक आध्यात्मिक प्रवृत्ति का विकास कर लिया था, जिसके कारण वह ध्यानस्थ रह कर कायशील रहा करते थे।

13 फरवरी 1915 को जब सोसाइटी म गाधीजी का अभिनदन किया गया उस समय गोखले अचेत हो जाने के कारण समारोह मे भाग न ले सके थे। तनिक बल आ जाने पर वह अपन हाथ का काम निबटान मे लग गए। 17 तारीख तक वह पत्रा तथा महत्वपूर्ण प्रलेखा के प्रारूप तैयार करने के लिए विशेष रूप से उत्कण्ठित थे जो उन्होने विलिंगडन को देना स्वीकार कर लिया था। बृहस्पतिवार का चिन्ताजनक हालत म उन्होने अनेक मित्रा का पत्र लिखे। शुक्रवार का सवेरे उनकी दशा बहुत बिगड गई। उस समय तक वह सविधान का प्रारूप तैयार कर चुके थे जो उन्होने पेन्सिल से ही मजबूती के साथ लिखा था। भारत की सेवा मे यह उनका अन्तिम महत प्रयास था क्योकि लोकसेवा आयोग का अपना जो काम वह पूरा कर देना चाहते थे उसे वह पूरा न कर सके और इसका उन्हें अत्यन्त खेद रहा।

शनिवार का सवेर, काल की कराल छाया उन पर आ पडी। सोसाइटी के एक सदस्य डा० देव को उनके बच जान की काई

न रही और दो प्रसिद्ध डाक्टरों—वी० सी० गोखले और शिखरे को सलाह के लिए उन्होंने बुला लिया। उन्हें भी आशा की कोई किरण दिखाई न दी। गोखले को इस समय तक बराबर होश बना रहा और उन्होंने अन्य विशिष्ट डाक्टर बुलाए जाने का विरोध भी किया। वह नहीं चाहते थे कि उनके स्वास्थ्य के विषय में विज्ञप्तियां जारी की जाएं। वह शान्तिपूर्वक मृत्यु की गोद में जाना चाहते थे।

उन्होंने अपनी बहन और बेटियों को बुलवा लिया और उन्हें समझाया कि वे अधीर होकर आंसू न बहाएं। गोखले ने उन्हें यह भी बता दिया कि उनके भविष्य के सम्बन्ध में उन्होंने क्या व्यवस्था की है। उन्होंने सौम्य भाव से सोसाइटी के सदस्यों से विदा ली और अपने निजी अमले विशेषतः रसोई बनाने वाले के साथ बातचीत की। उन्होंने सोसाइटी के एक सदस्य वामनराव पटवर्द्धन को अपने निकट बैठाया और भाव विभोर होकर कहा—मैंने अनेक अवसरों पर तुम्हारे साथ कठोरतापूर्वक बातचीत की है। मुझे क्षमा करना। यह सुन कर शिष्य भावविह्वल हो गया। गोखले ने उनसे फिर पूछा कि उन्होंने गोखले को क्षमा किया या नहीं। पटवर्द्धन जैसे-तैसे हां मात्र कह पाए। डा० देव और प्रख्यात मराठी उपन्यासकार तथा गोखले के घनिष्ट मित्र एच० एन० आप्टे उनके निकट बैठे थे। गोखले ने आप्टे से कहा कि मैंने जीवन का यह पक्ष तो देख लिया है और वह सुन्दर भी रहा अब मैं दूसरा पक्ष देखने के लिए जा रहा।

तभी उन्हें अनुभव हुआ कि मानो अन्तिम क्षण आ पहुंचा है। स्वच्छता सुव्यवस्था के पुजारी गोखले ने अपनी धोती और कमीज़ बदलवाने के लिए कहा। उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि उन्हें उनकी प्रिय आराम कुर्सी पर बैठा दिया जाय। कुछ ही क्षणों के उपरान्त उन्होंने आकाश की ओर संकेत किया। फिर हाथ जोड़ लिए और शान्त भाव से चिरनिद्रा निमग्न हो गए। उस समय रात के दस बज कर पच्चीस मिनट बीत चुके थे। तारे निकले हुए थे। रात शान्त थी। अकस्मात वह निस्तब्धता भंग हो गई। गोखले के देहान्त का समाचार आग की तरह फैल गया। भारत मां के एक महान पुत्र के असामयिक देहावसान से पूरे नगर, पूरे देश पर गहरा शोक छा गया। गोखले के महान समसामयिक लोकमान्य तिलक अस्वस्थ होने के कारण विश्राम के लिए सिंहगढ़ गए हुए थे। उन्हें बुलवा लिया गया।

सोसाइटी के भवन म शोर और सन्ताप साकार हो उठे थे। सह-सदस्या तथा मित्रो न भारत के उस दिवगत सेवक के प्रति श्रद्धाजलिया अर्पित की। शव यात्रा न एक विशाल जलूस का रूप ले लिया, जो शोक म डूब नगर के मुख्य भागा म स होता हुआ दोना ओर खडे सन्तप्त जनसमूह म से मानो माग खोज रहा था। शव पर श्रद्धा के फूल बरसाए जा रहे थे। दोपहर के आसपास शव श्मशान मे पहुचा। तिलक आ चुके थे। प्रख्यात प्राच्य विद्याविद तथा समाज सुधारक डा० आर० जी० भण्डारकर फगुसन कालेज क प्रिसीपल डा० आर० पी० पराजपे और तिलक न उस अवसर पर भाषण दिए। तिलक का भाषण भावानुभूति और संरा हना से ओतप्रोत था। उन्होंने कहा—"हमारे लिए यह आसू गिराने का समय है। भारत का यह रत्न महाराष्ट्र का यह मोती, मजदूरा-कमचारियो का यह लाडला, चिता पर अनन्त विश्राम म लीन है। उसके इस रूप के दशन कीजिए और श्रद्धापूवक उसके चरण चिह्नो पर चलने का प्रयत्न कीजिए। आप सबका धम है कि आप गोखले के चरित्र को अपने लिए आदश मान कर उनका अनुकरण करे तथा उनके निधन स होने वाली क्षति को पूरा करने का प्रयास करें। उनका अनुकरण करने के लिए यदि आप कृतसकल्प हो सके तो उन्हें परलोक म भी हष होगा।"*

सम्पूण विश्व से शोक सन्देश आए और शोक प्रकट करन के लिए सभाए की गइ। समाचारपत्रो ने प्रशस्तिया प्रकाशित की। महामहिम जाज पचम ने भी शोक सन्देश भेजा। शोक सन्देश भेजने वाले अन्य प्रमुख व्यक्ति थे—वाइसराय हार्डिंग भारत मन्त्री बम्बई, मद्रास और बगाल के गवनर, बमा के० लैफ्टिनेट गवनर, महामान्य निजाम, बडौदा के गायक-वाड, रामपुर के नवाब, बनारस और भावनगर के महाराजा जनरल स्मट्स, लारंस, जैक्सिन, इस्लिंगटन, रतन टाटा डा० सप्रू। 3 माच को पुणे में एक शोक सभा की गई, जिसकी अध्यक्षता बम्बई के गवनर विलिंगडन ने की। उसी सभा में गाधीजी न मुख्य शोक प्रस्ताव रखा। अन्य व्यक्तियो के अतिरिक्त महामान्य आगा खा न भी भाषण दिया। बम्बई मे हुई शोक सभा की अध्यक्षता भी गवनर ने की।

गोखले का एक स्मारक बनाने क लिए प्रस्ताव पास किया गया।

---

*डा० पट्टाभि सीतारामय्या, कांग्रेस का इतिहास

गोखले ने सर्वेंटस आफ इण्डिया सासाइटी के माध्यम से जिस काय का सचालन किया था उसे मजबूती से और स्थायी तौर पर किया जाना अभीष्ट था। वही गोखले का सच्चा और समीचीन स्मारक था। देश के सभी भागा म गोखले की प्रतिमाआ छवि चित्रा तथा अय अनेक गाचर स्मारका का उदघाटन अनावरण किया गया। भारतीय ससद के पुस्तकालय म आज सगमरमर की एक अर्द्ध प्रतिमा विद्यमान है। पुणे म 'गोखल हाल' है। सर्वेंटस आफ इण्डिया सोसाइटी के भवन म प्रतिष्ठित 'गोखल स्कूल आफ पालिटिक्स एण्ड इकानामिक्स' गाखले का एक अय स्थायी स्मारक है और उनकी चिरस्मृति की साक्षी है। स्वय सर्वेंटस आफ इण्डिया सोसाइटी जो देश की सेवा म अनवरत रूप स सनद्ध है।

21 कुछ सस्मरण

हमारा सौभाग्य है कि हमें गोखले के सम्बन्ध मे उनके अनेक प्रसिद्ध समसामयिकों के सस्मरण प्राप्त हैं।

श्रीमती सरोजनी नायडू ने गोखले के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए 'गोखले दि मन*' शीर्षक एक लेख लिखा। कवि हृदया सरोजनी ने अविस्मरणीय शब्दों में उनकी प्रशसा की। उन्होंने कहा—उनके जिस बाहरी व्यक्तित्व को विश्व जानता तथा आदर की दृष्टि से देखता था, उसमे अन्तर्निहित थी उनकी यथार्थ और शुभ्र लेखा राजनैतिक विश्लेषण सश्लेषण की उनकी अद्वितीय सहज शक्ति, तथ्यो के विषय उनकी निमम निर्भ्रान्त प्रवीणता और सुव्यवस्थित तथ्य आकडो का पूर्ण सगत ढग से प्रस्तुत करने की उनकी कुशलता, विरोध के अवसर पर व्यक्त उनकी शिष्ट किन्तु अदम्य स्पष्टवादिता सम्मानपूर्ण समझौता करने म उनकी अद्वितीय गरिमा और साहस, उनकी दूरव्यापिनी राजनयज्ञता का विस्तार और सयतता ओज, तथा सत्यवादिता और उनके दैनदिन जीवन की भव्य सरलता तथा त्यागशीलता।

श्रीमती नायडू ने कलकत्ता म गोखले के साथ हुई अपनी एक वार्ता का भी वर्णन किया है, जब वह 1911 मे काग्रेस अधिवेशन मे भाग लेने के लिए वहा गई थी।

गोखले ने पूछा—भारत के भविष्य के विषय म तुम्हारा क्या विचार है?

सरोजनी ने उत्तर दिया—भविष्य आशामय है।

निकट भविष्य के बारे मे तुम्हारा क्या विचार है?

पाच बरस से भी कम समय म हिंदू मुस्लिम एकता।

वात्सल्य तथा परिताप भरे स्वर मे गोखले ने कहा—बच्ची, तुम कवि हो, पर तुमने उचित से अधिक आशा की है। वह एकता मेरे या तुम्हारे

---

*दि बाम्बे क्रानिकल, मार्च 9, 1915

जीवन काल में नही हो पाएगी। फिर भी आप विश्वास बनाए रख कर उसके लिए काम करती रहो।

मार्च 1912 में गोखले बम्बई में उनसे मिले और पूछा—क्या मशाल में अब भी उतनी ही ज्योति है?

श्रीमती नायडू का उत्तर था—पहले से भी अधिक।

परन्तु गोखले इतने आशावान नही थे।

मुस्लिम लीग का एक अधिवेशन लखनऊ में हुआ और सरोजनी नायडू ने उसमें भाग लिया। उस अधिवेशन में एक नया संविधान स्वीकृत हुआ जिसमें राष्ट्रीय कल्याण और प्रगति के सभी मामलों में दूसरी महत्वपूर्ण जाति के साथ सच्चे सहयोग का प्रधान स्वर सुना गया। सरोजनी नायडू ने समझा कि भारत में एक नवयुवक का उदय हो गया। उन्होंने समय लिया कि उनका सपना सच हो गया। वह पूना गई और अविलम्ब गोखले से मिलीं। गोखले उस समय रोगी और दुर्बल थे। उन्हें देख कर अपनी बांहें फैला कर गोखले ने कहा—क्या तुम मुझे यह बताने आई हो कि तुम्हारी कल्पना सच हो गई?

और गोखले बार-बार उस अधिवेशन की अन्तर्निहित भावना के विषय में प्रश्न करने लगे।

सरोजनी ने लिखा है—उस समय उनका थका हुआ और पीड़ा से मुरझाया चेहरा उल्लास से जगमगा उठा जब मैंने उन्हें यह भरोसा दिलाया कि जहां तक युवकों का सम्बन्ध है उन्होंने केवल राजनैतिक औचित्य की भावना से नही, वास्तविक निष्ठा से प्रेरित होकर ही इतनी स्पष्टता तथा उदारतापूर्वक हिन्दुओं की ओर सद्भाव सौहार्दपूर्ण हाथ बढ़ाया है और मेरा विश्वास है कि प्रत्युत्तर में आगामी कांग्रेस अधिवेशन में इतने ही सौजन्यपूर्वक ऐसा ही सौहार्द व्यक्त किया जाएगा। गोखले का उत्तर था—जहां तक हमारे बस की बात है ऐसा ही किया जाएगा।

लगभग एक घंटे बाद मैंने देखा कि इस सारे प्रसंग से उत्पन्न भावावेग के कारण वह क्लान्त हो गए। सन्ध्या समय श्रीमती नायडू फिर गोखले से मिलीं। उनका कथन है—मैंने उस समय गोखले का एक नया ही रूप देखा, जिसमें स्फूर्ति तथा उल्लास भरा था। उनके चेहरे पर किंचित पीलापन तो अवश्य था, परन्तु सवेरे के अवसाद विषाद का लेशमात्र भी वहां मौजूद नही था। उन्हें सीढ़ियों पर चढ़ कर ऊपर जाने

का प्रयाग करत देख कर म चिल्ला उठी—क्या आप सारी सीढिया अपने आप चढ जान की साच रहे हैं ?

उन्हाने हँस कर कहा—तुमन मेर अन्दर एक नई आशा भर दी है, मुझे अनुभव हान लगा है कि मुझम परिस्थितिया का सामना करन और फिर कायशील हा जान क लिए पर्याप्त बल है।

सराजनी न आगे लिखा है—उसी समय उनकी बहन तथा दोना लुभावनी लडकिया हमार पास आ गइ और हम काई आध घटे तक उस विशाल छज्जे पर बठे जहा स हम अस्तामुख सूय के प्रकाश म निमग्न पहाडिया तथा घाटिया का शाति पूण दश्य देख सकत थे। अपने सामन के सुखद अस्थिर दश्या की हम चचा करते रह। मरे लिए वह पहला तथा एकमात्र अवसर था जब म उस एकान्तशील निर्वैयक्तिक कायसाधक के व्यक्तिगत तथा पारिवारिक जीवन की एक झाकी और अनुभव प्राप्त कर सकी। लडकिया के चले जान के बाद हम गाधूलि की उस वेला म कुछ दर शात तथा मौन बठे रहे जिसके पश्चात गाखले की किसी गहरे मनावेग से उद्वेलित सुमधुर स्वर लहरी न मौन भग करके उपदेश तथा उदबाधन के इतन गम्भीर, इतन प्रेरणाप्रद स्वर्णोज्ज्वल शब्द कहे जिनका प्रभाव मेर लिए कभी मन्द नही हुआ। उस समय उन्हाने भारत की सेवा से प्राप्त हान वाले अद्वितीय उल्लास और गौरव की बात कही थी। उन्हाने कहा—'यहा मेर समीप खडी हो जाओ और इन नक्षत्रा तथा पवता की उपस्थिति म तथा उन्हें साक्षी मान कर अपना जीवन और अपनी प्रतिभा, अपनी वाणी और अपना सगीत, अपन विचार और अपन-स्वप्न अपनी मातभूमि क प्रति समर्पित कर दो। तुम कवि हा, पवत शिखरा पर से अभीष्ट प्रेरणा प्राप्त करके आशा का वह सन्दश दूर दूर तक घाटिया म परिश्रमरत व्यक्तिया के पास पहुचा दा।' मर विदा मागन पर अपनी इस तुच्छ सन्दहवाहिका स उन्हाने फिर कहा—'तुमने मुझे नई आशा, नया विश्वास और नया साहस प्रदान किया है। आज म आराम से रह सकूगा। आज मे शातिपूवक सा सकूगा।"

दा महीने बाद लन्दन म सरोजनी नायडू और गाखले की फिर मुलाकात हुई। उनका कथन है—मेरे वहा पहुचने पर जिन अनक मित्रों ने मेरा स्वागत किया, उनमें मेरे चिरपरिचित गाखले भी थे, परन्तु वह सवथा अपरिचित वेषभूषा म—हा, सचमुच अंग्रेजी वेशभषा म, सिर पर

हैट तक पहने थे। मने पल भर उनकी ओर एकटक देखा। मैंने पूछा—आपकी उस बगावती पगडी का क्या हुआ ? शीघ्र ही मैं अपने उन पुराने मित्र के उस नए रूप अर्थात उन समाजप्रिय गोखले की अभ्यस्त हो गई जो पार्टिया म शामिल होते थे, प्राय थिएटर देखने जाते थे, ब्रिज खेलते थे और नेशनल लिबरल क्लब के छज्जे पर महिलाओ को डिनर के लिए आमत्रित किया करते थे। श्रीमती सरोजनी नायडू ने हमे बताया है गोखले को 'चेरीज' बहुत पसद थी और मैं इस बात का बराबर ध्यान रखती थी कि वह जहा जाए वहा उन्हें पर्याप्त मात्रा मे 'चेरीज' अवश्य मिल जाए। मैं हसी मे उनसे कहा करती थी—हर आदमी की कुछ न कुछ कीमत होती ह और आपकी कीमत है 'चेरीज'।

आइए, अब गोखले के अय समसामयिक डा० तज बहादुर सप्रू की ओर ध्यान दें। गोखले को श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए तेजबहादुर सप्रू ने एक घटना का उल्लेख किया है—काग्रेस प्रस्तावा के बारे म लोगा को समझाने के लिए गोखले ने 1907 म उत्तर भारत का दौरा किया। वह इलाहाबाद गए। उस दिन उहाने सवेरे 10 से सायकाल 4 बजे तक किसी को मिलने की इजाजत नही दी क्योंकि उहे अपना भाषण तैयार करना था। उस समय वैसे ता उहे सक्रिय सावजनिक जीवन मे प्रवेश किए बीस वप से अधिक हो चुके थे फिर भी उन्हाने यही निश्चय किया कि वह अपना भाषण तैयार करगे और मच पर वालत समय सूझने वाली बातें ही नही कहेंगे। छ घटे की इस अवधि मे उहान यही नही सोचा कि वह किन किन बाता की चचा करगे, इस पर भी विचार किया कि अपने विचारा को किन शब्दा द्वारा व्यक्त करेंगे। भाषण कक्ष के लिए जाते समय उहाने मेरे सामन एक ऐसे प्रसग का सकेत किया जिस पर वह विस्तार पूवक बोलना चाहते थे। बाद म मैंने उनका भाषण सुना। उससे अधिक मन्त्रमुग्ध कर देन वाला भाषण मने पहले कभी नहा सुना था। गोखले द्वारा कहा गया प्रत्येक शब्द महत्वपूण था। तीन चार वप बाद वह एक बार फिर इलाहाबाद आए और मन उह फिर उसी तरह व्यस्त पाया। उस समय वह यूनिवसल रेसज काग्रेस (विश्व सव जातीय सम्मलन) के लिए एक निबध तयार कर रहे थे। आप वह निबध आज भी पढ लीजिए, उसका एक एक शब्द अत्यत मूल्यवान है। उसमे एक भी शब्द जोड या छाड दे तो उसका सौन्दय नष्ट हो जाएगा।

जिस दिन उन्होंने अपना प्राथमिक शिक्षा विधेयक पेश किया उससे पहले पूरी रात उन्होंने उस विषय के सभी पक्षों का गम्भीर अध्ययन करने में बिताई। उन्होंने अपने उत्कृष्ट राजनतिक अनुभव, अंग्रेजी भाषा के अपने अभूतपूर्व पाण्डित्य अथवा विचाराधीन प्रसंग के सभी ब्योरों पर अपने पूर्ण अधिकार का अधिमूल्यांकन कभी नहीं किया। एक या दो व्यक्तियों को छोड़ कर मुझे ऐसे और किसी व्यक्ति का स्मरण नहीं है जो भारतीय राजनीति के सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक पक्षों के सम्बन्ध में उतना सुपरिचित तथा पारंगत हो जितने गोखले थे।

गांधीजी ने भी गोखले के कुछ संस्मरण प्रस्तुत किए हैं—गोखले की काम करने की पद्धति से मुझे जितना आनन्द हुआ उतना ही बहुत कुछ सीखा भी। वह अपना एक भी क्षण व्यर्थ न जाने देते थे। मैंने देखा कि उनके तमाम सम्बन्ध देश सेवा के लिए ही होते थे। बात भी तमाम देश सेवा के ही निमित्त होती थी। बातों में कहीं भी मलीनता, गैर जिम्मेदारी और असत्य न दिखाई देता था। हिन्दुस्तान की गरीबी और पराधीनता उन्हें क्षण प्रति क्षण चुभती थी। अनेक लोग उन्हें अनेक बातों में दिलचस्पी कराने आते। वह उन सबको एक ही उत्तर देते—आप इस काम को कीजिए, मुझे अपना काम करने दीजिए मुझे देश की स्वाधीनता प्राप्त करनी है। उसके बाद मुझे दूसरी चीजें सूझेंगी। अभी तो इस काम से मुझे एक क्षण की भी फुर्सत नहीं रहती।*

फार्म जब चल रहा था उसी बीच गोखले दक्षिण अफ्रीका आए थे फार्म में खाट जैसी कोई चीज नहीं थी, पर हम गोखले के लिए एक माँग लाए। कोई ऐसा कमरा नहीं था जहां उनको पूरा एकान्त मिले। बैठने के लिए पाठशाला की बेंचें भर गई थीं। ऐसी स्थिति में भी नाजुक तबीयत वाले गोखले जी को फार्म पर लाए बिना हमसे कैसे रहा जाता? उस वह भी उसे देखे बिना कैसे रह सकते थे? मेरा ख्याल था कि उनका शरीर एक रात की तकलीफ बर्दाश्त कर लेगा और वह स्टेशन से फार्म तक डेढ़ मील पैदल भी आ सकते हैं। मैंने उनसे पूछ लिया था और अपनी सरलतावश उन्होंने बिना सोचे-समझे मुझ पर विश्वास रख कर

*आत्मकथा (हिन्दी) (अनुवादक हरिभाऊ उपाध्याय), संस्करण 1946 पृष्ठ 268

सारी व्यवस्था स्वीकार कर ली थी। सयागवश उसी दिन वर्षा भी हो गई। यत्रायत्र मेरे लिए प्रबंध म कोई हेर फेर नही हो सकता था। इस अज्ञान भरे प्रेम के कारण उस दिन मैंन गाखले जी को जो कष्ट दिया वह मुझे कभी नहीं भूला। इतना बडा परिवतन उनकी प्रकृति सहन कर सकती थी। उन्हें ठंड लग गई। उनके लिए म खास शोरबा बनाता। भाई कोतवाल (दादार के भाई साहब) खास चपातिया बनाते। पर वे गरम कैसे रखी जाए? ज्यां-त्यों करके निबटाया। गोखले न मुझसे एक शब्द भी नही कहा, पर उनके चेहरे से मै समझ गया और अपनी मूखता भी समझ गया। जब उन्हें मालूम हुआ कि हम सभी जमीन पर सोते हैं तब उनके लिए जो खाट लाई गई थी उन्होने उस हटा दिया और अपना विस्तर भी फश पर ही लगा लिया। यह रात मैंने पश्चाताप करके विताई। गाखले की एक आदत थी जिसे म बुरी आदत कहता था। वह सिफ नौकर की ही सेवा स्वीकार करते थे। मगर इन यात्राओं में नौकर का साथ नहीं रख सकते थे। मैंने और केलनवक ने उनसे बहुत विनती की कि हमें पाव दवाने दीजिए, पर वह टस से मस न हुए। उन्होंने हमें अपना शरीर स्पश तक न करने दिया।*

गाधीजी गाखले को एक 'महात्मा' कहा करते थे। उनके मतानुसार गोखले की वसीयत और इच्छा पत्र यह था—महात्मा जिस समय मत्यु शय्या पर पडे थे तब उन्होने अपने आदश का ऐलान कर दिया था। उन्होने कहा था कि यदि उनके देहान्त के बाद उनका जीवन चरित्र लिखा गया अथवा उनका स्मारक बनाया गया या इस विश्व से उनके प्रस्थान के कारण शोक व्यक्त करने के लिए सभाए की गईं तो इससे उनकी आत्मा को शांति नहीं मिलेगी। उनकी एकमात्र आकाक्षा तो यह थी कि भारत वैसा ही जीवन व्यतीत कर सके जैसा वह पहले व्यतीत कर चुका है और उनके द्वारा सस्थापित सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसाइटी फल फूल कर राष्ट्र सेवा की अपनी लक्ष्य सिद्धि के पथ पर आगे बढती रहे।

जवाहर लाल नेहरू ने गोखले के जीवन की एक रोचक घटना का

---

*दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास (हिन्दी) (सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन), 1959 सस्करण, पृष्ठ 296–97

उल्लेख किया है—1912 की बडे दिना की छुट्टियो म मै एक प्रतिनिधि की हैसियत से बाकीपुर की काग्रेस मे शामिल हुआ। बहुत हद तक वह अग्रेजी जानन वाले उच्च श्रेणी के लागा का उत्सव था जहा सुबह पहनने के काट और सुदर इस्तरी किए हुए पतलून बहुत दिखाई दते थे। वस्तुत वह एक सामाजिक उत्सव था जिसमें किसी प्रकार की राजनतिक गरमा-गरमी न थी। गाखले, जा हाल ही मे अफ्रीका से लौट कर आए थे, उनम उपस्थित थे उस अधिवशन के प्रमुख व्यक्ति वही थे। उनकी तेजस्विता, उनकी सच्चाई और उनकी शक्ति स वहा आए उन थोडे से व्यक्तियो म वही एक ऐसे मालूम होते थे जा राजनीतिक और सावर्जानिक मामला पर सजीदगी स विचार करत थे और उनके सम्बध म गहराई से सोचते थे। मुझ पर उनका अच्छा प्रभाव पडा।

जब गाखले बाकीपुर से लौट रहे थे तब एक खास घटना हो गई। वह उन दिना पब्लिक सर्विस कमीशन (लोक सेवा आयाग) के सदस्य थे। उस हैसियत से उन्हे अपन लिए एक फस्ट क्लास का डिब्बा रिजव कराने का हक था। उनकी तबीयत ठीक न थी और लोगो की भीड से तथा बेमल साथियो स उनके आराम म खलल पडता था। इसलिए वह चाहते थे कि उन्हे एकात म चुपचाप पडा रहन दिया जाए और काग्रेस के अधिवेशन के बाद वह चाहत थे कि सफर मे उन्हें शाति मिले। उन्हें उनका डिब्बा मिल गया लकिन बाकी गाडी कलकत्ता लौटने वाले प्रतिनिधिया स ठसाठस भरी हुई थी। कुछ समय के बाद भूपेंद्र नाथ बसु, जो बाद म जाकर इण्डिया कौसिल क मम्बर हुए गोखले के पास गए और य ही उनसे पूछने लगे कि क्या म आपके डिब्बे म सफर कर सकता हू? यह सुन कर पहले ता गोखले कुछ चौके क्योकि बसु महाशय बडे बातूनी थे लेकिन फिर स्वभाववश वह राजी हो गए। चन्द मिनट बाद बसु फिर गाखले के पास आए और उनसे कहन लगे कि अगर मेरे एक और दास्त आपके साथ इसी डिब्बे म चले चलें तो आपका तक्लीफ तो न होगी? गोखले न फिर चुपचाप हा" कर दी। ट्रेन छूटन से कुछ समय पहले बसु साहब न फिर उसी ढग मे कहा कि मुझे और मेरे साथी को ऊपर की बर्थों पर सोने मे बहुत तक्लीफ होगी, इसलिए अगर आपका तक्लीफ न हो ता आप ऊपर की बथ पर सा जाए। मेरा खयाल है कि

अत म यही हुआ। बेचारे गाखले को ऊपरी बथ पर चढ कर जसे-तसे रात बितानी पडी।*

जवाहर लाल नेहरू ने यह भी लिखा है—उन शुरू के साला म गोपाल कृष्ण गाखले की भारत सेवक समिति की ग्रार भी मैं आकर्षित हुआ था। मैंन उसमें शामिल होन की बात तो कभी नही सोची, कुछ तो इसलिए कि उनकी राजनीति मेर लिए बहुत ही नरम थी, और कुछ इसलिए कि उन दिना अपना पशा छाडने का मेरा कोई इरादा न था। परन्तु समिति के सदस्या के लिए मेरे दिल मे बडी इज्जत थी क्याकि उन्हाने निर्वाहमात्र पर अपन का स्वदेश की सेवा में लगा दिया था। मैंन दिल म कहा कि कम से कम यह एक समिति ऐसी है, जिसके लोग एकाग्रचित्त होकर लगातार काम करते हैं, फिर चाहे वह काम सोलहा आन ठीक अपनी दिशा में भले ही न हो।†

डा० राजेंद्र प्रसाद ने गोखले के साथ अपनी पहली मुलाकात को लिपिबद्ध किया है। 1910 की बात है। डा० राजेंद्र प्रसाद के एक बॅरिस्टर मित्र ने उन्हे बताया कि गोखले उनसे मिलना चाहते हैं। डा० राजेंद्र प्रसाद को यह सोच कर बहुत आश्चय हुआ कि गाखले तक उनका नाम कैसे पहुचा और उन्होन क्यो बुलाया है? उनके मित्र ने बताया कि बिहार के दो चार होनहार युवका से गाखले मिलना चाहत थे, और स्वय मित्र महादय ने गोखले के सामन इस प्रसग में उनका नामोल्लेख किया था।

वे दाना गाखले से जा कर मिले। गोखले ने उनसे कहा—हो सकता है तुम्हारी वकालत खूब चले, बहुत रुपये तुम पैदा कर सका बहुत आराम और ऐश इशरत मे दिन बिताआ। किन्तु (अपनी तजनी उठा कर उन्होंने कम्पित स्वर में कहा) देश का भी कुछ दावा अपन युवका पर होता है और चूकि तुम पढने मे अच्छे हा, इसलिए तुम पर वह दावा और भी अधिक है।

अपन बारे मे उन्होंने कहा—म गरीब घर का आदमी था। मेरे घर के लोग बहुत आशा रखते थे कि जब मैं पढ कर तैयार हा जाऊगा तो

---

*मेरी कहानी (हिंदी सस्करण 1961), पष्ठ 52–53
† वही, पृष्ठ, 56

रुपये कमाऊंगा और सबको सुखी बना सकूंगा। जब मैंने उनकी सब
आशाओं पर पानी फेर कर सेवा का व्रत लिया तो मेरे भाई इतने दुखी
हुए कि कुछ दिनों तक वह मुझसे बातें तक नहीं पर कुछ दिनों के बाद
वह सब बातें समझ गए और मेरे साथ खूब प्रेम करने लगे। हो सकता
है कि यह सब तुम्हारे साथ भी हो पर इसका विश्वास रखो, सब लोग
अन्त में तुम्हारी पूजा करने लगेंगे। उनकी बहुत सी उम्मीदें तुम पर बंधी
हैं, पर वह जानता हूं अगर तुम्हारी मृत्यु हो गई तो उसे वे लोग
किसी प्रकार बर्दाश्त कर ही लेंगे।—इसी प्रकार उन्होंने प्राय डेढ़-दो
घंटे तक हम लोगों से बातें कीं। बात करने का तरीका भी ऐसा था कि
हम लोगों के दिल पर उसका बहुत गहरा असर हुआ   हम लोग
वहां से एक प्रकार से खोए हुए से होकर निकले   मुझे तो कई दिनों
तक नींद नहीं आई। खाना पीना सब कुछ बराए नाम रह गया   मेरे भी
दो पुत्र हो चुके थे और मेरे भाई के चार बच्चे थे   ।*

डा० राजेन्द्र प्रसाद ने यह भी लिखा है कि किस प्रकार इस विचार
के कारण उनके भाई-बहन आदि सब रोने लगे और किस तरह अन्ततोगत्वा
उनका पूरा उत्साह समाप्त हो गया। उस मुलाकात का एकमात्र नतीजा
यह हुआ कि सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसाइटी में शामिल होने का विचार
तो उन्होंने छोड़ दिया परन्तु अपनी बी० एल० परीक्षा देने में उनका मन
न लगा जिसका परिणाम यह हुआ कि उक्त परीक्षा में वह पास तो
हो गए पर अच्छे अंक प्राप्त नहीं कर सके।

गांधीजी जवाहर लाल नेहरू डा० राजेन्द्र प्रसाद—भारत के सभी
महान नेताओं के हृदय में यह विचार उठा कि 'सोसाइटी में प्रवेश पा
लिया जाए, परन्तु उनमें से कोई भी वस्तुतः ऐसा नहीं कर पाया अथवा
किसी ने भी ऐसा किया नहीं

गोखले आस्तिक थे अथवा नास्तिक? गांधीजी का कथन है—
जो व्यक्ति सत्य समर्पित जीवन व्यतीत करता है स्वभाव का सरल होना
है जो सत्य का प्रतिरूप होता है मानवीयता से ओतप्रोत होना है, जो
किसी वस्तु को भी अपनी निजी सम्पत्ति नहीं मानता—ऐसा व्यक्ति धार्मिक
ही है भले ही वह स्वयं इस तथ्य से अवगत हो या न हो। गोखले के

---

*डा० राजेन्द्र प्रसाद आत्मकथा (हिन्दी), 1957 का संस्करण, पृष्ठ 85-88

मित्रों और सहयोगियों का कथन है कि उन्होंने किसी धार्मिक सिद्धान्त का आँख मूंद कर पालन नहीं किया। परम्परागत प्रथाओं, व्रतों अथवा उत्सवों में उन्होंने अपना यज्ञोपवीत भी उतार डाला। फिर भी वह गहन आध्यात्मिक प्रकृति के प्राणी थे और उनका आराध्य था अपना देश।

के० नटराजन ने 1929 में पूना में दिए गए एक भाषण में कहा था—जहां तक धर्म की बात है, उनके जीवन की प्रारम्भिक अवधि के सम्बन्ध में तो यही कहा जाता है कि वह नास्तिकतावादी थे परन्तु जीवन के उत्तर काल में उनके विचारों में उल्लेखनीय परिवर्तन हो गया था। गोखले मुझे कलकत्ता में अपने अध्ययन कक्ष में ले गए और वहां अकस्मात मैंने एक 'पेपर वेट' उठा लिया उस पर मोटे मोटे अक्षरों में गाड इज लव' (प्रेम परमात्मा का पर्याय है) लिखा देख कर मेरे नेत्र विस्मय से भर गए। मैंने आश्चर्यपूर्ण नेत्रों से गोखले की ओर देखा। इस पर वे बोले कि अब मेरी यही मान्यता हो गई है।

गोखले के स्वभाव के अन्य पक्षों पर प्रकाश डालने वाली घटनाओं तथा प्रसंगों का अभाव नहीं है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं —

1908 में तिलक पर अभियोग लगा कर उन्हें कारावास दे दिया गया। गोखले उस समय इंग्लैंड में थे। सूरत में हुए विभेद की पृष्ठभूमि अभी विद्यमान थी। भारत के कुछ समाचारपत्रों ने यह आरोप लगाया कि तिलक को कारावास देने के लिए मार्ले पर दबाव डालने में गोखले का हाथ रहा है। यह कहानी केवल गोखले को बदनाम करने के लिए रच ली गई थी, यह इसी से सिद्ध हो जाता है कि मार्ले ने 3 जुलाई, 1908 को मिंटो को लिखा था—जो भी हो, तिलक के विरुद्ध की जा रही कार्रवाई की गिनती मैं अच्छी बातों में नहीं करता हूं आपको यह लिखने से कोई एक घंटा पहले मैंने 'केसरी' का लेख देखा है मैं निःसंकोच कह सकता हूं कि पहली ही नजर में मुझे यह अनुभव हो गया कि इसकी ओर ध्यान देना आवश्यक नहीं।

31 जुलाई का भी मार्ले का यही विचार था और 7 अगस्त को भी उन्होंने यही आशय व्यक्त किया। उक्त अभियोग का उत्तरदायित्व मार्ले पर नहीं डाला जा सकता, वस्तुतः वह तो इसके समर्थक भी न थे, परन्तु उन्हें स्थल पर विद्यमान व्यक्ति के फैसले को स्वीकार करना पड़ा। यदि गोखले ने उस अभियोग के लिए मार्ले पर दबाव

डाला होता तो मिंटो के नाम लिखे पत्र में इसका कुछ न कुछ संकेत अवश्य मिल जाता।

आइए अब तनिक इस बात पर ध्यान दें कि इस विषय में गोखले ने भारत में अपने मित्रों को क्या लिखा। 17 जुलाई 1908 को उन्होंने लिखा था—यदि उन्हें रिहा कर दिया जाता है तो इससे हम सबको हार्दिक प्रसन्नता होगी। मैं समझता हूं कि उन पर लगाया गया अभियोग एक भयंकर भूल है।

23 जुलाई को उन्होंने लिखा—आज सवेरे के समाचारपत्रों में वे तार छपे हैं, जिनमें तिलक को दिए गए हृदयविदारक दण्ड का उल्लेख है। इसमें तो संदेह नहीं कि स्थिति शांत हो जाने पर उन्हें वापस बुला कर रिहा कर ही दिया जाएगा। फिर भी, यह अभियोग तथा दण्ड हमारे दल के लिए एक भयंकर प्रहार सिद्ध होगा क्योंकि सरकार के विरुद्ध व्यक्त आक्रोश अशांत हमारे विरुद्ध भी व्यक्त हो सकता है।

13 अगस्त को उन्होंने लिखा था—अगर भारत में शांति हो जाती है तो उन्हें वापस लाकर रिहा कर दिया जाएगा। आप भरोसा रखें, इस सम्बन्ध में मैं जो कुछ कर सकता हूं वह अवश्य करूंगा यद्यपि मैं इस भय से यह बात जबान से नहीं कहना चाहता कि कहीं गरम दल के हमारे मित्रों को कुछ गलतफहमी न हो जाए।

फिर गोखले के निन्दक बराबर यही कहते रहे कि तिलक के अभियोजन का मूल कारण गोखले ही हैं। क्या वह उन निंदकों पर मान-हानि का दावा कर दें? उनके गुरु रानडे ने उन्हें शत्रुओं के प्रति भी उदार बने रहने की शिक्षा दी थी। दूसरी ओर, यदि वह चुप रहते तो इससे गलतफहमी और भी बढ़ सकती थी। अतः उन्होंने निश्चय किया कि अपने लिए नहीं तो अपने लक्ष्य के हितार्थ उन्हें सम्बद्ध समाचारपत्रों के विरुद्ध कारवाई करनी चाहिए। उन पत्रों में से एक था थाना का 'हिंदू पंच' और दूसरा कलकत्ता का 'वंदेमातरम'। गोखले इस बात के लिये तैयार थे कि यदि वे पत्र शिंदे के 'दि डिप्रेस्ड क्लास मिशन' (दलित वर्ग मिशन) अथवा कर्वे के *विडोज होम (विधवा सदन)* जैसी कुछ सार्वजनिक संस्थाओं को दान के रूप में कुछ रुपया दें तो वह उनसे समझौता कर लें। परंतु उनका यह सुझाव माना नहीं गया। अन्ततः दावे किए गए और गोखले को गवाही देनी पड़ी। समाचारपत्रों पर जुर्माना

हुआ परन्तु न्याय अपन अनुकूल हान पर भी गाखल सन्तुष्ट नही थे। हिन्दू पच का सम्पादक गरीब था वह कंगाल हा गया। गाखल इतन अधिक उदारमन थे कि उन्हाने उस बुला कर उसकी आर्थिक स्थिति क बारे म पूछा। यह जानन पर कि उसका दिवाला निकल गया है, गाखल न उस आजीवन 30 रुपया मासिक दन का वचन दिया, परन्तु इस उदारतापूर्ण व्यवहार स समुचित लाभ उठान क लिए वह बेचारा अधिक दिन जीवित न रहा।

जसा कि श्रीनिवास शास्त्री न उल्लख किया ह यह एक राचक तथ्य है कि गाखले काई डायरी नही रखत थे—प्रासगिक रूप स म आपका यह बता दना चाहता हूँ कि उन्हाने डायरी कभी नही रखी। हमें अर्थात अपन अनुयायिया का भी वह यही सलाह दत थे। आप जानत है कि उन्हान ऐसा क्या किया? जब सोसाइटी की स्थापना हुई, उस समय पूर भारत म राजनतिक हलचल मची हुई थी और सरकार क कायकलापा का एक भाग था युवका क काय तथा चरित्र क बारे म सभी तरह की जाच पडताल करना। अनक राजनतिक अभियागा म अभागे अभियुक्ता की डायरिया स ही उनके विरुद्ध साक्षी का काम लिया गया। अत गाखले हम समझात थे—आप पूर्णत भले ही निर्दोष हा परन्तु हा सकता है कि आपक हाथा स लिखी गई किसी बात स अन्य सावजनिक कायकर्ता सकट म पड जाए। जा भी हा हम डायरिया रखन की स्थिति म नही ह।

गाखल एक बार पहल दर्जे क डिब्बे मे रल यात्रा कर रह थे। एक अग्रज सनाधिकारी उस डिब्बे म आया और उसन गाखल का सामान बाहर प्लेटफाम पर फक दिया। सनाधिकारी का किसी न बता दिया था कि उसन एक ऐस भारतीय क साथ अभद्रतापूर्ण बर्ताव किया है जा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण व्यक्ति और इम्पीरियल लजिस्लटिव कौसिल का सदस्य है। अधिकारी न सामान डिब्बे म वापस रख दिया आर गाखल स क्षमा याचना की। गाखल न उस क्षमा कर दिया और बात समाप्त हा गई। परन्तु गाखल क एक मित्र न इसकी चर्चा कर्जन स कर दी। कर्जन क क्राध की सीमा न रही आर वह गाखल स उस अधिकारी का नाम पूछ कर उस दण्ड दन क लिए तत्पर हा गए। गाखल न साचा कि जब उसन क्षमा माग ही ली ता वह मामला अधिक बढाना उचित नहा है। उन्हान कर्जन स कह दिया कि यह उस राग का वास्तविक उपचार नही है। उन्हान जातिगत

उत्कृष्टता तथा औद्धत्य भावना को इस स्थिति का मूल कारण ठहराते हुए यह अनुभव किया कि इस भावना का अंत होना चाहिए।

गोखले की पुत्री श्रीमती काशीबाई ढवले ने 1956 के मई महीने में एक रेडियो भाषण देते हुए अपने पिता का एक अंतरंग चित्र प्रस्तुत किया था। उन्होंने कहा था—मेरे पिता सार्वजनिक जीवन में इतने व्यस्त रहते थे कि वह अपने ही घर मेहमान—कभी-कभी आने वाले—जैसे हो गए थे। उनसे मिलने के लिए एक बार हम बहुत इंतजार करना पड़ा क्योंकि उनसे मिलने वालों का तांता बंध गया था और अंत में हम उनसे मिले बिना ही संतोष करना पड़ा। बाद में मुझे पता चला कि इसीलिए वह उस रात को सो न सके और मेरे लिए कुछ आंसुओं का मोल पहले ही चुका चुकी थी।

—उनकी उक्तियां बहुत प्रभावोत्पादक होती थीं—तुम जो भी काम करो पूर्णता की भावना से करो। यदि तुम गधा बनना चाहो तो भी तुम्हें उत्कृष्टतम गधा बनने का ही प्रयास करना चाहिए।

उनकी स्मरण शक्ति के बारे में उनकी पुत्री का कथन है—एक बार आयरलैंड में यात्रा करते समय उन्होंने अपने सहयात्रियों को उस समय आश्चर्यचकित कर दिया जब केवल एक बार टाइम टेबुल पर नजर भर डाल कर उन्होंने पीछे तथा आगे के सभी रेलवे स्टेशनों के नाम दोहरा दिए।

गोखले के सम्बन्ध में यहां कुछ ऐसे तथ्य प्रस्तुत कर देने उचित जान पड़ते हैं जो प्रायः लोगों को अविदित है। एक बार उन्होंने लैटिन भाषा सीखने का विचार किया। उसे सीखने के लिए वह कुछ पाठ्य-पुस्तकें ले आए, पर शीघ्र ही उन्होंने इसे छोड़ दिया। कलकत्ता में काफी समय तक रहने के कारण उन्हें बंगला काफी अच्छी तरह आ गई थी उन्हें कुछ मित्रों ने सलाह दी कि उन्हें संगीत सीखना चाहिए। गोखले ने उनकी बात मान कर तत्काल वाद्य यन्त्रों के लिए आर्डर दे दिया। एक प्रख्यात संगीतज्ञ महोदय ने गोखले को बता दिया कि जीवन भर संगीत साधना करने पर भी वह गायक नहीं बन सकते। गोखले योगाभ्यास भी करना चाहते थे। श्री आयंगर नामक एक सज्जन के घर जाकर वह योग की शिक्षा लेते थे। अपने योगाध्ययन को उन्होंने स्वयं गुप्त ही रखना चाहा तथापि उनके मित्रों को उसका पता चल गया। अध्ययन की इस शाखा में भी गोखले कमजोर

सिद्ध हुए और शीघ्र ही उन्होंने इसे छोड़ दिया। ज्योतिष में भी गोखले की रुचि थी।

उपाधियों में उनके लिए कोई आकर्षण न था। सी० आई० ई० (कम्पैनियन आफ दि इण्डियन एम्पायर) की उपाधि तो उन्होंने स्वीकार कर ली थी परन्तु 'सर' की उपाधि लेना उन्होंने अस्वीकार कर दिया। लार्ड हार्डिंग ने सिफारिश की कि उन्हें के० सी० आई० ई० (नाइट कमाण्डर आफ दि इण्डियन एम्पायर) की उपाधि से विभूषित किया जाए, स्वयं सम्राट ने यह बात मान ली। परन्तु गोखले ने, जो इस समय इंग्लैंड में थे, इसके लिए क्षमा मांग ली। यह इन्कार उन्होंने पूर्णतः नहीं तो अधिकांशतः व्यक्तिगत कारणों के आधार पर ही किया था।

गोखले के जीवन की महत्वपूर्ण तारीखें

1866	9 मई—रत्नागिरि जिले म कातलुक नामक स्थान पर जन्म
1879	पिता का देहान्त
1880	विवाह
1881	मैट्रिक परीक्षा पास की
1882-84	कालेज की शिक्षा
	बी० ए० की डिग्री प्राप्त की
	कानून की कक्षा म प्रवेश
	दक्कन एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना
	फर्गुसन कालेज की स्थापना
1885	न्यू इंगलिश स्कूल म सहायक अध्यापक
	दक्कन एजुकेशन सोसाइटी की आजीवन सदस्यता
1886	दूसरा विवाह
1887	एम० जी० रानडे से पहली भेंट
	'सुधारक' के अंग्रेजी भाग का सम्पादन
1888	सार्वजनिक सभा के अवैतनिक मन्त्री तथा
	उसके मुखपत्र के सम्पादक बनाए गए
	बम्बई में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन
1889	म भाग लिया
	दक्कन एजुकेशन सोसाइटी के मन्त्री बने
1891	माता का देहान्त
1893	दक्कन एजुकेशन सोसाइटी के लिए धन संग्रह
	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संयुक्त मन्त्री
1895	बम्बई विश्वविद्यालय के 'फेलो'
	'राष्ट्रसभा समाचार' के सम्पादक
	'सार्वजनिक सभा' के मन्त्रिपद और उसके मुखपत्र के
1896	सम्पादक पद से त्यागपत्र

दक्खन सभा का सगठन

1897 गाधीजी के साथ पहली मुलाकात
पहली इग्लैण्ड यात्रा । वन्बी आयाग के सामने साक्ष्य ।
पुण म किए गए प्लग विषयक कामा के बार म
शिकायता का इग्लण्ड म प्रकाशन
जान मार्ले के साथ पहली मुलाकात

1898 इग्लण्ड स वापसी । क्षमायाचना प्रसग

1899 प्लग सहायता काय म प्रमुख रूप स भाग लिया
बम्बई विधान परिषद क सदस्य चुने गए । अकाल
सहायता के सम्बन्ध म सरकार द्वारा किए गए कामा
की आलोचना

1901 भूमि अतरण विधयक का विरोध । विधान परिषद
म वाक आउट । जिला नगर पालिका विधयक म
साम्प्रदायिक सिद्धान्त लागू किए जान का विरोध
शराबबन्दी आन्दोलन का समथन

1902 रानडे का देहावसान
फगुसन कालेज म सवानिवृत्ति
इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौसिल के सदस्य चुन गए

1903 सवप्रथम बजट भाषण
गाधीजी का कलकत्ता म एक महीने तक गाखले
क साथ रहना

1904 सी० आइ० ई० (कम्पनियन आफ दि इण्डियन
एम्पायर) की उपाधि प्राप्त की

1905 जून 12—सर्वेंट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी की स्थापन
दूसरी इग्लैण्ड यात्रा
भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस क वाराणसी अधिवेशन का
अध्यक्षता

1906 पुणे नगर की नगरपालिका क अध्यक्ष

1907 तीसरा इग्लैण्ड यात्रा
भाई का देहान्त

गाधी स्मट्स समझाता
लन्दन मे गाधीजी स मुलाकात
1915 काग्रेस सधि उसकी विफलता
काग्रेस सधि विपयक वाद विवाद
गाधीजी की मुलाकात
पोलिटिकल विल एण्ड टेस्टामेंट" (राजनैतिक वसीयत आर इच्छापत्र)
देहावसान—19 फरवरी

(श्रीनिवास शास्त्री कृत लाइफ ऑफ गोपाल कृष्ण गोखले' में दी गई क्रानोलाजी आफ ईवटस पर आधारित)

रूप से कोई लाभ उठाना न था। उन्होंने अपने मे सभी गुण सजाए इसलिए नही कि विश्व उनका गुणगान कर, बल्कि इसलिए कि उनके देश का लाभ पहुचे। लोक प्रशसा के पीछे वह कभी नही दौडे, परन्तु फिर भी लोगो ने अपना प्रशसाभाव उन पर बरसा दिया, उन पर थोप दिया।*

गोखले ने मुझसे एक बात यह कही—भारत म हमारे पास चरित्र की कमी है राजनैतिक क्षेत्र मे हमें धार्मिक उत्साह की आवश्यकता है। तो क्या हम उसी पूर्णता और वैसे ही धार्मिक उत्साह के साथ अपने उस अग्रपुरुष की मूल आत्मा का अनुसरण करेंगे ताकि हम निश्चित भाव से किसी बच्चे को भी राजनीति की शिक्षा दे सके ?†

आइए अब गोखले के एक अन्य समसामयिक की ओर ध्यान दें। तिलक का राजनैतिक कार्य पद्धति क नाते गोखले से मतभेद था, परन्तु उन्होंने उनके व्यक्तिगत गुणो की मुक्तकठ से प्रशसा की है और स्वय गोखले ने भी तिलक के प्रति इसी तरह का आदर भाव व्यक्त किया। तिलक न एक बार गोखले का वणन एक ऐसे अतिशय सरल शिशु तुल्य व्यक्ति के रूप मे किया था जो दूसरा का कहा आसानी से मान लेता है, और दूसरा की सदाशयता को प्राय स्वत सिद्ध मान लेता है।

गोखले के देहान्त के पश्चात तिलक ने केसरी म 23 फरवरी, 1915 को प्रकाशित एक लेख म कहा था—

गोखले मे अनेक गुण थे। उनम से प्रधान गुण यह था कि बहुत ही छोटी उम्र मे उन्होंने निस्वार्थ निष्ठापूवक अपने आपको देश सेवा के लिए पूर्णत समर्पित कर दिया। ऐसे व्यक्ति विद्यमान है जो युवावस्था म जीवन के रसानुभव करने के उपरान्त वृद्धावस्था म कोई और काम न रहने पर देश सेवा की ओर उन्मुख होते है। उस समय तक उन लोगो की मानसिक ऊर्जा शुष्क हो चुकती है और शारीरिक क्षमताए क्षीण होने लगती है। ऐसे व्यक्ति विशेष आदर के पात्र नही बन पाते। परन्तु यदि ऐसे समय पर जबकि शारीरिक शक्तिया अपने यौवन पर हो जब शरीर म आत्मसाधना के लिए आवश्यक सभी बाध उठा

---

*गोखले की प्रतिमा का अनावरण करते समय 1915 में बगलौर म दिया गया भाषण

†स्पीचेज एण्ड राईटिंग्स तीसरा सस्करण, पृष्ठ 246

लेने की सामर्थ्य विद्यमान हो जब बुढ़ापे के दिन दूर हों जब जीवन के सुखमय पक्ष का आकर्षण आंखों के आगे नाच रहा हो और जब उस दिशा में बढ़ निकलना सहज हो यदि ऐसे समय में और विशेष रूप से ऐसी स्थिति में सफलताएं प्राप्त करने के लिए उसकी सम्भावनाएं अपेक्षतया अधिक हैं, ऐसे समय में कोई व्यक्ति यदि उन लुभावने पहलुओं पर से आंखें हटा कर देश सेवा में छिपे संकटों से अवगत होने पर भी अपने आपको मातृभूमि की सेवा के लिए कटिबद्ध कर ले और उस कार्य की अनवरत कष्टसाध्यता की परवाह न करके उस सेवा में ही सुखानुभव के लिए सन्नद्ध हो जाए तो उसे उसके प्रबल आत्मनिग्रह का ही प्रमाण मानना चाहिए। जिस व्यक्ति ने ऐसा आत्मनिग्रह करके ही नहीं दिखाया अपने जीवन के अन्त तक निभा भी दिया वह वास्तव में स्तुत्य है। प्रत्येक व्यक्ति की परख उन लक्ष्यों के आधार पर ही होती है जिनसे वह प्रेरित स्पंदित होता है। गोखले स्वभाव से ही मृदु थे अतः उनकी प्रवृत्ति यही थी कि नरम तरीकों से ही काम निकाल लिया जाए। हमारे सरीखे व्यक्तियों को वे तरीके अनुपयुक्त जान पड़ते थे। रोग के यथार्थ उपचार और पथ्यापथ्य के सम्बन्ध में दो चिकित्सकों में मतभेद होने पर भी हम चिकित्सक के रूप में गोखले का महत्व स्वीकार करते हैं।

आगा खां—'गोखले एक राजनयज्ञ मात्र नहीं थे। वस्तुतः वह तो मेधाशील सृजनात्मक कलाकार थे। उनकी भाषणकला में शब्दों की कारीगरी थी परन्तु वह केवल 'कथनी' के कलाकार न हो कर 'करनी' के कलाकार थे और, प्रत्येक महान कलाकार की भांति अपने लिए उपयुक्त सामग्री का चयन करने के विचार से उन्होंने कहीं भी जाने में कभी संकोच नहीं किया वह उदार हृदय ही नहीं दयालु भी थे। मानवऐक्य की भावना ने उन्हें केवल अपने विरोधियों के प्रति ही नहीं लालची और कपटभद्र स्वार्थ साधकों के प्रति भी व्यक्तिगत सहानुभूति से ओतप्रोत कर दिया था। उनके राग तथा घृणाभाव तो मानो केवल जहरीली तथा घातक धृतता के लिए सुरक्षित थे।

एम० ए० जिन्ना—गोखले सरकार के कामों और देश के प्रशासन के निर्भीक आलोचक और विरोधी थे परन्तु अपने सभी वचनों और कार्यों में वह सच और सच्चे सत्याचार का पल्ला बराबर पकड़े रहे। इस प्रकार वह सरकार के सहायक रहे और जनता के लक्ष्यसाधन के लिए

शक्ति न आते भी जन मन। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व से मिलने वाली अनेक महानतम शिक्षाओं में से एक यह है कि उनका जीवन इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि अकेला व्यक्ति कितना अधिक काम करके दिखा सकता है अपने देश तथा देशवासियों के भाग्य निर्माण में कितना अधिक और सारभूत योगदान कर सकता है और जिसके जीवन से लाखों लोगों को सच्ची प्रेरणा और नेतृत्व की उपलब्धि हो सकती।

एम० विश्वेश्वरैया—मैं गोखले को पच्चीस वर्षों में एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जानता हूँ जिसने अपनी आकांक्षाओं पर स्वास्थ्यप्रद और निर्णयात्मक नियन्त्रण लगा लिए। उन्हें संतुलित बुद्धिशीलता प्राप्त थी और वह किसी भी प्रसंग के दोनों पक्षों का इतनी अच्छी तरह अध्ययन करते थे कि अतिवाद में पड़ने से बच जाते थे। इधर कुछ समय में गोखले को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिल गई है। प्रत्येक देश में भारतीय गर्वपूर्वक उनका उल्लेख एक ऐसे आदर्श स्वदेशवासी के रूप में करते हैं जो देश में सम्भवतः सर्वोच्च स्तर तक पहुँच गया है।

मोतीलाल नेहरू—गोखले को देशभक्ति से आप्लावित एक ऐसी भव्य आत्मा प्राप्त थी जिसने और सभी भावों को पराभूत कर लिया था। जन्मजात नेता होकर भी उन्होंने अपनी मातृभूमि के विनम्रतम सेवक से अधिक बनने की आकांक्षा कभी नहीं की और उस स्वदेश सेवा में उन्होंने जिस निष्ठा से काम किया वह अब इतिहास की वस्तु बन चुकी है। उन्होंने अपना जीवन उसी आदर्श के प्रति समर्पित किया जो उन्होंने अपने तथा अपने देशवासियों के सामने रखा।

वी० एस० श्रीनिवासन शास्त्री—श्री गोखले के चरित्र में उन लोगों के प्रति बड़ी श्रद्धा और कृतज्ञता थी जिन्होंने उन्हें कुछ सिखाया और उन लोगों के प्रति विशुद्ध सराहना का भाव था जिन्होंने देश के हितार्थ बड़े काम किए और कड़ी कड़ी परीक्षाएँ दीं। यह आश्चर्य की ही बात है कि स्वयं एक महापुरुष बन जाने पर भी रानडे अथवा जोशी अथवा फिरोजशाह मेहता जैसे किसी व्यक्ति के बारे में बात करते समय वह अधिकतम विनम्रतापूर्ण शब्दावली का प्रयोग किया करते थे। जब हम उस व्यक्ति अथवा तिलक तक के बारे में बात करते थे जो बराबर उन पर प्रहार करते थे और जिनसे उन्हें प्रायः बचाव करना पड़ता था, तब भी वह किसी को उनके प्रति तिरस्कारपूर्ण शब्द का प्रयोग

नही करन दन थे। वह प्राय कहा करते थे कि तिलक मे अनक धरा इया मने ही हा ग्रार मुझे भी उनम ग्रनक झगडे निपटान ह। परतु ग्रापका उसम क्या ? ग्रापकी ता उनम साथ कोई तुलना ही नही है। वह एक महापुरुष ह। उन्ह सर्वोच्च स्तर की प्राकृतिक विभूतिया प्राप्त हैं। दश की सवा क लिए उन्होने उन विशिष्टताग्रा का विकास भी कर लिया है। यह सच ह कि मैंने उनकी कार्यपद्धति का ग्रनुमादन कभी नही किया, परन्तु उनक त्याग का मन कभी चुनौती नही दी है। विश्वास कीजिए ऐसा काई ग्रार व्यक्ति नही है जिसन दश क लिए इतना ग्रधिक त्याग हा ऐसा कोई ग्रार व्यक्ति नही ह जिस ग्रपन जीवन म तिलक स ग्रधिक सरकार के जबरदस्त विरोध का मुकाबला करना पडा है ऐसा ग्रार कोई व्यक्ति नही ह जिसन इतन ग्रसामान्य चरित्र बल, साहस ग्रार धैर्य का परिचय दिया हा कि इस सघर्षो की अवधि म ग्रनेक बार उन्ह ग्रपनी धन सम्पदा स हाथ धोना पडा ग्रौर उन्होन ग्रपनी ग्रविचल मन-शक्ति के बल पर उस पुन पुन सचित कर लिया हो।

कर्जन—वास्तव म वह विरोधी दल के नता थे ग्रौर इस नाते मुझे प्राय गोखले के प्रहारा का सहना पडता था। मन किसी राष्ट्र का ऐसा कोई भी ग्रार व्यक्ति नही दखा है जिसे उनसे ग्रधिक ससदीय क्षमताए स्वभावत प्राप्त हा। गोखले विश्व की किसी भी ससद, यहा तक कि ब्रिटिश हाउस ग्राफ कामन्स मे विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सकते थे। हमार बीच ग्रत्यधिक मतभेद रहन पर भी मन उनकी याग्यता ग्रौर उच्च चरित्रता का कभी ग्रस्वीकार नही किया।

हार्डिंग—लेजिस्लेटिव कौंसिल म वह विरोधी दल के नेता थे ग्रौर वास्तव म वह एक उत्कृष्ट वक्ता ग्रार वाद विवादी तथा एक राजनयज्ञ तथा मनुष्य थे जिनके प्रति मरे हृदय म ग्रधिकतम आदर भाव रहा ह। मने किसी कौंसिल के महत्वपूर्ण सदस्य क नात हा नही एक मित्र के तौर पर भी सदैव उनका ग्रादर किया ह।

ई० एस० माटेगु—यह कहन म कोई ग्रतिशयोक्ति नही ह कि भारत म बजट प्रस्तावो पर हुई बहस म उनका वार्षिक योगदान वायसराय की कौंसिल की कार्यवाई की उल्लेखनीय विशिष्टताग्रा मे स एक था ग्रार लोग भी उनकी ग्रातुरतापूर्वक प्रतीक्षा करत थे जो उनकी ग्रालोचनाग्रा के कारण उनके दृष्टिकोण का समर्थन नही कर पाते थे। किसी व्यक्ति

परिशिष्ट-2

फर्गुसन कालेज में विदाई भाषण के कुछ अंश

19 सितम्बर 1902 को फर्गुसन कालेज के छात्रों ने गोखले को एक विदाई पत्र भेंट किया जिसके उत्तर में उन्होंने कहा—

प्रिन्सिपल महोदय प्रोफेसर बंधुओं तथा कालेज के छात्रो। अभी-अभी आपने जो विदाई-पत्र पढ़ा है उसका उत्तर देने तथा आपने आज मेरे प्रति जो महान और प्रभूत कृपाभाव व्यक्त किया है उसका आभार स्वीकार करने हेतु मेरे लिए भावाविभूत हुए बिना आपके समक्ष यहां उपस्थित हो पाना सम्भव नहीं है। जीवन में बिछोह का तो प्रत्येक अवसर ही शोकप्रद होता है परन्तु जब उसके साथ हृदय की महानतम अनुभूतियां आ जुड़ें तो पुराने सम्बन्धों का छूटना और बिना मांगने की आवश्यकता आ ऐ—। एक ऐसी अग्निपरीक्षा की सी स्थिति उत्पन्न कर देता है जिससे दारुणतर परिस्थिति सम्भवत सम्भव ही नहीं है। विगत अठारह वर्षों में मेरा प्रयास यही रहा है कि अपनी परिमित क्षमताओं के अनुसार इस सोसाइटी की यथाशक्ति उत्कृष्टतम सेवा करता रहूं। हम भला कहा गया हो या बुरा हमारे मार्ग में प्राणप्रद सूर्य रश्मियां विद्यमान रही हों चाहे भयंकर झंझावात, मेरा उद्यम यही रहा है कि मैं इस संस्था के कल्याण को अपना एकमात्र लक्ष्य मान कर काम करता रहूं और इस प्रकार एक समय ऐसा भी आ गया जब मेरे लिए अपने आपको इस कालेज से पृथक मानना असम्भव हो गया। अतः अब इस संस्था से सम्बंधित समस्त सक्रिय कार्य से अपने को अलग कर देने का अवसर उपस्थित होने पर मेरा हृदय उन परस्पर विरोधी भावनाओं से उद्वेलित हो उठना स्वाभाविक ही है जिनमें एक ओर हार्दिक कृतज्ञता का भाव भरा है और दूसरी ओर तीव्र शोकानुभूति उमड़ रही है। मैं परम पिता परमेश्वर का हृदय से आभारी हूं कि उन्होंने मुझे उस संकल्प के गम्भीर और कष्टसाध्य दायित्वों का निर्वाह करने की शक्ति प्रदान करने की कृपा की जो मैंने यौवनकालीन उत्साह के वशीभूत होकर और अपने भविष्य के सम्बन्ध में किसी भी तरह की कोई परवाह किए बिना अनेक

वप पूव ग्रहण किया था। अपन कायकाल के इस भाग पर म सदा ही हप तथा गवभरी दप्टि डाल सकूगा और मन ही मन कह सकूगा, पर मातमा का धयवाद है कि उसन मुझे अपना सकल्प पूरा करन याग्य बना दिया। परन्तु, उपस्थित महानुभावो! कृतज्ञता की इस अनुभूति के साथ-साथ इस बात का हार्दिक परिताप भी है कि इस महान सस्था के प्रति सक्रिय काय की समाप्ति हो रही है। आप सरलता से यह अनुमान लगा सकत ह कि उस सस्था से अपन आपको अलग कर फेकने म मुझे कितनी मर्मान्तिक पीडा का अनुभव हो रहा है जिस म अब तक अपनी उत्कृष्टतम निधिया समर्पित करता आ रहा हू और इस बात की चिन्ता किए बिना कि मुझे इसक लिए कितन क्षेत्रो म प्रयत्नशील होना पडा, जिसे मन अपने विचार म सदैव सवप्रथम स्थान प्रदान किया है।

इस देश म सावजनिक जीवन म श्रेयो की विरलता और परीक्षाओ अवसादो की बहुलता है। किए जान वाले काम की सम्भावनाए बहुत अधिक ह आर कोइ भी यह नही कह सकता कि इसका दूसरा पक्ष क्या है अर्थात यह सारा काम पूरा कैसे हो सकता है। फिर भी एक बात स्पष्ट है। मेरी तरह जो लोग इस दिशा म चिन्तनशील ह उन्हे आशा और विश्वास की भावना से ही अपन आपको इस काम मे लगाना चाहिए आर केवल वही सताप पान की कामना करनी चाहिए जो सभी नि स्वाथ उद्यमो से प्राप्त होना है।

मेरी भावी आशाओ तथा कायदिशाओ के उल्लेख के लिए यह उपयुक्त स्थल नही है। फिर भी एक बात म जानता हू और वह यह है कि चाहे मुझे आगे बढकर किसी और रूप म अपने आपको लोगो के लिए उपयोगी सिद्ध कर सकने का अवसर मिल जाए और चाहे मुझे प्रतिकूल मौसम के थपेडो स आहत, तूफान स क्षत विक्षत, झझावातग्रस्त जहाज क मल्लाह की भाति अपने पग पीछे हटा लेने पडे, म सदा ही—जैसा कि आपन अपन विदाईपत्र म कहा है—इस सस्था का स्मरण चिन्तन करता रहूगा और दूसरी ओर, मुझे सदव यह विश्वास ही बना रहेगा कि मैं जब भी यहा आना चाहूगा तो इस चारदीवारी म मेरा हार्दिक तथा गरिमामय स्वागत ही होगा।

अब अपना भाषण समाप्त करने से पहले मैं इस कालेज के छात्रो स एक बात कहना चाहता हूं। मुझे आशा और विश्वास है कि वे इस

सस्था पर सदव गव करत रहेंगे। म आपस विग होने वाला हू अत म अब अधिक निसकोच होकर आपस इस विषय म कुछ कह सकता हू। मने नगभग पूरे भारत की यात्रा की है और स्वभावत विभिन स्थानो की शिक्षा सस्थाओ म मेरी विशप रुचि रही है। पूरे देश म हमारे इस कालज जसी सस्था और कोई नही है। इससे अधिक साज-सज्जा सम्पन तथा इससे प्राचीनतर परम्पराओ वाली सस्थाए तो और भी है, परतु पराजपे और राजवाडे जैस मेरे मित्रो क आत्म त्याग न इस कालेज को एक ऐसी आभा से आलोकित तथा गरिमामण्डित कर दिया है जो अयत्र दुलभ है। इस सस्था की प्रधान नैतिक विशिष्टता यह है कि यह एक विचार की प्रतीक है और इसम एक आदश अन्तर्निहित है। वह विचार यह है कि आज के भारतीय अपन को एकता के सूत्र म बाध सकत है और भौतिक स्वार्थो की सभी भावनाओ को दूर हटा कर ऐसे वल उत्साह के साथ एक धमनिरपेक्ष लक्ष्य की सिद्धि के लिए उद्यमशील हो सकत है जो उत्साह प्राय केवल धम के क्षत्र म परिलक्षित होता है। हमारा आदश है स्वावलम्बन का आदश ताकि हम धीरे धीरे परतु निश्चित रूप स दूसरा पर कम से कम निभर रहना सीख जाए भले ही वह हमार बोझ सहन करने के लिए कितन भी उद्यत क्या न हा और स्वय अपने पर अधिकाधिक भरोसा करने लग।

मुझे पूण विश्वास है कि इस कालेज क छात्र हाने के नात आप लाग अपनी सस्था का यह स्वरूप बराबर अपनी आखो क सामने रखग इम सस्था क प्रति आपका निष्ठाभाव इसके प्रति आपका उत्साह इसक काय की भव्यता और महत्ता के अनुरूप बना रहेगा और जब आपको विवश भाव से इस सस्था की आलोचना करनी पडेगी तब भी आप उसी स्नेहपूण उद्वेग के साथ इसका उल्लेख करेग जिसका प्रयोग अपने माता-पिता की बुराइयो की चर्चा करत समय किया जाता है और इस सस्था की लक्ष्यपूर्ति का काम आगे बढाने तथा उसकी उपयोगिता एव प्रभावोत्पादकता मे विस्तार करने के लिए आप अपनी शक्ति सामथ्य के अनुसार सवन्न सभी सम्भव उपाय करेग।

मैं आपस अलग हा रहा हू, पर इस समय मुझे ऐसा लग रहा है कि मानो मैं अपन जीवन का उत्कृष्टतम कृतित्व पीछे छोडे जा रहा हू।

मुझे विश्वास है कि आप मे से कुछ महानुभावो के साथ मेरी भेंट आगे चल कर अन्य क्षेत्रो मे सहयोगियो के रूप मे हो सकेगी और इस कालेज के आगन मे भी हम समय-समय पर एक-दूसरे से मिलते रहेंगे। परमात्मा की अनुकम्पा इस कालेज पर और आप सब पर बराबर बनी रहे।

परिशिष्ट-3

सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसाइटी के संविधान की प्रस्तावना

कुछ समय से अनेक उत्साही तथा चिन्तनशील व्यक्तियों के मन में यह धारणा बलवती होती जा रही है कि भारत में राष्ट्रनिर्माण कार्य में ऐसा पड़ाव आ गया है जब और अधिक प्रगति के लिए एक ऐसे विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त संगठन के निष्ठापूर्ण उद्यम अभीष्ट हैं जो सच्चा लक्ष्य-समर्पण भावना के साथ अपने को इस काम में लगा दें। इसमें सन्देह नहीं कि अब तक जो काम किया जा चुका है वह बहुत महत्वपूर्ण रहा है। समान परम्पराओं और बंधनों, समान आशा आकांक्षाओं और यहां तक कि समान अक्षमताओं पर आधारित समान राष्ट्रीयता का जो विकास पिछले पचास वर्षों में हुआ है वह बहुत ही उल्लेखनीय बात है। इस सत्य को अधिकाधिक अनुभव किया जाने लगा है कि हम भारतीय पहले हैं और हिन्दू मुसलमान पारसी अथवा ईसाई बाद में और एक ऐसे संयुक्त तथा नवीन भारत का विचार जो आगे बढ़ता हुआ विश्व के राष्ट्रों में अपने महान अतीत के अनुरूप स्थान पाने में प्रयत्नशील है कुछ कल्पनाशील मस्तिष्कों का निस्सार स्वप्न मात्र न रह कर उन लोगों अर्थात देश के उन शिक्षित वर्गों का एक निश्चित रूप से स्वीकृत सिद्धान्त बन गया है जो हमारे समाज के मस्तिष्क तुल्य हैं। शिक्षा तथा स्थानीय स्वशासन में प्रशंसनीय ढंग से कार्यारम्भ हो चुका है और जनता के सभी वर्ग धीरे-धीरे परन्तु निश्चित रूप से उदार विचारों से प्रभावित होते जा रहे हैं। सार्वजनिक जीवन के दावों को दिन प्रतिदिन अधिक से अधिक मान्यता मिलती जा रही है और अपनी जन्मभूमि के प्रति अनुराग की हमारी भावना हृदय के सबल तथा तीव्रानुभूति भाव का रूप ग्रहण करती जा रही है। कांग्रेसों तथा कान्फ्रेंसों की वार्षिक बैठकें सार्वजनिक निकायों तथा एसोसियेशनों के काम, भारतीय समाचारपत्रों के कालमों में प्रकाशित लेख—सभी उस नव जीवन के साक्षी हैं जिनका संचार जन-जन की शिराओं में हो रहा है। अब तक सामने आ चुकने वाले

कार्यकर्ता को अपने साधना पथ पर अग्रसर हो जाना चाहिए और भक्ति-भाव से उस आनन्द का संधान करना चाहिए जो स्वदेश सेवा में अपने को मिटा देने में प्राप्त होता है।

सर्वेंट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी उन लोगों को प्रशिक्षण देगी जो धर्म भावना के साथ देश के हित साधन के लिए अपना जीवन समर्पित कर देने को तैयार हों और यह सभी संवैधानिक उपायों द्वारा भारत-वासियों के राष्ट्रीय हितों के संवर्द्धन का प्रयत्न करेगी। इसके सदस्य मुख्य रूप से इन कामों के लिए प्रयत्नशील रहेंगे (1) कथनी और करनी द्वारा लोगों में मातृभूमि के प्रति ऐसा तीव्र अनुराग उत्पन्न करना जिसकी अधिकतम संतुष्टि सेवा तथा त्याग में हो (2) सार्वजनिक प्रश्नों के गम्भीर अध्ययन पर आधारित राजनैतिक शिक्षा और आन्दोलन के कार्य का संगठन करना और सामान्यत देश के जनजीवन को बल प्रदान करना (3) विभिन्न जातियों के बीच हार्दिक सहायता और सहयोग का विकास करना (4) शिक्षा विषयक—विशेषत स्त्री शिक्षा पिछड़े वर्गों की शिक्षा और औद्योगिक तथा वैज्ञानिक शिक्षा विषयक आन्दोलनों को सहायता पहुंचाना (5) देश के औद्योगिक विकास संवर्द्धन में सहायता पहुंचाना और (6) दलित वर्गों का उद्धार। सोसाइटी का प्रधान कार्यालय पूना में रहेगा जहां इसके सदस्यों के लिए एक भवन होगा और उसके साथ ही सोसाइटी के कार्य से सम्बन्धित विषयों के अध्ययन के लिए एक पुस्तकालय।

परिशिष्ट-4

गोखले की कुछ अविस्मरणीय उक्तिया

स्वदेशी

प्रति वप 30 स 40 करोड रुपये फिर कभी वापस न लाटन क लिए भारत स बाहर भेजे जात हैं। इस तरह लूटा जाना काई भी दश—विश्व का सम्पन्नतम दश भी—सहन नहो कर सकता।

पृथक निर्वाचन

निस्सन्देह यह एक घातक सिद्धान्त है कि भारत की काई जाति सामान्य राष्ट्रीयता से अलग होकर चुनावा के लिए अपने का एक पथक इकाई मान। इसस दश म राष्ट्रभावना के विकास म बाधा उपस्थित होगी।

दक्षिण अफ्रीका के भारतीयो की समस्या

परमात्मा स मरी यह प्राथना है कि पिछले तीन वर्षो में आपको ट्रासवाल म जो सघप करना आवश्यक जान पडा वह फिर न करना पडे। परन्तु यदि वह पुन अपरिहाय हो जाता है अथवा आपको न्याय न किए जाने या बलपूवक अन्याय किए जाने की स्थिति म उस जैसे अन्य सघप करने पडते हैं तो यह ध्यान रखिए कि उनके परिणाम मुख्यत इस बात पर निभर हागे कि आप उस समय कितना चरित्रबल दिखा पाते ह, आपम मिल जुलकर काम करने की कितनी क्षमता है आप किसी न्यायोचित लक्ष्य की सिद्धि के लिए कितना कष्ट सहने और कितना त्याग करन के लिए तैयार ह। इसम सन्देह नही कि भारत आपका साथ दगा फिर भी सम्बन्धित बुराइया ठीक करने का भार प्रधान रूप स आप ही पर रहेगा। याद रखिए कि आपको इस दश म भारतीय समस्या का सही ढग से समाधान करा दन का अधिकार है और उस सही समाधान मे केवल आपके वतमान सुख साधन ही नही, आपका गौरव तथा स्वाभिमान आपकी मातृभूमि की प्रतिष्ठा और ख्याति तथा आपकी

सन्ताना-सन्ततियो का पूर्ण नैतिक और भौतिक कल्याण तथा उत्कर्ष भी अन्तर्निहित है ।

[प्रिटोरिया में दिया गया विदाई भाषण, 15 नवम्बर, 1912]

दलित वर्ग

उन दलित वर्गो का उत्थान जिन्हें हमारे शेष समाज के स्तर तक लाया जाना अभीष्ट है सार्वजनिक प्रारंभिक शिक्षा सहकारिता, किसानो की आर्थिक दशा में सुधार, स्त्रियो की उच्चतर शिक्षा, औद्योगिक तथा तकनीकी शिक्षा का विस्तार, देश की औद्योगिक शक्ति का निर्माण विभिन्न जातियो के बीच घनिष्ट सम्बन्धो का विकास—ये कुछ ऐसे काम हैं जो हमारे सामने हैं और उनमें से प्रत्येक के लिए हमें दृढ सकल्प और लक्ष्यनिष्ठ व्यक्तियो की पूरी सेना की आवश्यकता है । क्या यह आवश्यकता पूरी न हो पाएगी ? अपनी शिक्षा प्राप्त करके प्रति वर्ष जो हजारो युवक हमारे विश्वविद्यालयो से निकलते हैं क्या उनमें से कुछ लोग भी अपने भीतर की वह आवाज नही सुनेंगे जो अन्तरात्मा से कुछ कहती है, और सहर्ष उस आवाज के अनुसार काम करने के लिए तैयार नही हो जाएगे ? यह काम हमारे देश का काम है। यह सम्पूर्ण मानवता का काम भी है। यदि उस सम्पूर्ण जागृति के बाद भी जिसकी हम चर्चा करते हैं और जिस पर हमें समुचित हर्ष है यह क्षेत्र केवल कार्यकर्ताओ की कमी के कारण फलप्रद नही हो पाते तो भारत को अपने बच्चो से निष्ठापूर्ण सेवा प्राप्त करने के लिए अगली पीढी तक प्रतीक्षा करनी पड जाएगी ।

['स्टूडेंटस ब्रदरहुड' बम्बई में दिया गया भाषण, 9 अक्तूबर, 1909]

मनुष्यो में असमानता के परिणाम

मामूली से मामूली अंग्रेज भी जब देश में यहा आता-जाता है तो पूरे साम्राज्य की प्रतिष्ठा उसके साथ होती है दूसरी ओर अधिकतम गर्वोन्नत तथा प्रतिष्ठा सम्पन्न भारतीय भी अपने से उस विशेष भावना का अलग नही कर पाता कि वह पराधीन जाति का सदस्य है। सामाजिक सम्बन्धो की आत्मा है पारस्परिक सराहना और आदर की भावना जो साधारणत असमानता की अनुभूति के साथ मिल कर नही रह पाती ।

[यूनिवर्सल रेसेज कांग्रेस लन्दन में पढ़े गए निबन्ध से जुलाई, 1911]

परिशिष्ट–5

गोखले की वसीयत

(यह स्मरणीय है कि गोखले द्वारा पेश किए गए उस प्रस्ताव का यह प्रारूप मात्र था जो उन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ होने के कुछ महीने बाद तैयार किया था। प्रेस के समक्ष इस तथ्य का उदघाटन सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसाइटी के प्रधान के रूप में गोखले के उत्तराधिकारी वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री ने किया था।)

दिल्ली भेजे गए पत्र में जो प्रान्तीय स्वायत्तता देने का पूर्वसंकेत विद्यमान था उसे युद्ध की समाप्ति पर भारत के लोगों को दी जाने वाली उपयुक्त सुविधा माना जा सकता है। इससे एक दोहरी प्रक्रिया होगी अर्थात एक ओर तो प्रान्तीय सरकार उस नियन्त्रण से काफी हद तक मुक्त हो जाएगी जो देश के आन्तरिक प्रशासन के सम्बन्ध मे उनके ऊपर भारत सरकार और भारत मन्त्री द्वारा रखा जा रहा है, और दूसरी ओर इस प्रकार हटने वाले नियन्त्रण के स्थान पर प्रान्तीय विधान परिषदों के माध्यम से करदाताओं के प्रतिनिधियों का नियन्त्रण हो जाएगा। इस विचार को कायरूप देने के लिए विभिन्न प्रान्तों मे किस तरह के प्रशासन की स्थापना आवश्यक होगी, उसकी संक्षिप्त रूपरेखा में नीचे प्रस्तुत कर रहा हूं।

प्रत्येक प्रान्त में इन बातों की व्यवस्था होनी चाहिए

1 प्रशासनाध्यक्ष के रूप में इंग्लैंड से नियुक्त गवर्नर

2 छ सदस्यों की एक कार्यकारी परिषद अथवा कैबिनेट, जिनमे तीन भारतीय और तीन अंग्रेज हों तथा जिनके अधीन निम्नलिखित विभाग हों —

(क) गृह (कानून तथा न्यायव्यवस्था सहित), (ख) वित्त, (ग) कृषि, सिंचाई और सार्वजनिक निर्माण कार्य (घ) शिक्षा, (ङ) स्थानीय स्वशासन (स्वच्छता तथा चिकित्सा सहायता सहित), (च) उद्योग तथा वाणिज्य।

कायकारी परिषद म नियुक्त होने के लिए वस ता भारतीय सिविल सेवा के सदस्या का ही याग्य माना जाए, परन्तु उनके लिए परिषद् म काई स्थान सुरक्षित न रखा जाए और अंग्रेज तथा भारतीय दाना म जा उत्कृष्टतम व्यक्ति हा व ले लिए जान चाहिए।

3 75 म 100 सदस्या तक की एक विधान परिषद हाना चाहिए जिसमें कम स कम 4/5 सदस्या_का चुनाव विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रा तथा विशिष्ट वर्गों द्वारा किया जाए। उदाहरण के लिए बम्बई प्रेसीडेंसी म मोटे तौर पर, प्रत्येक जिले द्वारा दा सदस्य चुन जाए जिनमें से एक नगरपालिकाओ का प्रतिनिधित्व कर और दूसरा जिला तथा ताल्लुका बार्डों का। बम्बई नगर को लगभग दस सदस्य चुनन का अधिकार दिया जाए। शहरी निकाया जैसे कराची चम्बर, अहमदाबाद मिल मालिक और दक्कन सरदारा का एक-एक सदस्य हाना चाहिए। इनके अतिरिक्त मुसलमाना का विशेष प्रतिनिधित्व प्राप्त हा और कही कही — लिगायत जैसे उन सम्प्रदायो का भी एक सदस्य चुनने का अधिकार दना आवश्यक हागा जहा उनका जार हा। विशेषज्ञा के अतिरिक्त काई और गर-सरकारी नामजद सदस्य नही हान चाहिए। गवनर का यह अधिकार हा कि वह चाहे ता विशेषज्ञा के रूप म अथवा कायकारी सरकार के प्रतिनिधित्व मे सहायता पहुचाने के विचार मे कुछ सरकारी सदस्य जाड सकता है।

4 कायकारी सरकार और इस प्रकार गठित विधान परिषद का आपसी सम्बध लगभग वैसा ही हाना चाहिए जैसा जमनी मे इम्पीरियल गवनमट तथा 'रशिस्टग' के बीच है। परिषद के लिए सभी प्रान्तीय कानूना का पास करना आवश्यक हागा और प्रान्तीय कराधान में घट बढ करने के लिए परिषद् की अनुमति आवश्यक होगी। उसके सामने बजट भी बहस के लिए पेश किया जाना अनिवाय होगा और बजट तथा सामान्य प्रशासन विषयक प्रसगो से सम्बंधित उसके प्रस्तावो का कायरूप दना भी आवश्यक हागा बशर्ते कि गवनर ने उनके बारे म प्रतिनिषेध न कर दिया हा। बठकें अधिक जल्दी-जल्दी आयाजित करन अथवा अपेक्षतया लम्बी अवधि तक बठकें जारी रखी जान के लिए व्यवस्था हो परतु कायकारी सरकार के सदस्यो को अपने पदा पर बने रहने के लिए व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से परिषद् के बहुमत के समथन की आवश्यकता नही होगी।

5 इस तरह पुनगठिन हो जाने और विधान परिपद के नियन्त्रण मे काम करने वाली प्रान्तीय सरकार का प्रात के आन्तरिक प्रशासन का पूरा कायभार सौप दिया जाना चाहिए और उसे वस्तुत स्वतन्त्र वित्तीय शक्तिया प्रदान कर दी जानी चाहिए। इसके लिए आवश्यक होगा कि प्रान्तीय सरकार और भारत सरकार के बीच के वतमान वित्तीय सम्बन्ध बहुत हद तक बदल दिए जाए —और कुछ हद तक उलट भी दिए जाए। नमक सीमा शुल्क राज शुल्क रेला, डाक तार और टकसाल से प्राप्त राजस्व पर पूणत भारत सरकार का अधिकार होगा और ये सेवाए 'इम्पीरियल मानी जाएगी और भू राजस्व—जिसके अतगत सिंचाई उत्पादन शुल्क वना निर्धारित करा स्टाम्प और रजिस्ट्रेशन का समावेश है—प्रान्तीय सरकार का प्राप्त होना चाहिए और उन सेवाओ को प्रान्तीय' माना जाना चाहिए। क्याकि इस तरह का विभाजन हो जाने पर प्रान्तीय सरकार को प्राप्त होन वाला राजस्व उसकी वतमान आवश्यकताओ से अधिक होगा और भारत सरकार को निधारित राजस्व उसके वतमान खच से कम रह जाएगा। अत यह व्यवस्था की जानी चाहिए कि प्रान्तीय सरकार भारत सरकार का ऐसा वार्षिक अशदान देती रहे जो एक साथ पाच-पाच वप की अवधिया के लिए निर्धारित कर दिया जाए। यह व्यवस्था हाने पर भी इम्पीरियल तथा प्रान्तीय सरकारा को चाहिए कि वे अपनी अपनी स्वतन्त्र वित्त पद्धतिया का विकास कर ले और प्रान्तीय सरकारा का कुछ सीमाओ मे रखकर ऋण लेन और कर लगान के अधिकार भी दे दिए जाए।

6 प्रातीय स्वशासन की ऐसी योजना उस समय तक अधूरी रहेगी जब तक उसके साथ-साथ ये काम नही किए जाएगे (क) जिला प्रशासन को उदार रूप दिया जाना और (ख) स्थानीय स्वशासन का अत्यधिक विस्तार। इनम स उपयुक्त (क) के लिए यह करना होगा कि सिंध जसे डिवीजना म विशेप कारणा स कमिश्नर का पद बनाए रखना आवश्यक हो उनके अतिरिक्त अन्य डिवीजना म कमिश्नर पद समाप्त कर दिया जाए और अशत निर्वाचित तथा अशत मनोनीत छोटी जिला परिपदें कलक्टर के साथ जोड दी जाए जिसे उस दशा म वे अधिकतर शक्तिया प्रदान की जा सकती है जा इस समय कमिश्नरा को प्राप्त है—या प्रारम्भ मे परिपदा का काम सलाह देना रहेगा। (ख) उपयुक्त

के लिए गावो तथा ग्राम-समूहो के लिए ग्रशत म्यूनिसिपल बोर्डों और ताल्लुका बोर्डों की स्थापना की जानी चाहिए । ताल्लुका बोर्ड पूर्णत निर्वाचित निकाय बना दिए जाने चाहिए और उनके कड़े नियत्रण की शक्तिया तथा उन शक्तियो के प्रयोग का काम प्रान्तीय सरकार को अपने पास सुरक्षित रखना चाहिए। उत्पादन शुल्क के रूप म प्राप्त राजस्व का एक ग्रश उक्त निकायो को सौप दिया जाना चाहिए ताकि अपने कर्तव्यो का समुचित रूप से निर्वाह करने के लिए उनके पास पर्याप्त साधन उपलब्ध रहे। चूकि जिला इतना बडा क्षेत्र होगा कि कोई अवैतनिक संगठन वहा का स्थानीय स्वशासन योग्यतापूर्वक नही चला सकेगा, अत जिला बोर्डो के काम पूरी तरह सीमित होने चाहिए और, कलक्टर को उसका पदेन अध्यक्ष बनाए रखना चाहिए।

भारत सरकार

1 प्रान्तो को इस तरह व्यवहारत स्वशासी बना दिए जाने पर वाइसराय की केबिनेट अथवा कार्यकारी परिषद के सविधान म भी तदनुरूप सशोधन की आवश्यकता होगी। उस परिषद् म इस ग्रातरिक प्रशासन से सम्बद्ध विभागो—गृह कृषि शिक्षा और उद्योग तथा वाणिज्य —के लिए चार सदस्य है। क्योकि ग्रान्तरिक प्रशासन का सारा काम अब प्रान्तीय सरकारो को सौंप दिया जाएगा और भारत सरकार के पास अब नाममात्र का नियत्रण अधिकार शेष रह जाएगा जिसका प्रयोग वह बहुत ही कम अवसरो पर करेगी। अत उक्त चार सदस्यो के स्थान पर एक सदस्य—*आन्तरिक मामलो का सदस्य—पर्याप्त होगा। यह* ठीक है कि कुछ और विभाग बनाना आवश्यक हो जाएगा। मेरी सम्मति मे परिषद् म निम्नलिखित सदस्य होने चाहिए जिनमे से सदा ही कम से कम दो सदस्य अवश्य भारतीय रहे

(क) ग्रान्तरिक मामले (ख) वित्त, (ग) विधि (घ) प्रतिरक्षा (ङ) सचार (रेलें डाक और तार) (च) विदेश।

वाइसराय की विधान परिषद का नाम भारत की विधान सभा (लेजिस्लेटिव असेम्बली ग्राफ इण्डिया) कर दिया जाना चाहिए। उसके सदस्यो की सख्या बढा कर ग्रारम्भ म लगभग एक सौ कर दी जानी चाहिए और उसकी शक्तिया बढा दी जानी चाहिए। परतु सरकारी

बहुमत का सिद्धात (जिसका स्थान सम्भवत मनोनीत बहुमत को दे देना पर्याप्त होगा) फिलहाल उस समय तक बना रहने दिया जाना चाहिए जब तक प्रान्तो के लिए की गई स्वशासन व्यवस्थाओ के कार्यचयन के विषय मे पर्याप्त अनुभव प्राप्त न हो जाए। इस प्रकार भारत सरकार को प्रान्तीय प्रशासन के सम्बन्ध म एसी एक सुरक्षित शक्ति सुलभ हो जाएगी जिससे वह आपातकाल म काम ले सकेगी। उदाहरणार्थ यदि कोई प्रान्तीय विधान परिषद लगातार एसा कोई कानून पास करने से इन्कार करती रहती है जिससे सरकार प्रान्त के मूलभूत हितो की दृष्टि से अनिवार्य समझती हो तो भारत सरकार प्रातीय सरकार की परवाह न करके वह कानून अपनी विधान सभा म पास कर सकती है। एसे अवसर बहुत ही कम होगे परन्तु इस सुरक्षित शक्ति से सत्ता को सुरक्षा भावना प्राप्त रहेगी और अधिकारियो को इस बात के लिए प्रेरणा मिलेगी कि वे प्रान्तीय स्वशासन के इस महत्प्रयोग को तत्परता से कार्यरूप दे। फिलहाल सरकारी अथवा मनोनीत व्यक्तियो का बहुमत बनाए रखने के लिए इस सिद्धान्त के अन्तगत रहते हुए विधान सभा को वाद विवाद द्वारा सरकारी नीति को प्रभावित करने के और अधिक अवसर सुलभ होने चाहिए और ऐसा करते समय स्थल सेना तथा नौसेना विषयक प्रश्नो को अन्य प्रसगो के समान स्तर पर ही रखा जाना चाहिए। इस प्रकार गठित भारत सरकार को वित्तीय मामलो मे भारत मन्त्री के नियत्रण से मुक्त कर दिया जाना चाहिए और भारत-मन्त्री का नियत्रण दूसरे मामलो में भी बहुत कम कर दिया जाना चाहिए, उसकी परिषद समाप्त कर दी जानी चाहिए और उसकी स्थिति धीरे धीरे उपनिवेश मत्री के तुल्य हो जानी चाहिए।

स्थल सेना तथा नौसेना म कमीशन अब भारतीयो को दिए जाने चाहिए और उनके लिए फौजी तथा नौसेना की शिक्षा का उपयुक्त प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

जर्मन-पूर्वी अफ्रीका यदि जर्मनो से जीत लिया जाए तो उसे भारतीय उपनिवेशन के लिए सुरक्षित रखा जाना चाहिए और उसे भारत सरकार को सौंप दिया जाना चाहिए।

परिशिष्ट-6

(सरदार वल्लभ भाई पटेल और जवाहर लाल नेहरू जैसे अन्य अनेक महान व्यक्तियों की तरह गोखले भी अपने सार्वजनिक जीवन में नगरपालिका अध्यक्ष के महत्वपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित रहे थे।)

गोखले स्वयं कई वर्ष तक पुणे नगरपालिका के अध्यक्ष रहे थे और उन बुराइयों तथा कठिनाइयों से परिचित थे जो भारत के नागरिक जीवन के विकास में बाधक रहीं। उस पद पर उन्होंने उत्साहपूर्ण प्रशासन शक्ति का प्रदर्शन किया जिसके कारण उनका कार्यकाल अविस्मरणीय हो गया। नगरपालिका की जिन बैठकों की अध्यक्षता उन्होंने की उसमें ठीक ढंग से और अविलम्ब काम हुआ। उन्होंने एक तरीका शुरू किया जिसके अनुसार नगरपालिका के सदस्यों को यह छूट थी कि वे बैठकों में प्रशासनिक प्रसंगों पर कार्यकारी अधिकारियों से पूछताछ कर सकते थे—यह पद्धति वास्तव में वही थी जिसका अत्यधिक प्रभावशाली ढंग से प्रयोग स्वयं उन्होंने आगे चल कर मिंटो-मार्ले सुधार लागू हो जाने के बाद इम्पीरियल कौंसिल में किया। उन्होंने यह नियम भी लागू किया कि नगरपालिका की बैठकों का कार्य विवरण प्रकाशित करके सदस्यों में प्रचारित किया जाए। नगरपालिका के अध्यक्ष के नाते गोखले ने पुणे की जो सेवाएं कीं उनसे स्पष्ट हो गया कि वह दूसरे लोगों की प्रशासन पद्धतियों के एक सिद्धान्तप्रधान आलोचक मात्र नहीं थे जो उत्तरदायित्वपूर्ण पद प्राप्त हो जाने पर स्वयं असहाय सिद्ध हो जाएं, वह तो एक उत्साही व्यवहारशील प्रशासक थे जो अपने आदर्शों को प्रभावपूर्ण कार्य रूप प्रदान कर सकते थे।

[जे० एस० हायलैंड : गोपाल कृष्ण गोखले]

M GIPF 169 DPD/79—1 000—19-9-80